226.2
शिव|श-3

शक्ति-संगम-तन्त्र
(सुन्दरी-खण्ड)

सम्पादक
'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक
पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
प्रयाग-६

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग मार्ग
प्रयाग—६

२२६.२
शिव/श्रा-३

मूल्य ३५-०० रु०
सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
परावाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
प्रयाग—६

अनुक्रमणिका

परिचय (१) से (२४)

प्रथमः पटलः—श्रीचक्र-योगादि-कथनम् १

(पूर्णाभिषेक दीक्षा, पारम्पर्यं-क्रमः, सम्प्रदाय-स्वरूपं)

द्वितीयः पटलः—उदयाक्षर-निरूपणम् १७

(काम्य देवताः, दीक्षा-क्रमः, शापोद्धार-उत्कीलनौ, दीप-रेखा, यन्त्र-ध्यानं)

तृतीयः पटलः—प्राणायाम-जपः २६

(भावना-विधिः, सङ्कल्पः, पञ्च-नित्या, पारायण-क्रमः, स्वप्न-मन्त्र-विवेचनं, सिद्ध-मन्त्राः, जात-मृत-सूतक-दोषः, चैतन्यं-त्रितयं, प्रस्तार-त्रयः, होम-तर्पण-कार्याणि, अनन्त-पादुका-क्रमः, प्राणायाम-रहस्यं)

चतुर्थः पटलः—यन्त्र-प्रस्तार-निर्णयः ५६

(सर्व-रूपकं श्री-चक्रं, प्रस्तार-भेदाः, यन्त्र-प्रस्तार-स्तव, तत्व-न्यासः)

पञ्चमः पटलः—स्नान-भेद-निर्णयः ६२

(स्नान-कालाः, स्नान-भेदाः, सन्ध्या-वन्दनं)

षष्ठः पटलः—दीपेशादि-विनिर्णयः ६६

(दीपनाथ-मनुः, माला-विचारः, होम-निर्णयः, पात्र-स्थापनं, दिक्-निर्णयः)

सप्तमः पटलः—देश-व्यवस्था-नियमः ७२

(तारा-काली-काम्य-ध्यानं, षट्-पञ्चाशद्-देश-निर्णयः)

अष्टमः पटलः—पञ्च-प्रस्थ-कथनम् ७८

नवमः पटलः—लता-साधनम् ८०

दशमः पटलः—अज्ञात्-दुर्निमित्तम् ८४
(धूम्रोदयः, पञ्च-केतुः, शान्ति-विधिः)

एकादशः पटलः—महाकाल-मन्त्र-विधिः ८७
(धूम्र-केतु-निर्णयः, दिन-होरा-चक्रं, साम्राज्य-मेधा-दीक्षा-फलं, कालिका-सिद्धि-लक्षणं, जीव-क्रीड़ा-निर्णयं, रुद्राक्ष-महिमा, पीठ-क्रमं, यन्त्र-स्थापनं, पुरश्चर्या-क्रमं, भूत-निग्रहः, कुल्लुकादि-निर्णयः, महाकाल-पूजा-विधिः)

द्वादशः पटलः—१ काली-नित्या १०८

त्रयोदशः पटलः—२ कपालिनी, ३ कुल्ला नित्या-विधिः ११३

चतुर्दशः पटलः—४ कुरुकुल्ला ५ विरोधिनी नित्या-विधिः ११७

पञ्चदशः पटलः—६ विप्रचित्ता, ७ उग्रा, ८ उग्रप्रभा नित्या-विधिः १२३

षोडशः पटलः—९ दीप्ता, १० नीला नित्या-विधिः १२९

सप्तदशः पटलः—११ घना, १२ बलाका, १३ मात्रा, १४ मुद्रा नित्या-विधिः १३५

अष्टादशः पटलः—१५ मिता नित्या-विधिः १४१

एकोन-विंशति-तमः पटलः—तिरस्करणिका, स्वप्न-वाराहिका, कृष्ण-मातङ्गी प्रयोग-विधिः १४६

विंशति-तमः पटलः—सम्पत्-सरस्वती, मृत्युञ्जय-रुद्र, पथिषद् रुद्र प्रयोग-विधिः १५२

एक-विंशति-तमः पटलः—आर्द्र-पटेश्वरी, वार्ता-यक्षी, कर्ण-पिशुन, किरात-वाराही, काल-वादिनी, धूमावती प्रयोग-विधिः १५६

• • •

परिचय

तन्त्र-साहित्य में 'शक्ति-सङ्गम तन्त्र' का अपना विशेष स्थान है। यह चार खण्डों में उपलब्ध है—१ काली-खण्ड, २ तारा-खण्ड, ३ सुन्दरी-खण्ड और ४ छिन्नमस्ता-खण्ड। इनमें से तोसरे खण्ड को 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल के निर्देशानुसार सम्पादित कर प्रस्तुत रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें मूल संस्कृत पाठ को आधुनिक ढँग से सम्पादित किया गया है। प्रायः सभी समास-शब्दों को 'हाइफन' (–) द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है, जिससे पढ़ने और समझने में पाठकों को विशेष सुविधा होगी।

मूल तन्त्र-साहित्य के अध्ययन से यह सरलता से ज्ञात हो जाता है कि तन्त्र से उच्च कोटि के दार्शनिक विचारों और वैज्ञानिक साधना-पद्धति का ज्ञान प्राप्त होता है। इससे तन्त्र और तन्त्रोक्त उपासना के सम्बन्ध में जो भ्रम लोगों में है, वह दूर हो जाता है।

शक्ति-सङ्गम तन्त्र के प्रस्तुत 'सुन्दरी-खण्ड' के नाम से पाठकों को यह नहीं सोचना चाहिए कि इसमें केवल सुन्दरी अर्थात् भगवती षोडशी की उपासना के सम्बन्ध में ही प्रकाश डाला गया है। वास्तव में इसमें तन्त्र के जिज्ञासुओं को जानने योग्य विविध प्रकार की बातों का वर्णन किया गया है और यही तथ्य सभी तन्त्रों के सम्बन्ध में पाया जाता है। यह तथ्य प्रस्तुत खण्ड में विवेचित विषयों के संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट हो जाता है।

सुन्दरी-खण्ड में कुल इक्कीस पटल हैं, जिनमें तान्त्रिक-साधना सम्बन्धी विविध विषयों का विवेचन है। यथा—

प्रथम पटल

इस पटल का शीर्षक है 'श्रीचक्र-योगादि-कथनं'। 'श्री-चक्र' भगवती षोडशी के पूजा-यन्त्र को कहते हैं। इसी का दूसरा प्रसिद्ध नाम है—'श्री-यन्त्र।' अतः इस पटल में श्री-यन्त्र के 'योग' अर्थात् साधनाभ्यास के सम्बन्ध में आवश्यक बातें बताई गई हैं। इस सम्बन्ध में सर्व-प्रथम यह बताया गया है कि षोड़शी की उपासना में पहले भगवती बाला के मन्त्र की दीक्षा लेना आवश्यक है क्योंकि श्रीबाला-

मन्त्र के जप से मुख की शुद्धि होती है। तब पञ्चदशी अर्थात् भगवती ललिता (श्री विद्या) के मन्त्र-जप का अधिकार प्राप्त होकर भगवती षोडशी की उपासना करने की योग्यता मिलती है। इसी तारतम्य में दीक्षा-क्रम का निरूपण और न्यासादि का विवरण देते हुए श्रीयन्त्र के स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रसङ्गवश गुरु-परम्परा एवं सम्प्रदाय-भेद का भी परिचय दिया गया है।

द्वितीय पटल

इस पटल का शीर्षक है—'उदयाक्षर-निरूपणं'। 'उदयाक्षर'-पद से तात्पर्य यह है कि मन्त्र के प्रत्येक अक्षर में विलक्षण शक्ति निहित है। उस शक्ति का उदय विधिवत् साधना द्वारा ही सम्भव है। ऐसी साधना को हृदयङ्गम कराने के लिए इस पटल के प्रारम्भ में यह बताया गया हैं कि किस देवता की उपासना करने से कौन सा फल प्राप्त होता है। फिर दीक्षा-परम्परा एवं गौड़, काश्मीरादि सम्प्रदायों का महत्व प्रतिपादित करते हुए उत्कीलन, शापोद्धार, दीपिनी आदि की आवश्यकता बताई है कि इनसे मन्त्र में सजीवता आती है। अन्त में ध्यान के तीन प्रकार बताते हुए श्री-चक्रादि पूजा-यन्त्रों में किस प्रकार भावना-पूर्वक पूजनादि करना चाहिए, इसे स्पष्ट किया गया है। गुरु, देवता और मन्त्र के ऐक्य-भावना द्वारा ही मन्त्राक्षरों में पूर्ण जाग्रति का उदय होता है।

तृतीय पटल

'प्राणायाम-जपः' शीर्षक से इस पटल का विषय स्पष्ट ही हैं किन्तु पाँच प्रकार के प्राणायामों और प्राणायाम-पूर्वक जप का विवेचन अन्त में ही मिलता है। प्रारम्भ में केरल, काश्मीर, गौड़ादि क्रम के अनुसार ध्यान, सङ्कल्प आदि के सम्बन्ध में उपासक की भावना किस प्रकार की होनी चाहिए, इसे स्पष्ट किया गया है। फिर पाँच प्रकार को नित्याओं—१ तिथि-नित्या, २ दिन-नित्या, ३ युग-नित्या, ४ काल-नित्या और ५ पर्याय-नित्या का वर्णन कर शुक्ल व कृष्ण-पक्ष के क्रम से इनके अर्चन का निर्देश किया गया है। इसी सन्दर्भ में नाम-पारायण, मन्त्र-पारायणादि का विवेचन कर स्वप्न-मन्त्र के तीन भेद स्पष्ट किए गए हैं और यह बताया है कि स्वप्न में प्राप्त मन्त्र का ऋषि, छन्द आदि यदि न बताया गया हो तो उसका ऋषि शिव, छन्द गायत्री, देवता चिद्-रूपा मानना चाहिए। कीलक आदि ऐसे मन्त्र में नहीं होते। यह द्रविड मत के अनुसार है। काश्मीर-मत के अनुसार

स्वप्न-मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, शक्ति स्वर ग्रौर कीलक अव्यक्त माने गए हैं। गौड़-क्रम के ग्रनुसार स्वप्न-लब्ध मन्त्र सिद्ध होता है। अतः न उसके ऋषि, छन्द आदि माने जाते हैं और न उसकी पूजा के कोई नियम। केवल जप मात्र से ही उसकी सिद्धि होती है, ऐसा सिद्धान्त है।

ऋणी, धनी और सिद्ध मन्त्रों का विवेचन करते हुए तीनों क्रमों के अनुसार पुरश्चर्या के अङ्गों को बताया गया है। मन्त्र के जात-सूतक ग्रौर मृत-सूतक इन दो दोषों के निवारण की विधि बताते हुये होम, तर्पण, ग्रभिषेक ग्रादि के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है।

तदनन्तर षडाम्नाय को प्रस्तार-गणना देकर मेरु-प्रस्तार, कैलास प्रस्तार ग्रौर रत्न-गर्भ इन तीन प्रस्तारों की विशेषता बताते हुए गुरु, देवता, मन्त्र ग्रौर स्वात्मा इन चारों की ऐक्य-भावना का महत्व प्रतिपादित किया गया है। फिर श्रीप्रासाद-परा ग्रौर श्रीपरा-प्रासाद मन्त्रों का पारायण-क्रम देकर यह बताया है कि पूर्णाभिषेक-दीक्षा होने पर नाम-पारायण, मन्त्र-पारायण और नाड़ी-पारायण आदि के करने का ग्रधिकार मिलता है। मेधा-दीक्षा से सम्पन्न साधक ही चक्र-पारायण कर सकता है।

चतुर्थ पटल

'यन्त्र-प्रस्तार-निर्णय' शीर्षक के ग्रन्तर्गत इस पटल में श्रीयन्त्र में निहित चार शिव-चक्रों ग्रौर पाँच शक्ति-चक्रों का जो सामरस्य है, उसे स्पष्ट किया गया है। बिन्दु से मन्वस्र तक शक्ति-चक्र और उसके बाद द्वार तक शिव-चक्र बताया गया है। यही शुद्ध चक्र है ग्रौर भू, कैलाश तथा मेरु इन तीन प्रस्तारों के भेद से यह तीन प्रकार का है। भू-प्रस्तार के दो भेद हैं--पाताल ग्रौर ऊर्ध्व। कैलाश-प्रस्तार भी दो प्रकार का है--ग्रर्ध-कैलाश ग्रौर पूर्ण-कैलाश। इसी प्रकार मेरु-प्रस्तार के भी दो भेद हैं। इन छहों में से प्रत्येक के सृष्टि, स्थिति, संहार-क्रम से तीन-तीन भेद होने से कुल १८ रूप होते हैं। मेरु-प्रस्तार में नित्या का, कैलाश-प्रस्तार में मातृका का ग्रौर भू-प्रस्तार में वाग्देवता का तादात्म्य बताया गया है। यह श्रीयन्त्र भगवती षोडशी के सम्बन्ध में वर्णित है। भगवती ललिता के सम्बन्ध में बहुत से प्रस्तार कादि-हादि मत एवं कामराज-लोपादि भेद से बताए गए हैं।

इन सब प्रस्तारों के ज्ञान से श्रीविद्योपासक देवेन्द्र के समान होता है ग्रौर सर्व-सम्भोग-साम्राज्य-लक्ष्मी की उस पर कृपा होती है।

मेधा-दीक्षा से सम्पन्न साधक ही यन्त्र-प्रस्तार का निर्णय कर सकता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस पटल के ३९ श्लोक तक का वर्णन 'यन्त्र-प्रस्तार-स्तव' नाम से प्रसिद्ध है। इस स्तव के पाठ करने से साधक को सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इसे 'यन्त्र-पारायण-स्तव' भी कहते हैं। इस स्तोत्र की फल-श्रुति ५० वें श्लोक तक दी है।

काली, तारा, सुन्दरी और छिन्नमस्ता इन चारों में कोई भेद नहीं है। अतः काली में भी यन्त्र-पारायण करे। ऐसा निर्देश कर तत्त्व-न्यास की विधि बताई है। पैरों से नाभि तक आत्म-तत्त्व, नाभि से हृदय तक विद्या-तत्त्व और हृदय से विन्दु तक शिव-तत्व कहा गया है। सारे मन्त्र का उच्चारण कर सर्वाङ्ग में न्यास करे, यह सर्व-तत्त्व है। आत्म-तत्त्व में १५ तत्त्व हैं, विद्या-तत्व में २५ तत्त्व हैं और शिव-तत्त्व में ३६ तत्त्व हैं। सर्व-तत्त्व में ५० तत्त्व हैं।

अन्त में बताया है कि तत्त्व-ज्ञानी शक्ति-पात कर सकता है।

पञ्चम पटल

'स्नान-भेद-निर्णय' शीर्षक के अन्तर्गत इस पटल में बताया है कि सभी क्रियाओं में स्नान मुख्य है। प्रातः, मध्याह्न और सायं तथा जब भी मन में ग्लानि हो, स्नान करना चाहिए।

स्नान ५ प्रकार के हैं—१ वारुण, २ नाभस, ३ भस्मज, ४ तैजस और ५ दैवत। वारुण स्नान के दो भेद हैं—वैदिक और तान्त्रिक। नाभस स्नान १८ प्रकार का है। भस्मज स्नान ५ प्रकार का है। तैजस-स्नान में गुरु-तेज, मन्त्र-तेज और देव-तेज के ऐक्य की भावना कर तीनों चैतन्य से युक्त अपने स्वरूप की कल्पना करे अर्थात् हृदय में देवता को, कण्ठ में मन्त्र को और सहस्रार में गुरु को प्रतिष्ठित करे। यही तैजस स्नान है। दैवत स्नान में मूलाधार से सहस्रार तक देवता को व्याप्त अनुभव करे। इडा को गङ्गा, सुषुम्ना को यमुना और पिङ्गला को सरस्वती ध्यान कर देह में प्रयाग तीर्थ की भावना करे। सहस्रार में गुरु-पंक्ति की, अंगों की भ्रू-स्थान में और कण्ठ-मूल तक सभी आवरण-देवताओं की भावना करे। यही दैवत स्नान है।

प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्धरात्रि—इन चार कालों में सन्ध्या-वन्दन कर गायत्री का जप करे। प्रातःकाल षष्टि-परायण, मध्याह्न में नाम-परायण, रात्रि में मन्त्र-पारायण और निशा-काल में तूर्य-सन्ध्या करे।

काली में ४, तारा-छिन्ना में ३ सन्ध्याओं का विधान है किन्तु इनमें कोई भिन्नता नहीं है।

षष्ठ पटल

इस पटल का शीर्षक है 'दीपेशादि-विनिर्णय'। पद्मासन से बैठकर साधक अपने मूर्ध्नि में दीपनाथ का पूजन करे। आठ दिशाओं में आठ वर्ग अङ्कित कर उनमें दो-दो स्वर लिखे। इससे महा-नादाक्षर का उद्भव होता है। ईशान-कोण में दीपनाथ की पूजा निम्न मन्त्र से करे—

ॐ श्रीकण्ठादि-नन्दनाथातिरिक्त-पद-वर्णाय रक्त-द्वादश-शक्त्यार्घ-युक्ताय अस्मिन् क्षेत्र इमां पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

८ वें श्लोक में उल्लिखित मन्त्र के जप से उर्वशी का भी वशीकरण होता है। इस मन्त्र का उद्घाटन एक प्राप्य पाण्डुलिपि में निम्न प्रकार किया गया है—

ॐ उच्छिष्ट-चामुण्डे जम्भय जम्भय मोहय मोहय अमुकं मे वशमानय स्वाहा।

माला का सूत्र पुराना होने पर उसे पुनः नवीन सूत्र में बनवा लेना चाहिए। छः मास से अधिक पुराने सूत्र की माला नहीं रखनी चाहिये। माला यदि स्वयं टूट जाय तो प्रायश्चित्त करके पुनः उसे गुहा कर प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये। पुरश्चर्या के जप या होम करते समय यदि माला हाथ से गिर पड़े, तो १०० बार जप द्वारा प्रायश्चित्त करके पुनः पुरश्चरण प्रारम्भ करना चाहिए। नारिकेल-जल की पायस से अयुत होम करने से त्रैलोक्य वशीभूत होता है और तिल-तण्डुल के होम से प्रीति उत्पन्न होती है।

तिल और तण्डुल की मात्रा का निर्णय कर बताया है कि सोलह पात्रों का स्थापन कर पर-देवता की पूजा कर रात्रि में होम करे। उसके बाद तर्पण करे।

अन्त में केरल, काश्मीर और गौड़ क्रम के अनुसार पूजन-काल व दिक्-निर्णय पर प्रकाश डाला गया है।

सप्तम पटल

'देश-व्यवस्था-नियम' शीर्षक के अन्तर्गत इस पटल में भारत के ५६ प्रदेशों के नाम दिए गये हैं, जिनसे १७ वीं शताब्दी के पूर्व की देश की स्थिति ज्ञात होती है। ये प्रदेश निम्न प्रकार थे—

१ अङ्ग, २ बङ्ग, ३ कलिङ्ग, ४ कालिन्द, ५ केरल, ६ हंस-केरल, ७ सर्वेश-केरल, ८ काश्मीर, ९ काम-रूप, १० महाराष्ट्र, ११ आन्ध्र, १२ सौराष्ट्र, १३ तैलङ्ग, १४ मलयाल, १५ कर्णाट, १६ अवन्ती, १७ श्री विदर्भ, १८ मरु, १९ आभीर, २० मालव, २१ कोल, २२ पाञ्चाल, २३ काम्बोज, २४ वैराड्, २५ पाण्डच, २६ विदेह, २७ वाह्लीक, २८ किरात, २९ वक्तान, ३० खुरासान, ३१ ऐराक, ३२ भोटान्त, ३३ चीन, ३४ महा-चीन, ३५ नेपाल, ३६ शिलहट्ट, ३७ गौड़, ३८ महा-कोशल, ३९ मगध, ४० कीकट, ४१ उत्कल, ४२ श्री कुन्तल, ४३ हूण, ४४ कोङ्कण, ४५ कैकय, ४६ शौरसेन, ४७ कुरु, ४८ सिंहल, ४९ पुलिन्द, ५० कच्छ, ५१ मत्स्य, ५२ मद्र, ५३ सौवीर, ५४ लाट, ५५ बर्बर, ५६ सौन्धक ।

इन ५६ देशों की भौगोलिक सीमाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिससे देश की परिवर्तनशील व्यवस्था का रोचक ज्ञान प्राप्त होता है ।

इस पटल के प्रारम्भ में भगवती तारा और काली के ध्यान के सम्बन्ध में रहस्योद्घाटन किया गया है ।

अष्टम पटल

'पञ्च-प्रस्थ-कथन' शीर्षक के अन्तर्गत इस पटल में प्राचीन भारत के पाँच खण्डों का वर्णन किया गया है । ये खण्ड हैं—१ इन्द्र-प्रस्थ, २ यम-प्रस्थ, ३ वरुण-प्रस्थ, ४ कूर्म-प्रस्थ और ५ देव-प्रस्थ ।

इन्द्र से पूर्व दिशा का आशय है । अतः भारत के प्रथम पूर्वी खण्ड के उत्तर में हस्तिनापुर, दक्षिण में गदावर्त, पूर्व में मथुरा व गोकुल, कोण-देश में वृन्दावन और पश्चिम में द्वारिका स्थित है । यह अश्व-पति का देश है । इस प्रस्थ के मध्य में कालिका-मुख-गोचर वाराही-क्षेत्र है ।

यम से दक्षिण दिशा का बोध है । अतः भारत के दक्षिणी खण्ड के पश्चिम में सोमेश्वर, पूर्व में सप्त-शृङ्गी, उत्तर में मायापुर और दक्षिण में व्यङ्कटेश स्थित है । यह नरपति का देश है । इस प्रस्थ के मध्य में कमला-मुख-गोचर शङ्खावर्त माया-क्षेत्र है ।

वरुण से पश्चिम दिशा का तात्पर्य है । अतः भारत के पश्चिमी खण्ड के पश्चिम में मक्केश्वर, उत्तर में हिंगुला और दक्षिण में त्रैलोक्य विजया स्थित है । इस प्रस्थ के मध्य में शीतला-मुख-गोचर राजावर्त-क्षेत्र है ।

कूर्म से मध्य स्थान का आशय है। अतः भारत के मध्यवर्ती खण्ड के दक्षिण में गोकर्ण, पूर्व में कामाख्या, उत्तर में मानसेश और पश्चिम में शारदा स्थित है। इस प्रस्थ के मध्य में वज्रेशी-मुख-गोचर त्रिगुणावर्त-क्षेत्र है।

देव से उत्तर दिशा का बोध है। अतः भारत के उत्तरी खण्ड के दक्षिण में श्रीरङ्ग, पश्चिम में गायत्री, पूर्व में जगन्नाथ और उत्तर में अमरकण्टक स्थित है। इस प्रस्थ के मध्य में ललिता-मुख-गोचर मोहनावर्त काञ्ची-पुर कामाख्या-क्षेत्र है।

इन पञ्च-प्रस्थों के ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव हैं, जो काली-तारा-परायण हैं।

नवम पटल

'लता-साधन' शीर्षक के अन्तर्गत इस पटल में तन्त्रोक्त रहस्यमयी शक्ति-पूजा का वर्णन किया गया है।

दशम पटल

'अज्ञात-दुर्निमित्तं' शीर्षक के अन्तर्गत इस पटल में आकाश में दिखाई देनेवाले धूम्रादि केतुओं से भावी सङ्कटों का अनुमान कर उनके शान्त्यर्थ श्रीविद्या-मण्डप की प्रतिष्ठा करने का निर्देश किया गया है।

एकादश पटल

इस पटल में महाकाल के मन्त्र की विधि बताई गई है। विधि बताने के पूर्व पिछले पटल के तारतम्य में केतुओं के विविध भेदों तथा अन्य अमङ्गल-सूचक चिह्नों का परिचय और उनके द्वारा सूचित भावी सङ्कटों का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर साम्राज्यमेधा-दीक्षा के फल का उल्लेख कर दैत्य-गुरु शुक्राचार्य की महिमा बताकर धनेश कुबेर, वह्नि और इन्द्र का महत्व दर्शाया है।

इसके बाद गौड़, केरल और कश्मीर के क्रम-भेद से जीव-न्यास के पाँच प्रकारों का वर्णन कर रुद्राक्ष-धारण का फल बताया है कि रुद्राक्ष से विभूषित साधक रुद्र के समान होता है। रुद्राक्षमण्डप में दक्षिणामूर्ति और आनन्द-भैरव मतानुसार श्रीचक्र के विविध रूपों का विचार कर पीठ-क्रम को जानकर श्री यन्त्र में शक्ति का पूजन करने से साधक सर्व-सिद्धियों का स्वामी होता है।

यन्त्र चैतन्य मूर्ति-स्वरूप है और पीठ को पात्र कहा है। अतः यन्त्र के नीचे पीठ का पूजन करे। पीठ के ऊपर यन्त्र को स्थापित कर उसके मध्य में शुभ योग और शुभ दिन महा-पर्व में पूजन करे। चन्द्र-सूर्य-ग्रहण-काल में यन्त्र की स्थापना करे। पवित्रारोपण और अधिवासन कर्म को जानकर विधिवत् समस्त कर्म करे। किसी कर्म का लोप न करे अन्यथा महा-पाप होता है। प्रथम प्रहर में अधिवासन और तृतीय प्रहर में पवित्रारोपण करे।

पुरश्चर्या भी तीन प्रकार की है—केरल में दशाङ्गा, कश्मीर में अष्टाङ्गा और गौड़-मार्ग में पञ्चाङ्गा। साम्राज्य-मण्डल-क्रम को जानकर जप से पुटित पूजा और पूजा से पुटित जप इस प्रकार साधना करे। मन्त्र को पूजा-युक्त ही जपना चाहिए, केवल मन्त्र-जप नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जप-युक्ता ही पूजा करनी चाहिए, केवल पूजा नहीं होती।

इसके बाद भूत-प्रेतादि ग्रहों की शान्ति करने का उपाय बताकर कुल्लुका, सेतु, महासेतु, निर्वाण आदि का महत्व स्पष्ट किया है। विद्या-सम्बन्धी दोषों को खा जाती है, इससे 'कुल्लुका' कही जाती है। विद्या की सिद्धि-रूपी सागर को जिसकी सहायता से पार करते हैं, उसे 'सेतु' कहते हैं और महा-विद्या की प्राप्ति का मार्ग-दर्शक होने से 'महा-सेतु' की प्रसिद्धि है। 'निर्वाण' देवता के चैतन्य को प्रकट करता है और परब्रह्मात्मक है।

काली की कुल्लुका पञ्चाक्षरी है—क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्।

तारा की कुल्लुका त्र्यक्षरी है और नीला तथा छिन्नमस्ता की कुल्लुका अष्टाक्षरी है—वज्र-वैरोचनीये फट्।

भैरवी की कुल्लुका है—हैस्त्रं।

श्रीमत्-त्रिपुरसुन्दरी की कुल्लुका द्वादशाक्षरी है—ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा।

अन्य देवताओं की कुल्लुका त्र्यक्षरी है—ॐ स्त्रीं फट्।

छिन्नमस्ता के द्वार-देवता अघोर और विरूपाक्ष कुल्लुकादि के ऋषि कहे गये हैं। छन्द, बीज और शक्ति अपने अपने देवता के अनुसार होते हैं। पुरश्चर्या आदि अपने मूलमन्त्र के समान की जाती है।

महा-कुण्डलिनी का मन्त्र है—ॐ जूं सः काल-मूर्ति काल-प्रबोधिनि कालातीते काल-दायिनि कपाल-पात्र-धारिणि अमरि कुण्डलिनि जूं सः वञ्च वञ्च सोहं स्वाहा।

मूलाधार में कुण्डली देवी का और उसके नीचे कामराज का ध्यान करे। वही 'स्पर्श-सुन्दरी' कही जाती है। वह महा-काम-कला-रूपा है और उसके मूर्ध्नि में 'काकिनी' स्थित है।

अब महाकाल की विशेषता बताकर त्रिलोक की रक्षा करने-वाले उनके षोडशाक्षर-मन्त्र को बताया है--हूँ हूँ महा-काल! प्रसीद प्रसीद ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

भगवती काली के सभी रूपों के शिव यही महाकाल हैं। उक्त मन्त्र का विनियोग है--ॐ अस्य महाकाल-मन्त्रस्य कालिका ऋषिः, विराट् छन्दः, सर्व-रूपी निरञ्जनः महाकालः देवता, हूँ बीजं, ह्रीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, देवता-प्रीत्यर्थे विनियोगः।

इसके बाद निर्देश किया है कि माया-बीज (ह्रीं) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा--'कोटि-कालानलाभासं......प्रसन्न-वदनं शिवम्।'

तदनन्तर पञ्च-त्रिकोणात्मक पूजा-यन्त्र में, योनि में अथवा कामिनी के हृदय, मस्तक या स्तन-मण्डल में महाकाल के पञ्चावरण-देवताओं का पूजन करे।

पूजन के बाद मन्त्र का एक लाख जप, जप का दशांश हवन स्वयम्भू-बीज या कारण से सिक्त करवीर-पुष्पों द्वारा करे। नित्य, नैमित्तिक या काम्य सभी कर्म भगवती काली की पूजा-विधि के समान ही करना चाहिए।

अब काली की अन्तर्धान-करी विद्या की साधना-विधि यह बताई है कि ध्यानोक्त मूर्ति का ध्यानकर मूलाधार में गणपति, लिङ्ग में गणप-वल्लभा, नाभि में बटुकनाथ, हृदय में बटुक-वल्लभा, कण्ठ में उड्यान-पीठ, भ्रू में प्रदीप्त-मङ्गला, ललाट में करवीर, अलक में क्षेत्र-पाल, मूर्ध्नि में कालिका एवं व्योमेश्वर्यम्बा, ललाट में खेचरी, भ्रू-मध्य में दिक्-चरी, हृदय में गोचरी, नाभि में भू-चरी, लिङ्ग में खग-मूर्तिका, मूल-पत्र में विचित्रा, ललाट में सूर्य, दक्ष-नेत्र में चन्द्र, वाम-नेत्र में अग्नि, कण्ठ में कालिका, हृदय में दास-योनि, नाभि में दास-सिद्ध (दीप्ति-सिद्धि) का पूजन कर मूर्ध्नि, ललाट, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग, मूलाधार और सर्वाङ्ग में क्रमशः अष्ट-माताओं और अष्ट-भैरवों की पूजा करे।

अष्ट-माताएँ हैं--१ ब्राह्मी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ ऐन्द्री, ७ चामुण्डा, ८ महालक्ष्मी।

अष्ट-भैरव हैं—१ मन्थान-भैरव, २ षट्-चक्र-भैरव, ३ फट्कार-भैरव, ४ विभक्ष (बिम्भक्ष) भैरव, ५ वीरेश-भैरव, ६ श्रीमन्तेश्वर (श्रीमन्त-त्रिपुर) भैरव, ७ हंस-गर्भ (सर्ग) भैरव, ८ चण्डिकेश्वर-भैरव।

उक्त सभी देवताओं के नाम में चतुर्थी विभक्ति लगाकर पूजा करे। यथा—'ॐ गणपतये नमः, ॐ गणप-वल्लभायै नमः' इत्यादि।

फिर मूल-मन्त्र का यथा-शक्ति जप कर निम्न मन्त्र से क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करे—ॐ क्षें क्षेत्रपाल इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

द्वादश पटल

पर-काय-प्रवेश की साधना एवं षट्-चक्रों में वर्णों के ध्यान की विधि बताकर यह स्पष्ट किया है कि मूलाधार में उक्त भावना के अभ्यास से मन्त्र-सिद्धि मिलती है और विद्या शक्ति-मती होती है। नाभि-चक्र में विद्या-ज्ञान के लिए ध्यान करे, जिससे छः मास के भीतर साधक को देह का ज्ञान होता है। हृदय-कमल में भावना का अभ्यास करने से साधक त्रिकालज्ञ होता है और कण्ठ में भावनाभ्यास से देह-सिद्धि मिलती है।

अब काली की नित्याओं को बताते हैं। यथा—१ काली, २ कपालिनी, ३ कुल्ला, ४ कुरुकुल्ला, ५ विरोधिनी, ६ विप्रचित्ता, ७ उग्रा, ८ उग्रप्रभा, ९ दीप्ता, १० नीला, ११ घना, १२ बलाका, १३ मात्रा, १४ मुद्रा और १५ मिता—यही काली का नित्या-मण्डल है।

प्रथम 'काली'-नित्या का मन्त्र १९ अक्षर का है—ॐ ह्रीं कालि कालि महा-कालि कौमारि मह्यं देहि स्वाहा।

इसका विनियोग है—ॐ काली-नित्या-मन्त्रस्य परशुराम ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, कालिका देवता, ह्रीं बीजं, क्रीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, कालिका-प्रीणनाद्यर्थे विनियोगः।

माया-वीज (ह्रीं) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—श्याम-वर्णा ......प्रेत-भूमिषु।

इस प्रकार ध्यान कर त्रिकोण-युग्म, बृत्त, अष्ट-दल और भूपुरात्मक पूजा-यन्त्र के विन्दु में काली का पूजन कर विधिवत् आवरण-देवताओं का पूजन करे। नैवेद्य अर्पित कर नीराजन कर एक लक्ष मन्त्र-जप करे। दशांश हवन पायस अथवा करवीर से करे तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

त्रयोदश पटल

द्वितीय 'कपालिनी'-नित्या का मन्त्र २९ अक्षर का है—ॐ ह्रीं

क्रीँ कपालिनि महा-कपाल-प्रिय-मानसे कपाल-सिद्धि मे देहि हूँ फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ कपालिनी-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, कपालिनी देवता, क्रीं वीजं, स्वाहा शक्तिः, हूँ फट् कीलकं, कपालिनी-सिद्धये विनियोगः।

षट्-दीर्घ बीज अर्थात् 'क्रां, क्रीं, क्रूं, क्रैं, क्रौं, क्रः' से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे—ध्यायेदञ्जन-पुञ्जाभां......गीत-हास्य-परायणाम्।

त्रिकोण-त्रय, वृत्त, अष्ट-दल और भूपुरात्मक पूजा-यन्त्र के प्रथम-द्वितीय त्रिकोण में क्रमशः महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती और रति-प्रीति-कान्ति का पूजन कर तृतीय त्रिकोण में इच्छा-ज्ञान-क्रिया का पूजन करे। मध्य में कपालिनी का पूजन कर अष्ट-दल में मातृ-काओं की पूजा कर अष्ट-भैरवों, दिक्-पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करे।

कुलाचार का पालन करते हुए पञ्चोपचारों से पूजन कर साधक एक लक्ष मन्त्र-जप करे। हयारि-कुसुम अथवा मांस और मधु से इष्ट-सिद्धि के लिए हवन करे।

पुरश्चरण के बिना कपालिनी कैसे सिद्ध हो सकती है? अतः मुण्डासन पर बैठकर सदा देवता का ध्यान करे। महा-माला, महा-पात्र, महा-यन्त्रासनादि की विधिवद् व्यवस्था करे। तब साधक सफल होता है।

'मोहनाञ्जन' प्राप्त करने की विधि बताकर तृतीय 'कुल्ला'-नित्या के विषय में बताया है कि इस नित्या के तीन नाम हैं—१ कालिका, २ कुल्लुका, ३ कुल्ला। कुल की पूज्य होने से 'कुल्ला' या 'कुल्लुका' कहते हैं। इसका मन्त्र ७ अक्षर का है—ॐ क्रीँ कुल्लायै नमः।

विनियोग—ॐ कुल्ला-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, गायत्री छन्दः, कुल्ला-काली देवता, कालिका बीजं, कुल्ला शक्तिः, नमः कीलकं, सर्वार्थ-साधने विनियोगः।

कालिका-विषयक पूजन-यन्त्र में पूजा करे। कुमारी-पूजन से देवी कुल्ला निश्चय ही सिद्ध होती हैं। दो लक्ष मन्त्र का जप करे। ध्यान है—कदाचिदभ्र-सदृशां.........कुलाम्बां परिचिन्तयेत्।

जप का दशांश करवीर और जपा-पुष्पों से हवन करे। उसके दशांश से गन्ध-जल से तर्पण तथा मार्जन करे। अन्त में ब्राह्मण-भोजन कराकर कुमारी-पूजन करे, तो सब विद्याओं का ज्ञान देनेवाली 'कुल्ला'-विद्या प्रसन्न होती है।

नैमित्तिक और काम्य कर्मों में त्रिकोण-द्वय, वृत्त, अष्ट-दल और चतुर्द्वार-युक्त-भूपुरात्मक पूजा-यन्त्र के मध्य में काली-बीज-युक्त बीज का न्यास करे। दूसरे त्रिकोण में धृति, पुष्टि, मेधा, तुष्टि, प्रज्ञा और जया की पूजा करे। दलों में अष्ट-मातृकाओं और भैरवों का पूजन कर लोकपालों और शस्त्रों की पूजा करे। अथवा कालिका के समान ही सारा पूजन करे।

दोनों नवरात्रों में, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में, संक्रान्ति में उत्तम कामना की सिद्धि के लिए यन्त्र में 'कुल्लुका' का अर्चन करे।

चतुर्दश पटल

चतुर्थ नित्या 'कुरुकुल्ला' का मन्त्र २७ अक्षर का है—क्रीँ ॐ कुरुकुल्ले क्रीँ ह्रीँ मम सर्व-जन-वशमानय क्रीं कुरुकुल्ले ह्रीँ स्वाहा।

इस नित्या का हृन्मनु ६ अक्षर का है—ॐ हूँ कुरुकुल्ले ह्रीँ स्वाहा।

इस हृन्मनु के बिना 'कुरुकुल्ला' की सिद्धि नहीं होती।

विनियोग—ॐ कुरुकुल्ला-नित्या-मन्त्रस्य कालभैरव ऋषिः, वृहती छन्दः, कुरुकुल्ला देवता, क्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, सर्वार्थ-सिद्धयर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ काली-वीज (क्रीँ) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—शवोपरि समासीनां... ..कुरुकुल्लां महोदयाम्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर त्रि-मधुरान्वित विल्व-पत्रों व विल्व-पुष्पों से होम करे। उसके दशांश से तर्पण, तर्पण के दशांश से मार्जन और उसके दशांश से विप्र-भोजन कराए। तब मन्त्र सिद्ध होता है।

त्रिकोण-त्रय, वृत्त, अष्टदल और भूपुर-द्वयात्मक पूजा-यन्त्र के विन्दु में काली-वीज लिखकर शक्ति-त्रय का क्रमशः तीन त्रिकोणों में पूजन करे। शक्ति-त्रय हैं—१ काली-तारा-छिन्नमस्ता, २ बालाम्बा-बगला-रमा और ३ उग्रगर्भा-उग्रवीजा-उग्रवीर्या।

अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्ट-मातृकाओं और अष्ट-भैरवों का पूजन करे। भूपुर में लोकपालों तथा उनके अस्त्रों की पूजा करे।

शव, श्मशान या अरण्य विपिन में 'कुरुकुल्ला' की पूजा करने से साधक को सब सिद्धियाँ मिलती हैं; जो भी वह चाहता है, उसे प्राप्त होता है।

सभी ब्राह्मणों और सुवासिनियों की पूजा करे, तो पूर्ण सफलता मिलती है।

तण्डुल (चावल) से जय और गोधूम (गेहूँ) से धन प्राप्ति होती है। माष (उड़द) से शत्रु-नाश और मुद्ग (मूँग) से मोक्ष होता है। तिल-तण्डुल के होम से देवता की महा-प्रीति मिलती है। राजी-लवण, सर्षप-लवण या सर्पि (घृत)-लवण के होम से कामिनी वशीभूत होती है। हरिद्रा से दरिद्रता नष्ट होती है।

पञ्चमी नित्या 'विरोधिनी' का मन्त्र ३३ अक्षर का है—ॐ क्रीं ह्रीं क्लीं हूँ विरोधिनी शत्रूनुच्चाटय विरोधय विरोधय शत्रु-क्षयङ्करी हूँ फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ विरोधिनी-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, गायत्री छन्दः, विरोधिनी देवता, क्रीं बोजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कोलकं, अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे विनियोगः।

काली-वीज को षड्-दीर्घ कर दोनों षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान—ध्यायेदञ्जन-गिरि-निभां ....शत्रूणां नाश-कारिणीम्।

त्रिकोण-त्रय, वृत्त, अष्ट-दल, चतुर्द्वार-युक्त एक भूपुरात्मक यन्त्र की कर्णिका में विरोधिनी का पूजन कर तीनों त्रिकोणों में क्रमशः १ धूम्रार्चि-ऊष्मा-ज्वालिनी, २ ज्वलिनी-विस्फुलिङ्गिनी-सुश्री और ३ सुरूपा-कपिला-हव्यवहा का पूजन कर अष्ट-दलों में अष्ट-भैरवी सहित अष्ट-भैरवों की पूजा करे। भूपुर में लोकपालों की और उसके बाहर उनके अस्त्रों का पूजन करे।

तब नीराजन कर मन्त्र का एक लक्ष जप करे। उसका दशांश विधिवत् हवन करे। बिभीतक के होम से शत्रु-नाश, धत्तूर-कुसुमों के होम से शत्रुओं का विद्वेषण, काकोलूक के मांस-होम से मारण होता है इत्यादि।

पञ्चदश पटल

वैप्रचित्त का नाश करने एवं अति दुष्टों के वध के लिए उद्यत होने से छठी नित्या 'विप्रचित्ता' नाम से प्रसिद्ध है। उसका मन्त्र ३७ अक्षर का है—ॐ श्रीँ क्लीँ चामुण्डे विप्रचित्ते दुष्ट-घातिनि शत्रून् नाशय एतद् दिनावधि प्रिये सिद्धि मे देहि हूँ फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य विप्रचित्ता-नित्या-मन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, जगती छन्दः, विप्रचित्ता देवता, चामुण्डा बीजं, श्रीँ शक्तिः, क्लीँ कीलकं, अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ काम-वीज से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—सिंहोपरि समारूढां...... साधकानामभीतिदाम्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर दशांश कुमुदों से हवन, उसके दशांश अष्ट-गन्ध-जल से तर्पण, उसके दशांश से मार्जन, उसके दशांश से अभिषेक और उसके दशांश ब्राह्मणों को भोजन कराये।

त्रिकोण-वृत्त-षट्कोण-वृत्त-अष्टदल-वृत्त और भूपुरात्मक यन्त्र के मध्य विन्दु में विप्रचित्ता का पूजन कर त्रिकोण में त्रिगुणा का अर्चन करे। षट्कोण में षडङ्गों का, दलों में अष्ट मातृकाओं एवं भैरवों का, भूपुर में लोकपालों का और उसके बाहर शस्त्रों की अर्चा कर नीराजन करे। जप-फल को देवी को समर्पित कर साधक हवन करे। हवन की विविध सामग्रियों का फल निर्देश कर अगली नित्या की विधि बताई है।

सातवीं नित्या 'उग्रा' का मन्त्र ७ अक्षर का है—ॐ स्त्रीँ हूँ ह्रौँ ॐ हूँ फट्।

विनियोग—ॐ अस्य उग्रा-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, वृहती छन्दः, उग्रा देवता, हूँ वीजं, फट् शक्तिः, स्त्रीँ कीलकं, सर्वाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ माया-बीज से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—ततो ध्यायेत् परामुग्रां ....वरदान-परायणाम्।

दो लक्ष मन्त्र-जप कर उसके दशांश कमलों को घृत-युक्त कर उनसे हवन करे। फिर सविधि दशांश तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराए।

त्रिकोण-वृत्त-अष्टदल-वृत्त-भूपुरात्मक यन्त्र के मध्य में कूर्च-वीज (हूँ) लिखे। त्रिकोण में तारा-नीला-एकजटा का अर्चन कर अष्ट-दलों में उग्रा-घोराष्टक, वैरोचनाष्टक, पद्मान्तकों की अर्चा कर विधिवत् लोकपालों और उनके अस्त्रों का अर्चन करे। तब नीराजन कर देवी को जप समर्पित कर शवासन पर सदा जप करे।

आठवीं नित्या 'उग्रप्रभा' का मन्त्र पच्चीस अक्षर का है—ॐ ह्लँ ह्लूँ उग्रप्रभे देवि कालि महादेवि स्वरूपं दर्शय हूं फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य उग्रप्रभा-नित्या-मन्त्रस्य महाकाल ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, उग्रप्रभा देवता, हूँ बीजं, ॐ शक्तिः, फट् कीलकं, कालिका-दर्शनाद्यर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ बीज से षडङ्ग न्यास कर ध्यान करे। यथा—ध्याये-दुग्रप्रभां ......काल-वञ्चनीम्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर दो त्रिकोण-अष्टदल और दो भूपुरात्मक यन्त्र के मध्य विन्दु में उग्रप्रभा का अर्चन कर पहले त्रिकोण में काली-तारा-रोचनो को और दूसरे त्रिकोण में तारा-एकजटा-नीला की अर्चा करे। दलों में अष्ट-मातृकाओं का और दलाग्र में अष्ट-भैरवों का अर्चन कर भूपुर में लोकपालों को और उसके बाहर उनके अस्त्रों की अर्चा करे।

जप का दशांश मैरेय-युक्त वज्र-पुष्पों से हवन करे। दुग्ध या मधु से दशांश तर्पण कर दधि, इक्षु-रस या पीठ-तोय से दशांश मार्जन करे। दशांश ब्राह्मणों को भोजन कराकर कुमारी-पूजन कर शक्ति-पूजा करे।

उग्रप्रभा की उपासना से साधक सब सिद्धियों को प्राप्त कर काली-रूप हो जाता है।

षोडश पटल

नवमो नित्या 'दीप्ता' का मन्त्र १६ अक्षर का है—ॐ क्रीँ ह्रीँ हूँ दीप्तायै सर्व-मन्त्र-फलदायै हूँ फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य दीप्ता-नित्या-मन्त्रस्य महादेव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दीप्ता-नित्या देवता, क्रीँ वीजं, ह्रीँ शक्तिः, स्वाहा कीलकं, अभीष्ट- सिद्धयर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ काली-वीज (क्रीँ) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—ध्यायेद् दीप्तां.........श्मशानालय-वासिनीम्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर दशांश करवीर-पुष्प से हवन करे। कदली के हवन से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। दशांश गन्धाष्टक-जल से मार्जन और उसके दशांश ब्राह्मणों व कुमारियों को भोजन कराए।

ब्राह्म मुहूर्त में उठकर गुरुदेव का स्मरण करते हुए सहस्रार में गुरु का ध्यान कर मूलाधार से अपनी जिह्वा तक व्याप्त परा मूल-विद्या की भावना करे। दीप-रूपा सरस्वती को मूल-वीज-स्वरूपिणी ध्यान करे। सम्पूर्ण मातृका का उच्चारण कर मूल-विद्या का उच्चारण कर पुनः मातृका का उच्चारण कर फिर मूल-विद्या का उच्चारण करे। इस प्रकार तीन बार जल को अभिमन्त्रित करे। फिर मूल-विद्या को अपनी जिह्वा में दीप-रूपिणी, तेजो-रूपा, सायुधा ध्यान कर उक्त जल का पान करे। इससे साधक त्रिकालज्ञ होता है। न्यास, ध्यान, पाठादि के बिना ही चतुर्विध पाण्डित्य उसमें आ जाता है।

जाती-पुष्प के होम से काव्य-शक्ति, कुन्द-पुष्प से सर्व-शास्त्रों का ज्ञान, दूर्वा से शान्ति, गुडूची से मृत्यु-निवारण, सुरा से मोहन, जम्बा से स्तम्भन, आम्र से वशीकरण, अम्बुज से महोन्नति, करीष से उच्चाटन, कर्कटी-फल से विद्वेषण, नील-पुष्प से मारण और मरिच के होम से आकर्षण होता है।

दसवीं नित्या 'नीला' का मन्त्र २१ अक्षर का है—हूँ हूँ क्रीँ क्रीँ ह्रीँ ह्रीँ हसबलमरी नील-पताके हुं फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य नीला-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, बृहती छन्दः, महा-नील-पताकिका देवता, क्रीँ वीजं, हूँ शक्तिः, हूँ फट् कीलकं, अभीष्ट-सिद्धयर्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ काली-वीज से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—अथ ध्यायेन्महा-नीलां .....नीलाम्भोज-वन-प्रभाम्।

हविष्याशी और जितेन्द्रिय होकर कुलाचार के क्रम से तीन लक्ष मन्त्र-जप करे। परिष्कृत भूमि पर त्रिकोण-कुण्ड में हवन करे। दुग्ध या सुरा से दशांश तर्पण कर रक्त-जल से तर्पण करे। फिर ब्राह्मणों और सुवासिनी-कुमारी-शक्ति इन तीनों को भोजन कराये।

पुरश्चरण करने से ही मन्त्र सर्वार्थ-दायक होता है।

पूजा-यन्त्र के मध्य-विन्दु में कूर्च-वीज (हूँ) लिखकर उसके ऊपर त्रिकोण-वृत्त-षट्कोण-वृत्त-अष्टदल-वृत्त-चतुर्द्वार-युक्त भूपुर बनाये। चारों द्वारों पर वटुकादि द्वार-देवताओं का, उसके बाहर उनके अस्त्रों का, अष्ट-दलों में भैरवों का, केसरों में अष्ट-मातृकाओं का, वृत्त में अष्ट-सिद्धियों का, षट्-कोण में षडङ्गों का और त्रिकोण में कालरात्रि-महारात्रि-मोहरात्रि इन तीन देवताओं का अर्चन कर मध्य में नीला की आराधना करे। तब नैवेद्य अर्पित कर नीराजन करे। फिर स्तुति कर, नमस्कार-पूर्वक विसर्जन करे।

'क्रीँ हूँ स्त्रीँ ह्रीँ अमुकी यक्षिणी क्रीँ हूँ स्त्रीँ हूँ फट् स्वाहा'-इस मन्त्र से ६३ यक्षिणियों का पूजन करे। इसी प्रकार 'हूँ क्रीँ हूँ प्रीँ सर्वे यक्षा हुँ फट् स्वाहा'—इस मन्त्र से यक्षों का अर्चन करे।

सप्तदश पटल

ग्यारहवीं नित्या 'घना' का मन्त्र १४ अक्षर का है—ॐ क्लीँ ॐ घनालये घनाघने ह्रीँ हूँ फट्।

विनियोग—ॐ अस्य घना-नित्या-मन्त्रस्य घोर भैरव ऋषिः, विराट् छन्दः, घना-नित्या देवता, क्रीँ बीजं, ह्लीँ शक्तिः, हुं फट् कीलकं, कालिका-प्रीतये विनियोगः।

षड्-दीर्घ 'क्रीं' बीज से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—घना-नित्यां··· ··विभ्रतीं क्रमात्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर दशांश घृताक्त कमल-पुष्पों से हवन करे। दशांश तर्पण गन्ध और दुग्ध आदि से कर, शीतल जल से दशांश मार्जन करे। दशांश ब्राह्मण-भोजन कराए।

षट्-कोण-वृत्त-अष्टदल-भूपुरात्मक यन्त्र के षट्-कोणों में षडङ्गों का पूजन कर अष्ट-दल में अष्ट-मातृकाओं और भैरवों की अर्चा कर भूपुर में लोक-पालों की तथा उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे। तब यथा-शक्ति जप कर नीराजन करे। अन्त में स्तुति-पूर्वक नमन कर विसर्जन करे।

बारहवीं नित्या 'बलाका' का मन्त्र है—ॐ क्रीँ हूँ ह्लीँ बलाका-कालि अत्यद्भुत-पराक्रमे अभीष्ट-सिद्धि मे देहि हुं फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य बलाका-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, बलाका-नित्या देवता, क्रीँ बीजं, हूँ शक्तिः, ह्लीँ कीलकं, कालिका-प्रीतये विनियोगः।

कीलक (ह्लीँ) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—अञ्जनान्त-सदृशीं··ते करोम्यहम्।

एक लक्ष मन्त्र-जप कर दशांश बिल्व-पत्रों को घृत में भिगो कर हवन करे। दशांश तर्पण, दशांश मार्जन कर उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराए। जो कर्म न कर सके, उसके स्थान में विप्र-भोजन कराने से उस कर्म की पूर्ति हो जाती है।

तेरहवीं नित्या 'मात्रा' का महा-मन्त्र है—ॐ क्रीँ ह्लीँ हूँ अँ आँ... हँ लँ क्षँ ॐ क्रीँ ह्लीँ हूँ अँ आँ ·····हँ लँ क्षँ ॐ क्रीँ ह्लीँ हूँ।

अन्य मन्त्र है—ॐ क्रीं ह्लीं हूं महा-मात्रे सिद्धि मे देहि सत्वरं हूं फट् स्वाहा।

दूसरा मन्त्र है—ॐ क्रीं हूं ह्लीं शिवे मात्रे ॐ क्रीं हूं ह्लीं हूं फट् स्वाहा।

इस प्रकार नाम के आदि में बीजों के योग से या सम्पुट करने से नित्याओं के अनेक प्रकार के मन्त्र होते हैं।

विनियोग—ॐ अस्य मात्रा-नित्या-मन्त्रस्य भैरव ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, मात्रा-नित्या देवी देवता, क्रीं बीजं, हूं शक्तिः, ह्लीं कीलकं,

कालिकार्थे (महेष्टार्थे) विनियोगः ।

षड्-दीर्घ माया (ह्रों) से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा— चतुर्भुजां त्रिनयनां ....श्रीमात्रां महा-घोर-निनादिनीम् ।

एक लक्ष मन्त्र जप कर बिल्व अथवा केले के फलों, अंगूरों या खीर से दशांश हवन करे। तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन यत्न-पूर्वक करे। जो कर्म न हो सके, उसके स्थान में दुगना जप करे।

चौदहवीं नित्या 'मुद्रा' श्रीविद्या-क्रम में 'मुद्रिणी' नाम की दण्डिनी है। महा-विद्याओं आदि के मन को द्रवित करने से इसे 'मुद्रा' कहा है। इसका मन्त्र है—ॐ क्रों ह्रीं हूं प्रीं फ्रें मुद्राम्बा मुद्रा-सिद्धि मे देहि भो जगन्मुद्रा-स्वरूपिणी हूं फट् स्वाहा।

विनियोग—अस्य मुद्रा-नित्या-मन्त्रस्य महादेव ऋषिः, गायत्री छन्दः, मुद्रा-नित्या महादेवी देवता, क्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, हूं कीलकं, कालिकार्थे विनियोगः।

षड्-दीर्घ 'क्रीं' से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा—अञ्जनाद्रि-निभां ....ब्रूहीति वादिनीम् ।

त्रिकोण-वृत्त-षट्-कोण-वृत्त-अष्टदल-भूपुरात्मक यन्त्र के चार द्वारों पर गणेश, योगिनी, क्षेत्र-पाल और बटुक का पूजन कर भूपुर में लोक-पालों व उनके अस्त्रों की पूजा क्रमशः करे। अष्ट-दलों में मातृकाओं की अर्चा कर केसरों में अष्ट-भैरवों की पूजा करे। अष्ट-दलों के अग्र भाग में अष्ट-सिद्धियों की अर्चा कर षट्-कोणों में षडङ्गों का पूजन करे। षट्-कोणों में क्रमशः १ राज्यदा, २ भोगदा, ३ मोक्षदा, ४ जयदा, ५ अभयदा और ६ सिद्धिदा की पूजा कर त्रिकोण में १ इच्छा, २ ज्ञान और ३ क्रिया की अर्चा करे। मध्य में सभी उपचारों से मुद्रा की पूजा कर नीराजन करे।

नीराजन के बाद प्राणायाम कर दो लक्ष मन्त्र-जप कर श्वेत करवीर-पुष्पों से दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, दशांश मार्जन कर उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराए।

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध करनेवाला साधक ही मन्त्र के प्रयोग करने का अधिकारी होता है।

अष्टादश पटल

पन्द्रहवीं नित्या 'मिता' का मन्त्र २७ अक्षर का है—ॐ क्रों हूं ह्रों ऐं मिते परिमिते पराक्रमाय ॐ क्रों हूं ह्रीं ऐं सोहं हूं फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य मिता-नित्या-मन्त्रस्य महाकाल ऋषिः,

त्रिष्टुप् छन्दः, मिता-नित्या देवता, क्रीं बीज, हूं शक्तिः, ह्रीं कीलकं, कालिकार्थे विनियोगः ।

षड्-दीर्घ 'ह्रीं' से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे । यथा—ध्यायेन्नीलाद्रि-सङ्काशां······दीन-नाथां विभावयेत् ।

तीन लक्ष मन्त्र जप कर किंशुक या ज्योतिष्मती के फूलों से हवन करे । मन्त्र-सिद्धि हेतु लाल करवीर से हवन करे । खदिर की संस्कृत अग्नि में त्रिकोण-कुण्ड में हवन करे । ताम्बूल के पत्तों से होम करने से कालिका प्रसन्न होती हैं । नागवल्ली के हवन से नागिनी और वज्र-पुष्पों के हवन से डाकिनी सिद्ध होती है । धूस्तुर के हवन से शत्रु-नाश होता है और कुन्द-होम से कवित्व-शक्ति प्राप्त होती है । जाती-पुष्प से विजय, तिल-पुष्पों से बल और उन्नति, पुन्नाग से पुरुषार्थ, केतकी से सुन्दर स्त्री, आसुरी से शत्रु-नाश, चन्दन से विजय, अगुरु से राजकीय पद, रक्त चन्दन से सभी का मोहन, गिरि-कर्णी से कन्या, सेवन्ती से शिव-स्वरूपता, गुडूची से शत्रु-नाश, मरीच से आकर्षण, पूगी-फलों से सौभाग्य, जाति- फलों से धन, चम्पक से स्तम्भन और जम्बु के हवन से दुःख-नाश—इस प्रकार विविध प्रकार के होम से अपनी कामना की पूर्ति करे ।

होम का दशांश तर्पण पीठ-जल, गन्धोदक या केसर-जल से करे । तर्पण का दशांश मार्जन और उसका दशांश ब्राह्मणों, शक्तियों और कुमारियों का पूजन-भोजन सम्पन्न करे । इससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं ।

त्रिकोण-त्रितय, वृत्त, षट्-कोण, वृत्त, अष्ट-दल और चतुर्द्वार-युक्त भूपुरात्मक पूजा-यन्त्र बनाए तथा उसके मध्य में विन्दु अङ्कित करे । पहले त्रिकोण में १ काली, २ करालिनी, ३ घोरा की; दूसरे त्रिकोण में १ वामा, २ ज्येष्ठा, ३ रौद्री की; तीसरे त्रिकोण में १ इच्छा, २ ज्ञान, ३ क्रिया की पूजा कर वृत्त में १ वार्तालि, २ लघु-वाराही, ३ स्वप्न-वाराही और ४ तिरस्करिणी की पूजा करे । षट्-कोणों में षडङ्गों को और वृत्त में अष्ट-सिद्धियों की पूजा करे । अष्ट-दलों में मातृकाओं की पूजा करे । उनके अन्त भाग में भैरवों की पूजा कर भूपुर में लोकपालों को और उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे ।

इस प्रकार आराधना करने से मन्त्र की सिद्धि प्राप्त होती है ।

अथवा सभी नित्याओं के लिए सामान्य ध्यान करे । यथा—

अञ्जनाद्रि-निभाः सर्वा मुण्ड-माला-विभूषणाः ।
दक्ष-हस्ते देवी-खड्गं वाम-हस्ते च तर्जनीम् ।
धारयन्त्यः शुभाः काल्या वरदाभय-तत्-कराः ॥

अर्थात् सभी नित्या देवियाँ कृष्ण-वर्णा हैं, मुण्ड-माला गले में धारण किये हैं। दाएँ हाथ में देवी-खड्ग, बाएँ हाथ में तर्जनी-मुद्रा है और शेष दो हाथों में वर और अभय मुद्राएँ हैं।

इस प्रकार ध्यान कर नाम-मन्त्र से जपादि करे।

एकोनविंशति पटल

श्री देवी ने कहा कि 'हे देवेश ! महा-मोहन करनेवाली तिरस्करणिका विद्या को बताइए।'

श्री शिव ने कहा कि 'श्री विद्या और बाला की अङ्ग-भूता और महा-मोहन करनेवाली विद्या यह है—ऐं क्रीं ह्लीं श्रीं तिरस्करणि सकल-जनं वाग्वादिनि सकल-पशु-जन-मनो-चक्षुः-श्रोत्रं जिह्वां घ्राणं तिरस्करणं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा।

दूसरा मन्त्र-भेद यह है—ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं भगवति स्वाहा।

३—माहेश्वरि सर्व-पशु-जन-चक्षुस्तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा।

४—त्रैलोक्य-मोहिनि महा-माये सर्व-जन-मनश्चक्षुस्तिरस्कृतिं कुरु कुरु स्वाहा।

५—ऐं ह्लीं श्रीं हसौः ॐ नमो भगवति श्रीमाहेश्वरि सर्व-जन-मनश्चक्षुस्तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा।

ये पाँचों मन्त्र क्रमशः पाँचों मकारों के रक्षक हैं। पञ्च मकारों की रक्षा के लिए इन पाँचों मन्त्रों का उच्चारण करे।

समष्टि की रक्षा के लिए छठे मन्त्र का उच्चारण करे—ह्लीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि सर्व-जन-मनश्चक्षुः तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र का विनियोग है—ॐ अस्य तिरस्करिणिका-मन्त्रस्य शक्तिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, सव-पशु-जन-मनश्चक्षुरादि-तिरस्कृतः देवता, क्लीं बीजं, ह्लीं शक्तिः, क्रीं कीलकं, तिरस्कृतौ विनियोगः।

षडङ्ग-न्यास	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्लीं भगवति	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
माहेश्वरि	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
सर्वा तिरस्करणी	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुं
कुरु कुरु	कनिष्ठाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ऐंह्लींक्रींक्लीं स्वाहा	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

फिर वर्ण-न्यास कर सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करे। तब ध्यान करे । यथा—मुक्त-केशीं······पशु-तर्जन-मुद्रिकाम् ।

उक्त तिरस्करणिका-मन्त्र को भोज-पत्र पर कुंकुम आदि से लिखकर कुम्भ के आगे स्थापित करे। मन्त्र का एक लक्ष जप कर मधु और घृत से सिक्त बिल्व-पत्रों से दशांश हवन करे। हवन का दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन कर उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन कराये। इस प्रकार मन्त्र को सिद्ध करनेवाले साधक को तिरस्करण-क्रिया करनी चाहिए। यह क्रिया सभी उद्देश्यों को पूर्ण करती है और पशुओं को शिथिल करती है।

स्वप्न-वाराही विद्या तीन प्रकार की है—१ पञ्चदशी, २ अष्टादशाक्षरा और ३ चतुर्विंशति-तत्त्वा । इनमें से १८ अक्षरों वाला मन्त्र सर्व-श्रेष्ठ है । यथा—ऐं ह्रीं नमः वाराही अघोरा स्वप्ने ठः ठः ठः ठः स्वाहा ।

इसका विनियोग है—अस्य स्वप्न-वाराही-मन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, स्वप्नेशी देवता, ऐं बीजं, ह्रीं ठः ठः ठः ठः स्वाहा शक्तिः, भविष्यादि-प्रदर्शने विनियोगः ।

षडङ्ग-न्यास—ऐं हृदयाय नमः, ह्रीं नमो वाराही शिरसे स्वाहा, अघोरे शिखायै वषट्, स्वप्नेशी कवचाय हुं, ठः ठः ठः ठः नेत्र-त्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ।

इन्हीं छः मन्त्रों का न्यास कटि, कण्ठ, गण्ड, कर्ण, नेत्र और मूर्धा में कर ध्यान करे। यथा—नीलाञ्जन······गण-विराजिताम् ।

पन्द्रह अक्षर वाला मन्त्र है—तारे नमो भगवतिवाराहि ठः ठः ठः ठः ।

इसका विनियोग है—अस्य स्वप्न-वाराही-मन्त्रस्य अक्षोभ्य भैरव ऋषिः, शक्वरि छन्दः, स्वप्न-वाराही-देवता······(शेष पूर्वोक्त मन्त्र-वत्)

२४ अक्षर वाला मन्त्र—ह्रीं हूं वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि स्वप्नेश्वरि स्वप्नेश्वरि ऐं यं ।

विनियोग—अस्य स्वप्न-वाराही-मन्त्रस्य जनार्दन ऋषिः, संस्कृति छन्दः, स्वप्न-वाराही देवता ······ (शेष प्रथम मन्त्र-वत्)

कृष्ण-मातङ्गी का मन्त्र—ॐ नमो भगवति कृष्ण-मातङ्गिनि शिरो-वल्कल-धारिणि सर्व-जनमहङ्करि ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः अमुकं मे वश्याकृष्टिं कुरु स्वाहा ।

विनियोग—अस्य कृष्ण-मातङ्गी-मन्त्रस्य कृष्ण ऋषिः, विराट् छन्दः, ॐ बीजं, ह्रीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, त्रैलोक्य-वश्यार्थं विनियोगः ।

'ह्रीं'-बीज से षडङ्ग-न्यास कर ध्यान करे। यथा--वीणा-वादन ...... संसाधिका।

इस प्रकार ध्यान कर उच्छिष्ट हाथ से एक लक्ष जप करे और उच्छिष्ट हाथ से ही बलि प्रदान करे। इस प्रकार जप करनेवाले को सिद्धि प्राप्त होती है।

विंशति-तम पटल

सम्पत्-सरस्वती का मन्त्र है—क्लीं ऐं सौः सौः ऐं क्लीं। यह षडक्षरी विद्या सर्व-मन्त्रों में श्रेष्ठ है। दीनों, दरिद्रों और जिनका अधिकार छिन गया है, उन सबको महा-सम्पत्ति की देनेवाली है।

विनियोग है—ॐ अस्य सम्पत्-सरस्वती-मन्त्रस्य कृष्णः ऋषिः, गायत्री छन्दः, सम्पत्-सरस्वती देवी देवता, ऐं बीजं, क्लीं शक्तिः, हसौः कीलकं, सम्पत्त्यर्थे विनियोगः।

छठे अक्षर से षडङ्ग-न्यास कर, नौ बार व्यापक न्यास-पूर्वक ध्यान करे। यथा—अनेक-कोटि ...... सम्पत्-सरस्वतीम्।

त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-अष्टदल-भूपुरात्मक यन्त्र बना कर त्रिकोण में सम्पत्-सरस्वती देवी की पूजा करे। दलों में भैरवों के सहित मातृ-काओं की, भूपुर में लोकपालों की और उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे। इस प्रकार आवरण-पूजन कर मन्त्र का जप तीन लाख करे। पलाश-पुष्पों से दशांश हवन करे। पुरश्चरण करनेवाला ही प्रयोग का अधिकारी होता है।

एक लक्ष जप कर पायस से दशांश हवन करने से साधक पृथ्वी पर राजा होता है। छः हजार नित्य जप कर कमल-पुष्पों से दशांश हवन करे, तो एक वर्ष के भीतर अचल लक्ष्मी प्राप्त होती है। प्रति-दिन एक हजार जप कर शालि-ताण्डुल से हवन करे, तो पृथ्वी का स्वामित्व मिलता है। बिल्व के मूल में बैठकर नित्य १० हजार जप करे, तो साधक १५ दिन के भीतर सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो बिल्व के मूल में बिल्व की समिधा से १०८ बार हवन करता है, उसके घर में तीन मास के भीतर महान् ऐश्वर्य आ जाता है। अन्न को स्पर्श कर यदि दस बार जप करे और तब उसे खाए, तो उसके घर में अन्न की वृद्धि होती है और वह अक्षय होती है। नदी के किनारे एकाग्र मन से मन्त्र का जप पवित्र होकर करे और गाय के घी से दशांश हवन करे, तो तीनों लोक वश में होते हैं। नित्य चार हजार आहुतियाँ घी से दे, तो एक मास के भीतर अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मृत्युञ्जय मन्त्र दस अक्षर का है—ॐ जूँ सः मां पालय सः जूँ ॐ।

विनियोग—अस्य मृत्युञ्जय मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिः छन्दः, मृत्युञ्जयो महा-रुद्रः देवता, ॐ बीजं, जूँ शक्तिः, काल-मृत्यु-विनाशार्थे विनियोगः।

मन्त्राक्षरों से न्यास कर ध्यान करे। यथा—अच्छ-स्वच्छार-विन्द ......जालश्चिरं नः।

पीठ पर षट्कोण-अष्टदल-वृत्त अङ्कित कर षट्कोण के मध्य में मृत्युञ्जय शिव का पूजन कर षट्-कोण में सत्यादि पाँच मन्त्रों से सदाशिव को पूजा करे। फिर आयुधों सहित लोक-पालों का पूजन करे। एक लक्ष जप से पुरश्चरण करे। तिलों से दशांश होम करे। तदनन्तर तीन लक्ष जप करने से काल-मृत्यु का निश्चय हो नाश होता है। पर्वत के आगे १२ लक्ष जप करने से साधक शतजीवी होता है, इसमें सन्देह नहीं। मृत्यु-निवारण के लिए दूर्वा से अयुत होम करे।

पथिषद्-रुद्र मन्त्र—ॐ नमः रुद्राय पथिषदे स्वस्ति मां रक्ष पालय।

इस मन्त्र से मार्ग के सङ्कटों से रक्षा होती है। इसका विनियोग है—अस्य पथिषद्-रुद्र-विद्या-मन्त्रस्य वामदेवः ऋषिः, पंक्तिः (गायत्री वा) छन्दः, पथिषद्-रुद्रः देवता, ॐ बीजं, नमः शक्तिः, मार्गे सकल-भीति-निवारणार्थे विनियोगः।

षडङ्गन्यास कर ध्यान करे। यथा—शुद्ध-स्फटिक......देवं सदाशिवम्।

षट्कोण-अष्टदल-भूगृहात्मक यन्त्र में आवरण-पूजन कर चार लक्ष जप पूर्वक तिल से दशांश हवन करने से मन्त्र सिद्ध होता है। सिद्ध मन्त्र का १०८ बार जप करने से मार्ग में चोरों का भय नहीं रहता, इतने ही जप से भूखे-प्यासे पथिक को शून्य स्थान में भी भोजन और जल प्राप्त होता है।

एक-विंशति-तम पटल

इस पटल में शत्रु-निग्रह के लिए प्रसिद्ध आर्द्र-पटेश्वरी विद्या के मन्त्र, विनियोग, ध्यान, पुरश्चरण और प्रयोग आदि का विवरण साङ्केतिक रूप में दिया गया है—

मन्त्र—ॐ नमो भगवति आर्द्र-पटेश्वरि हरि-नील-कालि आर्द्र-जिह्वे चण्ड-लोहिनि रुद्राणि कपालिनि ज्वाला-मुखि सप्त-जिह्वे सहस्र-नयने एहि अमुकं ते पशुं ददामि, अमुष्य जीवं निकृन्त आहित जीवापहारिणि हूं फट् भूर्भुवः स्व फट् स्वाहा रुधिरं पिब मार-वादिनि मम शत्रुं छेदय छेदय पिब पिब शोणितं हूं फट् स्वाहा।

विनियोग—ॐ अस्य आर्द्र-पटेश्वरी-विद्या-मन्त्रस्य दुर्वासा ऋषिः, गायत्री छन्दः, आर्द्र-पटेश्वरी भद्रकाली देवता, निकृन्त बीजं, स्वाहा शक्तिः, शत्रु-निग्रह-कामार्थे विनियोगः।

षडङ्ग-न्यास—'ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः' से करे।

ध्यान—शितोग्र-तर-दंष्ट्रिका ... ... भद्र-काली चिरम्।

मरु-भूमि श्मशान में १० हजार मन्त्र का जप करे। स्नान कर गीले कपड़े पहन कर शत्रु के प्रति प्रयोग करे। केवल जप मात्र से एक मास के भीतर शत्रु का निग्रह होता है। कृष्णाष्टमी से लेकर कृष्ण-चतुर्दशी तक शत्रु-नाम से युक्त मन्त्र का जप करे तो शत्रु का नाश होता है। कृष्ण प्रतिपदा से दशमी तक मन्त्र का उच्चारण कर हाथ की अञ्जलि में जल लेकर शत्रु के देश में उस जल को फेंके, तो शत्रु-समूह का विनाश होता है, इसमें सन्देह नहीं। शत्रु के नाम का उच्चारण कर १०८ बार मन्त्र का जप करने से उसका नाश होता है, यह निश्चय है।

इसके बाद वार्ता-यक्षी, पिशुन और वाराही मन्त्रों की प्रयोग-विधि बताकर धूमावती-मन्त्र का विधान बताया गया है।

इस सब विषय को गुरु-मुख से समझना ही कल्याणकारी है।

उपसंहार

इस प्रकार शक्ति-सङ्गम तन्त्र के इक्कीस पटलों का परिचय हिन्दी भाषा में संक्षेप में इस उद्देश्य से दिया गया है कि पाठक बन्धु तन्त्र-साहित्य की विविधता को हृदयङ्गम कर गम्भीरता-पूर्वक उसके अध्ययन की आवश्यकता को समझें। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि यह 'सुन्दरी-खण्ड' है, किन्तु इसमें भगवती काली की नित्याओं का विशद विवरण दिया गया है क्योंकि इन नित्याओं का तादात्म्य श्रीविद्या की सर्व-संक्षोभिणी, सर्व-विद्राविणी आदि देवताओं से है। विशेष रहस्य गुरुदेव से समझना चाहिए। इसी प्रकार इस तन्त्र में उल्लिखित मन्त्रादि के जो प्रयोग सरल जान पड़ें, उन्हें भी गुरुदेव के निर्देश के बिना कभी न करें क्योंकि तन्त्रोक्त विधान सर्वथा विज्ञान-सम्मत हैं और त्रुटि होने पर हानि भी हो सकती है।

हमें विश्वास है कि प्रस्तुत हिन्दी-सारांश से जिज्ञासुओं को तन्त्र के साङ्केतिक रूप को समझने में सहायता मिलेगी और तन्त्राचार्य महानुभाव रहस्योद्घाटन के प्रति सजग और सचेष्ट होंगे।

• • •

प्रथमः पटलः

श्री चक्र-योगादि-कथनम्

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव ! महा-देव ! भक्तानुग्रह-कारक !
अनाद्यन्त ! पराकाश ! तमीडे निर्गुणं विभुम् ॥ १
यत्-प्रसादान्मया नाथ ! ज्ञातमागम-शासनम् ।
कालान्तरे समायाते पुनः पृष्टं मया विभो ॥ २
पूर्णाभिषेक-दीक्षा तु कथं भेदत्वमागता ।

श्रीशिव उवाच—

आदौ बाला महा-देवि ! सर्वाद्या परिकीर्तिता ॥ ३
यां बिना पञ्चदश्यां वै नाधिकारः कथञ्चन ।
अक्षरे कूट-त्रितयं कलि-योग्य-पर प्रिये ॥ ४
अन्योच्चारादधर्मत्वाद् भ्रष्टत्वान्न हि सिध्यति ।
बालया मुख-शुद्धित्वं ततो विद्याधिकारिता ॥ ५
विद्याधिकारे सम्पन्ने षोडश्यामधिकारिता ।
षोडश्याधिकृतायां तु सर्वत्राप्यधिकारिता ॥ ६
पञ्चदश्यां ततो न्यासः पञ्चदश्या विधौ शिवे ।
दशधा मातृकां न्यस्य विद्या-न्यासं तथैव च ॥ ७
लघु-षोढां महा-षोढां षोढां बाह्यान्तरे तथा ।
चक्र-न्यासं पुनः कृत्वा शक्ति-न्यासं समाचरेत् ॥ ८
शक्ति-न्यास-परो मन्त्री देव-रूपो न संशयः ।
ततः पराधिकारी स्यात् तन्न्यासात् तदनन्तरम् ॥ ९
परा-प्रासादिके न्यासे अधिकारस्तदुत्तरम् ।
प्रासाद-परया चाथ ततश्चरण-दीक्षणम् ॥ १०
निर्वाण-चरणाद्यां वै ततः शाम्भव एव तु ।
निर्वाण-चरणाख्यं वै शाम्भवोत्तरमीरितम् ॥ ११

बालायामधिकारी चेद् बालोक्तान् विन्यसेद् बुधः ।
पञ्चदश्यधिकारी चेत् पञ्चदश्यधिकं चरेत् ॥ १२
विद्या-न्यासोत्तरं देवि ! उत्कीलनमथाचरेत् ।
दीपिनी-न्यसनं कृत्वा ततः कुल्लुका-चिन्तनम् ॥ १३
षोडशी-दीक्षा-युक्तश्चेत् महा-षोढादिकं चरेत् ।
परा-दीक्षण-युक्तश्चेत् षडाधारादिकान् न्यसेत् ॥ १४
परा-प्रासाद-युक्तश्चेत् तत्तन्न्यासान् समाचरेत् ।
प्रासाद-परा-युक्तश्चेत् तानेव विन्यसेद् बुधः ॥ १५
चतुश्चरण-दीक्षा तु परा-प्रासाद-गोचरा ।
उभयोर्नहि भेदोऽस्ति किञ्चिद् भेदोऽस्ति पार्वति ॥ १६
ततः शाम्भव-दीक्षा स्यात् पूजा श्रीचक्र-गोचरा ।
सर्वेषां पूजनं कार्यं न्यसनं वा विधीयते ॥ १७
प्रथम न्यसनं प्रोक्तं ततः पूजा प्रकीर्तिता ।
श्रीचक्रे पूजनं कार्यं सर्वेषां प्रिय-वादिनि ॥ १८
षडाम्नाय-स्थले देवि ! षट्-शाम्भवमथार्चयेत् ।
षण्णां स्थानं विधायाथ सम्वर्तेशमथार्चयेत् ॥ १९
सर्वेषां पूजनं कृत्वा चाथ वै कलशं तथा ।
पूजयेद् यत्नतो देवि ! सर्व-सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ २०
सर्व-दीक्षा-समायुक्तः सर्व-न्यासान् समाचरेत् ।
षोडशीं तु विना देवि ! नान्यत्र ह्यधिकारिता ॥ २१
परा-प्रासाद-दीक्षाद्याः षोडश्युत्तरगाः क्रियाः ।
तत्तत्-तन्त्रोक्त-विधिना तत्तद्-दीक्षादिभिर्युतः ॥ २२
तत्तत् कर्म प्रकुर्वीत नान्यथा शाङ्करं वचः ।
या चरण-दीक्षा सम्प्रोक्ता परा सैव प्रकीर्तिता ॥ २३
श्रीविद्यां तु विहायाथ नाधिकारत्वमिष्यते ।
श्रीविद्यायां तु सम्पूर्णः सर्व-मार्गी भवेत् प्रिये ॥ २४

श्रीचक्र-लेखनं कृत्वा त्रिकोणं विन्दु-मध्यगम् ।
ततो वृत्तं समालिख्य चतुर्दलमनन्तरम् ॥ २५
चतुः-पञ्चारमालिख्य चतुरस्रात्मकं ततः ।
षट्-त्रिंशत्-तत्व-रूपं तु विग्रहं विलिखेत् ततः ॥ २६
एवं तु विग्रहं भाव्यं भावनैव तु लेखनम् ।
प्रासाद-पूर्वा तु परा प्रोक्ता श्रीतत्व-विग्रहा ॥ २७
श्रीमहा-षोडशी विद्या मन्त्र-विग्रह-रूपिणी ।
वृत्तस्य परितो देवि ! पारम्पर्य-क्रमं यजेत् ॥ २८
परा-प्रासाद-विद्यायाः क्रमः प्रोक्तो महेश्वरि !
मुख्यं क्रमं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ २९
विन्दूपरि विभाव्याथ ततो ह्यष्ट-दलं शुभम् ।
षट्-त्रिंशद्-दल-संख्याकं कमलं तु ततो लिखेत् ॥ ३०
अष्ट-त्रिंशद् दलं चैव तद्-बहिर्विलिखेच्छिवे !
कमलं भुवनाख्यं तु तद्-बहिर्विलिखेच्छिवे ॥ ३१
पञ्चाशद्-दल-संख्याकं चन्द्र-संख्या-समन्वितम् ।
एवं विलिख्य विधि-वत् तत्र ध्यायेत् परामम्बिकां ॥ ३२
एवं पूर्वं विभाव्याऽथ षट्-त्रिंशत्-तत्व-विग्रहाम् ।
परा-प्रासाद-विद्यां तु षट्-त्रिंशत्-तत्व-विग्रहाम् ॥ ३३
शाम्भवे लेखनं यन्त्रं तत्र वै भावना मता ।
बाह्यतः पूजनं कृत्वा ततो ध्यात्वा परामम्बिकां ॥ ३४
अधिकारे समापन्ने परा-पूजादिके विधौ ।
षट्-शाम्भवे महेशानि ! ह्यधिकारस्ततो भवेत् ॥ ३५
षट्-शाम्भवो महेशानि ! सर्वोत्तर इतीरितः ।
षोडश्युत्तरगा दीक्षा कार्या वा त्वियमेव वा ॥ ३६
एवं दीक्षादिभिर्युक्तैः किं जप्यं परमेश्वरि !
भक्तिर्यस्य यत्र भवेत् तेन जप्यं तदेव तु ॥ ३७

सम्प्रदायानुसारेण भक्ति-योग-वशेन तु ।
षोडशी शक्ति-दीक्षा स्याद् द्वितीयमुच्यते शृणु ॥ ३८
परा-प्रासाद-विद्या तु शिव-शक्ति-मयी परा ।
अर्द्ध-नारीश्वरः प्रोक्तः सर्व-तन्त्रेषु गोपितः ॥ ३९
इत्येतदुक्तं देवेशि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ?

श्रीशिव उवाच—

किं जप्यमिति शङ्का ते या जाता परमेश्वरि ॥ ४०
सैवोच्यते महेशानि ! शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ।
श्रीचक्रे सर्व-देवानां निवेशनमुदीरितम् ॥ ४१
महा-श्रीचक्र-राज्ञीयं महा-श्रीषोडशी परा ।
परा-प्रासाद-विद्या तु महा-श्रीचक्र-नायिका ॥ ४२
ऊर्ध्वाम्नायादि-दीक्षा तु परा-प्रासाद-गोचरा ।
परा-प्रासाद-विद्यायाः श्रीचक्रे विनिवेशनम् ॥ ४३
षट्-शाम्भवेश-विद्यायाः श्रीचक्रे विनिवेशनम् ।
विन्दु-चक्रे महेशानि ! पूजनं शृणु सादरम् ॥ ४४
विन्दु-चक्रे तु नैर्ऋत्यां मानसं पूजयेच्छिवे !
विन्दु-वायव्यतो देवि ! नात्र सम्पूजयेच्छिवे ॥ ४५
विन्दु-चक्रस्य पूर्वे वै मारुतं पूजयेत् प्रिये !
विन्दु-चक्रस्य चाग्नेय्यां तैजसं पूजयेच्छिवे ॥ ४६
विन्दु-चक्रस्य वारुण्यामाप्यं शाम्भवमर्चयेत् ।
विन्दु-चक्रस्य चैशान्यां पार्थिव पूजयेत् ततः ॥ ४७
स-रश्मिकान् समभ्यर्च्य यथोक्तेन तु वर्त्मना ।
षट्-त्रिंशच्चक्रगे देहे न्यसनं कारयेत् प्रिये ॥ ४८
इत्येत् कथितं देवि ! ह्यथवा नव-मण्डले ।
नवात्मकं मण्डलं वै मुख्यमेव प्रकीर्तितम् ॥ ४९
नव-चक्रात्मकं देवि ! महा-सम्वर्तकेश्वरम् ।
पूजयेद् यत्नतो देवि ! प्रोक्तं संक्षेपतः प्रिये ॥ ५०

प्रातःकृत्यादि स-ध्यान-पूजनादि-क्रियादिकम् ।
श्रीमत्-पञ्चक-तन्त्रेषु विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ ५१
षट्-शाम्भवाख्यं यन्त्रं तु नवात्मकमितीरितम् ।
तस्मिन् यन्त्रे मुख्य-पूजा कथिता परमेश्वरि ॥ ५२
पञ्च-प्रेतास्तु श्रीचक्रे षट्-प्रेताः शाम्भवे मताः ।
सप्त-प्रेता गुह्यकाल्यां कथ्यन्ते शृणु साम्प्रतम् ॥ ५३
हिरण्य-गर्भ इत्याख्यः शाम्भवे परिकीर्तितः ।
इन्द्र-भैरव-नामानौ गुह्यकाल्यामितीरितौ ॥ ५४
सङ्घट्टनाख्या मुद्रा वै त्रिविधा परिकीर्तिता ।
कर-द्वयं तु संयोज्य ह्यधो-वक्त्रं सुलक्षणम् ॥ ५५
नखे नखान् सुसंयोज्य पञ्चांगुल्यो ह्यधो भवेत् ।
करावित्थं सुसंयोज्य मुद्रा सङ्घट्टनाभिधा ॥ ५६
पूर्व-मुद्रां सुसंयोज्य कनिष्ठे विरलीकृते ।
सङ्घट्टनाख्या मुद्रा तु द्वितीया परिकीर्तिता ॥ ५७
अत्रापि पक्ष-द्वितयं कनिष्ठे भिन्न-योजिते ।
तृतीया जायते मुद्रा चतुर्थी सर्वतोत्तमा ॥ ५८
अंगुष्ठानामिका-मध्ये योन्याकारेण योजयेत् ।
कृत्वा कर-द्वयस्यैवं ह्यधोवक्त्रं सुशोभनम् ॥ ५९
तर्जन्यां तर्जनी योज्या कनिष्ठायां कनिष्ठिका ।
तर्जनी द्वे कनिष्ठे द्वे चाग्रतोर्ध्वं नियोजयेत् ॥ ६०
सङ्घट्टनाख्या मुद्रेयं जपान्ते सर्व-सिद्धिदा ।
चतुश्चरण-विद्यायां षट्-शाम्भव-विधावपि ॥ ६१
मुख्या प्रोक्ता महा-देवि ! दर्शयेत् यत्नतः शिवे !
इत्येतद् गदितं देवि ! किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ ६२

श्री शिव उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पारम्पर्य-क्रमं शिवे !
पूर्ण-दीक्षा-परत्वेन विविच्य कथयामि ते ॥ ६३

साक्षात् पर-शिवेनादौ शङ्करस्तु प्रबोधितः ।
चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शङ्करोऽवतरिष्यति ॥ ६४
शिवेन बोधिता देवी देव्या सर्वे प्रबोधिताः ।
ब्रह्म-विष्णु-शिवाश्चैव ईश्वरेण प्रबोधिताः ॥ ६५
शिव-पारम्पर्य-गतो गुरुः शिव-परम्परा ।
देवी-परम्परा देवि ! काल्युपदेश-वर्त्मना ॥ ६६
अत्रापि शक्ति-बाहुल्यं मत-संख्या न विद्यते ।
अथानन्द-भैरवात्तु देवी-मत-परम्परा ॥ ६७
पूर्वोक्त-त्रितयं देवि ! काम-राजे तु भिन्नतः ।
आनन्द-भैरव-मते पञ्चाशीति-मत-क्रमः ॥ ६८
शिव-पारम्पर्य-दीक्षा दक्षिणामूर्तितः प्रिये !
सर्वत्र पारम्पर्यत्वं त्वथ मध्यां शृणु प्रिये ॥ ६९
दिव्याद्यौघ-त्रयोद्युक्ताः शैवे गाणप-चोदिताः ।
अत्रापि मत-बाहुल्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ७०
तन्त्रे च दिव्य-सिद्धौघौ मानवौघस्तृतीयकः ।
सुन्दर्यां श्रीमहा-काल्यां तारायां कालिका-मनौ ॥ ७१
पञ्चदश्यां लोपिकायां मन्वगस्तिक-मन्त्रके ।
परायां शैव-युक्तायामाद्यन्त-व्युत्क्रमादिके ॥ ७२
षट्-शाम्भवे महेशानि ! औघ-त्रयमुदीरितम् ।
सर्वमौघ-त्रयं प्रोक्तं किमितः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७३
औघात् परम्परा प्रोक्ता दिव्य-सिद्धात्मका प्रिये !
शिवादौघाः समुद्भूतास्त्वौघ-पूजा-परम्परा ॥ ७४
दक्ष-मूर्त्या गाणपिकं तथैव बटुकादिकम् ।
अथानन्द-भैरवादि तत् सर्वमौघ-मध्यगम् ॥ ७५
प्रबभूवुः सम्प्रदायः ह्येते च परिकीर्तिताः ।
आनन्द-भैरवे देवि ! कोटि-भेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ७६

आनन्द-भैरवाद्या वै ह्याद्ये चान्तर्गताः प्रिये !
मार्ग-प्रवर्तकत्वात्तु मुख्यत्वं परिकीर्तितम् ।। ७७
तस्माद् ऋषित्वतां प्राप्ता विरूपाक्षादयः प्रिये !
सरस्वती लेखनी तु गणेशो लेखको मतः ।। ७८
मतं पर-शिवस्येदं वक्ता देवो महेश्वरः ।
पृथ्वी पत्री महादेवि ! नाथाः शास्त्रस्य बन्धकाः ।। ७९
ब्रह्मास्त्राद्याः शास्त्रपाश्च शरभाद्यास्तु रक्षकाः ।
औघाः प्रवर्त्तका लोके ते पूज्या सर्वथैव तु ।। ८०
पारम्पर्यात् क्रम-गता भिन्न-भिन्नाः प्रकीर्तिताः ।
दिव्या देवान्तिके नित्यं सिद्धा भूमाविहावपि ।। ८१
मानवौघा मनुष्येषु औघ-त्रयमुदीरितम् ।
शिवात् स्व-गुरु-पर्यन्तं ज्ञानं पूजामनुत्तमाम् ।। ८२
देवीतः स्व-स्व-गुर्वन्तं ज्ञानं पूजा परा मता ।
अथानन्द-भैरवाख्यं स्व-गुर्वन्त-गतं प्रिये ।। ८३
इयमेका महा-देवि ! दक्षिणामूर्ति-सम्मता ।
शृणु यत्नेन देवेशि ! तत्त्वं स्व-गुर्वन्तं प्रिये ।। ८४
पूजा प्रोक्ता तूत्तमा तु त्वौघात् गुर्वन्तकं शृणु ।
औघात् गुर्वन्तकं देवि ! ज्ञानं पूजा प्रकीर्तिता ।। ८५
मुख्यं ज्ञानमिदं प्रोक्तं कलौ कुत्रापि तिष्ठति ।
देवि ! पूर्व-चतुष्कं तु त्रेता-सत्य-युगे मतम् ।। ८६
सर्वाभावे महेशानि ! परमेष्ठ्यन्तकं मतम् ।
चतुष्कं त्वथवा ज्ञेयं नान्यथा सिद्धि-रोध-कृत् ।। ८७
देव्याः स्व-गुरु-पर्यन्तमुपदेश - परम्परा ।
तथा देवेशि ! सर्वत्र भैरवाद्यं प्रकीर्तितम् ।। ८८
दक्षिणामूर्ति-पादे तु स्व-गुर्वन्तं प्रपूजयेत् ।
एक-विंशत्तमं ज्ञानं गुर्वाख्यं क्रियतां लघु ।। ८९

गुरु-बाहुल्य-भेदास्तु त्वानन्द-भैरवे बहु ।
एतज्-ज्ञानं विना देवि ! पाप-भागी भवेन्नरः ॥ ९०
स्त्रीणां दीक्षा कथं देया तत्र स्त्रीत्वं कथं भवेत् ।
देवी-परम्परोद्दिष्टस्तूपदेशो यदा भवेत् ॥ ९१
तदा स्वकीयां सन्दीक्ष्य पुण्य-भागी नरो भवेत् ।
संन्यासीनां तु दीक्षा तु दक्षिणामूर्ति-सम्मते ॥ ९२
शिवे चानन्द-देवेषु सर्वत्र दीक्षणं चरेत् ।
शैवे शिवान्तकं नाम वैष्णवे तु तदन्तकम् ॥ ९३
शाक्ते तु शक्ति-गुरवस्तत्र भेदा भवन्ति हि ।
सौरे सौरं गाणपत्ये बौद्धे धर्मान्तिकं भवेत् ॥ ९४
एवं पाशुपताद्येषु तत्र दीक्षोक्त-नाम तु ।
कार्यं तु यत्नतो देवि ! इत्येवं कालिकाऽब्रवीत् ॥ ९५
अथवा दक्षिणामूर्ति पूजयित्वा महेश्वरि !
तत्सकाशात् प्रदेया स्यात् स्त्रीणां दीक्षा तु सा मता॥९६
यदि स्त्रीणां बाधिका तु कर्मणः स्यात् तदा कथं ।
पुत्र-द्वारा पोषणोयः पुत्रो नास्ति यदा शिवे ॥ ९७
पूर्वं कार्या साक्षरे वै ततः सन्दीक्षयेत्तु ताम् ।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि पूर्वोक्तं तच्छृणु प्रिये ॥ ९८
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते करिष्यन्ति न केचन ।
उप-विद्यां समासाद्य जपिष्यन्ति नराधमाः ॥ ९९
न ते सिद्धिं प्राप्नुवन्ति ते सर्वे दुःख-भागिनः ।
तेषां निन्दा कलौ देवि ! भविष्यति न संशयः ॥ १००
काली तारा छिन्नमस्ता सुन्दरी बगलामुखी ।
मातङ्गी भुवना लक्ष्मीर्धूम्रा त्रिपुर-भैरवी ॥ १०१
एता एव महा-विद्या सिद्ध-विद्या युगान्तरात् ।
विद्यात्वं तु महा-देवि ! तत्तद्-युग-वशेन तु ॥ १०२

गुरु-सन्तति-हीनत्वादुप-विद्या - प्रयोजनात् ।
दुराचारान्निन्दनाच्च न ते वै सिद्धि-भागिनः ॥ १०३
काली तारा छिन्नमस्ता सुन्दरी त्वेक-रूपिणी ।
अन्याऽपि च महा-देवि ! एक-रूपा न संशयः ॥ १०४
उप-विद्यादिकं चैव दश-विद्यामुपाचरेत् ।
सर्वस्व-हरणं कृत्वा योगिन्यो भक्षयन्ति तम् ॥ १०५
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि मत-भेदादि-वर्णनम् ।
कालीं तारां महा-विद्यां दीपिनीं कुल-सुन्दरीम् ॥ १०६
सर्व-कालं जपेद् विद्वान् यदि सिद्धिमभीप्सति ।
पाशुपत-त्रिशूल्याद्या वीर-कौलादयः प्रिये ॥ १०७
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति महा-विद्या-विधौ शिवे !
वीर-शैवा वीर-पूर्व-वैष्णवा ये प्रकीर्तिताः ॥ १०८
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति काली-तारादिके मनौ ।
चार्वाकादि-प्रभेदास्तु चीन-भेदा अमी स्मृताः ॥ १०९
चार्वाका आर्हता बौद्धा चीन-जैनादयः शिवे !
शाक्य-सिंहादि देवेशि ! देवी-पुत्रादिकाः प्रिये ॥ ११०
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति महा-तारा-मनौ शिवे !
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पूर्ण-दीक्षा-विवेचनम् ॥ १११
पूर्णाभिषेक-दीक्षायां भेदा वै बहवो मताः ।
परा-प्रासाद-विद्या च प्रासाद-परयाऽथवा ॥ ११२
विन्दु-युक्तो भवेच्छैवे सर्गी काम-कलात्मिका ।
प्रासाद-पर-रूपायां विन्दु-सर्गात्मकं तथा ॥ ११३
परा दीक्षा तथान्या वै तत्त्वादि-विन्दु-सर्गतः ।
अथ षट्-शाम्भवी दीक्षा बहुधा परिकीर्तिता ॥ ११४
गर्भ-शाम्भवकं चापि केरल-शाम्भवं च वा ।
केरले बहवो भेदास्तांश्चात्र कथ्यतेऽधुना ॥ ११५

षडन्वयः पञ्च वापि चतुरन्वयमेव वा ।
त्रितयं वापि देवेशि ! ह्यभावे एकमेव वा ॥ ११६
शिव-रश्मिः शक्ति-रश्मिः शिवशक्त्यात्मका यदा ।
त्रिपुरा दश-पञ्चाख्य-मालोक्ता रश्मयः परा ॥ ११७
किं वा षडन्वयाख्येषु प्रोक्ता वै रश्मयः पराः ।
किं वा चरण-दीक्षा स्याच्चतुश्चरण-रूपिणी ॥ ११८
रक्त-शुक्ल-मिश्र-रूपं निर्वाणं तु तुरीयकम् ।
चरण-त्रय-दीक्षा स्यान्निर्वाणं सर्वतोत्तमम् ॥ ११९
निर्वाणात्तु परं देवि ! नास्ति ज्ञानं तु मामके ।
षोडश्यां पूर्ण-दीक्षा तु सम्प्रदाय-परो चरेत् ॥ १२०
सम्प्रदायानुसारेण तत्तन्मन्त्रेषु पश्यताम् ।
षडन्वयस्तु देवेशि ! गुह्यकाल्यामपि स्मृतः ॥ १२१
पूर्णाभिषेक-दीक्षा तु काल्यां च परिकीर्तिता ।
एवं सर्वासु विद्यासु पूर्ण-दीक्षा प्रकीर्तिता ॥ १२२
श्रीसुन्दर्यां तथा काल्यां मुख्या तु परिकीर्तिता ।
सम्प्रदायानुसारेण तत्तदर्चनमाचरेत् ॥ १२३
पञ्चदश्यामपि शिवे पूर्ण-दीक्षा प्रकीर्तिता ।
मन्वगस्त-लोपिकायां नाम-दानं तु भिन्नतः ॥ १२४
सम्प्रदायानुसारेण नाम देयं महेश्वरि !
श्रीमद्-दक्षिण-काल्यां तु काली-गुरूक्त-वर्त्मना ॥१२५
तारायामपि देवेशि ! तारा-गुरूक्त-वर्त्मना ।
यथा काली तथा तारा या तारा सैव कालिका ॥ १२६
इत्युक्तत्वान्महेशानि ! तारायामपि दीक्षणम् ।
गुह्य-काल्यां महा-देवि! षड्-रश्मि-क्रमतः शिवे ॥ १२७
दश पञ्च मालिकाऽत्र गदिता प्रिय-वादिनि !
तद्-रश्मि-क्रम-योगेन नाम-पूजादिकं मतम् ॥ १२८

षट्-शाम्भव-क्रमेणैव नाम देयं महेश्वरि !
महा-काम-कला काली राज-राजेश्वरी मता ॥ १२६
अस्यां तु दीक्षा सम्प्रोक्ता पूर्ण-दीक्षा शुभा शिवे !
एतद्-गुरूक्त-मार्गेण मानवौघ-क्रमे॰ तु ॥ १३०
गुरु-भक्तस्य शिष्यस्य आज्ञा-नाम प्रदापयेत् ।
या सा काम-कला काली योग-पट्टेश्वरी मता ॥ १३१
योग-दीक्षेति सा प्रोक्ता महा-निर्वाण-रूपिणी ।
हंस-काल्यामपि तथा आज्ञा-नाम प्रदापयेत् ॥ १३२
या सा काम-कला काली योग-पट्टेश्वरी मता ।
परा-प्रासाद-रूपा स्यात् महा-काम-कला परा ॥ १३३
चरण-दीक्षा हंस-काल्यां चतुश्चरण-रूपिणी ।
हंस-दीक्षात् परं नास्ति दीक्षा पूर्णाभिषेकिका ॥ १३४
अथ हंस-क्रमेणैव आज्ञा-नाम प्रदापयेत् ।
अत्रापि देव-देवेशि ! शिव-देवी-परम्परा ॥ १३५
भैरवास्यादि-नाथस्य देवते कथिते शिवे !
सर्वेषां तु महा-देवि ! औघ-परम्परा मता ॥ १३६
औघ-परम्परा-ज्ञानात् औघे मुख्यत्वमेव तत् ।
शिवाद्या देव-देवेशि ! विरूपाक्ष-परम्परा ॥ १३७
आदि-नाथाद् गुरु-ज्ञानं स्व-गुर्वन्तं महेश्वरि !
आदौ सर्वत्र देवेशि ! मन्त्रदः प्रथमो गुरुः ॥ १३८
परम्परादिका देवि ! महेशा एव नान्यथा ।
आनन्दनाथ-संज्ञान्ता गुरवः परिकीर्तिताः ॥ १३९
स्त्रियोऽपि गुरु-रूपाश्च अम्बान्ताः परिकीर्तिताः ।
आदौ श्रीस्व-गुरुं पूज्य शिवान्तं पूजयेच्छिवे ॥ १४०
एवं देवि ! दीक्षणादौ पूर्ववत् परिकीर्तितम् ।
आनन्द-भैरवाद्येषु ह्येवमेव प्रकीर्तितम् ॥ १४१

स्व-गुर्वादि समारभ्य दिव्यान्तं पूजयेच्छिवे !
अथ काली-दीक्षणादौ आज्ञा-नाम प्रदापयेत् ॥ १४२
प्रकारान्तरतो देवि ! गद्यते शृणु साम्प्रतम् ।
प्रह्लादानन्दमारभ्य बोधानन्दान्तिकं प्रिये ॥ १४३
एतद् गुरूक्त-मार्गेण चाज्ञा-नाम प्रदापयेत् ।
तारायामपि सम्प्रोक्तः संक्षेपेण मया तव ॥ १४४

श्रीशिव उवाच—

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सम्प्रदाय-स्वरूपकम् ।
आदौ हि वैदिकः प्रोक्तस्ततो हि वैष्णवः परः ॥ १४५
ततो गाणपतं प्रोक्तं ततः सौरं प्रकीर्तितम् ।
सौराच्छ्रेष्ठं शैव-शास्त्रं शैवाच्छाक्तं महेश्वरि ॥ १४६
शाक्ताद् वामं महेशानि ! श्रेष्ठेति परिकीर्तितम् ।
वामात्तु दक्षिणः श्रेष्ठो दक्षिणाद् वीर एव तु ॥ १४७
अथ वीराच्चावधूतः कौल-पूर्वं प्रकीर्तितः ।
अवधूताद् दिव्य-मार्गो दिव्याच्छ्रेष्ठो न विद्यते ॥ १४८
शैवे चान्तर्भविष्यन्ति श्रीमत्-पाशुपतादयः ।
पाञ्चरात्रादयो देवि ! वैष्णवे सम्भवन्ति हि ॥ १४९
शाक्ते चान्तर्भविष्यन्ति पाषण्ड-चीन-सम्मताः ।
कापालिके रुद्र-भेदाः कौले चाष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ १५०
वीरे पञ्च-मतं देवि ! चीने शत-द्वयं मतम् ।
बौद्धानां शत-भेदाः स्युः सप्त पाशुपते मताः ॥ १५१
दिव्ये भेद-द्वयं देवि ! पशवस्त्रिविधा मताः ।
अवधूते सप्त-भेदाः सम्प्रदाय-क्रमेण तु ॥ १५२
आनन्दः प्रथमः प्रोक्तो द्वितीयो नाथ एव तु ।
मुख्यस्त्वानन्दनाथः स्यात् प्रकाशस्तदनन्तरम् ॥ १५३
स्वरूपस्तु ततः प्रोक्तश्चैतन्यस्तु तदुत्तरम् ।
आराध्याचार्यकश्चैव विद्याधिक्यात् प्रकीर्तितः ॥ १५४

षट्-शाम्भवादि-शास्त्रज्ञस्त्वाराध्यः परिकीर्तितः ।
'गु'-शब्दस्त्वन्धकारत्वाद् 'रु'-शब्दस्तस्य बोधकः ।। १५५
द्वाभ्यां गुरुश्च सम्प्रोक्तः स एव हि प्रकाशकः ।
नाथः सिद्ध्यादिभिर्युक्तस्त्वानन्दः शम्भु-शक्तिवान् ।। १५६
आनन्द-नाथ-शब्दस्तु पर-शैवस्य वाचकः ।
महा-वीरस्तु यः प्रोक्तः स माहेश्वर इतीरितः ।। १५७
वीरस्तूद्धत-वत् प्रायः कलौ तिष्ठति कुत्रचित् ।
विलास-सम्प्रदायस्तु तद्-भेदः केरलो मतः ।। १५८
तद् भेदो द्रविडः प्रोक्त आचार्यत्व-प्रदायकः ।
स्वाराज्ये नियतः प्रोक्तश्चैतन्याख्यः स एव तु ।। १५९
द्रविडेऽन्तर्भविष्यन्ति स्वामि-सम्प्रदाय-वाचकाः ।
गौडः स्वरूप इत्युक्तस्त्वानन्दाख्यः स एव तु ।। १६०
केरलो बहवो भेदास्तानहं वच्मि संश्रृणु ।
भव-सिद्धो हराख्यस्तु सिद्धाख्यः परिकीर्तितः ।। १६१
देश-पर्याय-भेदेन कल-हट्ट-चतुष्टयम् ।
मन्त्र-पर्याय-भेदेन विधि-सिद्धिस्ततः क्रमः ।। १६२
काल-पर्याय-भेदेन सिद्धानन्द-मत-क्रमः ।
कल-हट्टो गो-मुखश्च विज्ञानी तदनन्तरम् ।। १६३
द्रविड-राजो महेशानि ! उत्पादाख्यस्ततः परम् ।
काल-पर्याय-भेदेन सम्प्रदाय-क्रमो मतः ।। १६४
पूर्व-केरलमादौ स्यात् द्वितीयं तूत्तरं भवेत् ।
अत्रापि नाम-बाहुल्यं सम्प्रदायानुसारतः ।। १६५
दिव्यः सिद्धस्ततः सत्यश्चैतन्यश्चिद्-घनः परम् ।
सर्वज्ञाख्यो ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-संज्ञा-धरः शिवे ।। १६६
आदि-संज्ञा ततो देवि ! योजनीया सरस्वती ।
आदौ दिव्यादयः शब्दास्ततो देवी सरस्वती ।। १६७

आदौ क्रमास्तु विज्ञेयाः सम्प्रदायस्तदुत्तरम् ।
ततो नामादिकं ज्ञात्वा चाज्ञा-पदं महेश्वरि ।। १६८

अथ द्रविड-भेदान् हि शृणु वक्ष्ये यथा-क्रमम् ।
अद्वैताख्यः पूर्ण-नाथश्चिदम्बाख्यस्तृतीयकः ।। १६९
अद्वैताख्यः सम्प्रदायस्त्ववधूत-मतेऽपि च ।
सरस्वत्यन्तगो वापि चानन्दान्तोऽपि वा प्रिये ।। १७०

नाथान्तो वा महेशानि ! त्रितयं त्रितयं त्रिषु ।
ईशाख्यस्तु महेशानि ! केरलान्तर्गतो भवेत् ।। १७१
माहेश्वरः स भवति विश्व-रूपाभिधः प्रिये !
एतेऽपि केरले देवि ! ह्यन्तर्भूता भवन्ति वै ।। १७२
एवं ज्ञानेन सम्पन्नः कुण्डली-ज्ञान-पूर्वकम् ।
पूजनं तु प्रकर्तव्यं नान्यथा सिध्यति ध्रुवम् ।। १७३
एतदज्ञानतो देवि ! न विद्या सिद्धिमाप्नुयात् ।
विद्या-सिद्धिमभीप्सुर्वै ज्ञान-पूर्वं समाचरेत् ।। १७४
अज्ञानात् यत् कृतं देवि ! तत् सर्वं निष्फलं भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तमवश्यं क्रियतां प्रिये ।। १७५
बलिदान-विधौ देवि ! पात्रासादन-कर्मणि ।
विनियोग-विधौ सर्वं स्पष्टं भवति नान्यथा ।। १७६

श्रीशिव उवाच—

अथ किं पृच्छसि शिवे ! काश्मीरं ब्रूहि सत्वरम् ।
सर्व-दिव्यस्तु यः प्रोक्तः स काश्मीरेति कीर्तितः ।। १७७
भाव-नाथः क्रिया-नाथो ज्ञान-नाथस्तथैव च ।
चित्परः चेतनेशश्च सिद्ध-नाथाख्य एव च ।। १७८
ऋद्धि-नाथस्ततश्चैव इत्यष्टौ कीर्तिता मया ।
पूजनादौ महेशानि ! पात्रासादन-कर्मणि ।। १७९

भेद एष महेशानि ! सर्वमेकं प्रकीर्तितम् ।
गौडाख्य-मार्गो देवेशि ! तथा काश्मीर-सम्मतम् ।। १८०
केरलेऽन्तर्गतं देवि ! नान्यथा शाङ्करं वचः ।
क्वचित् कदाचित् भेदो वै सम्प्रदायात् प्रकीर्तितः ।। १८१
त्रिजटैक-जटा चोभे त्रिशूली विन्दु-भूषितः ।
चतुर्भेदा महेशानि ! शैवेऽत्रान्तर्गता भवेत् ।। १८२
शैवे चान्तर्गता देवि ! श्रीमत्-पाशुपतादयः ।
तेषां तु सप्त-भेदा वै तानहं वच्मि संशृणु ।। १८३
आदौ शिखी ततो मुण्डी जटी चैव तृतीयकः ।
द्वि-दण्डी त्वेक-दण्डी च त्रि-दण्डी च ततः स्मृतः ।। १८४
वीर-शैवः सप्तमस्तु सप्त-पाशुपताः स्मृताः ।
वैष्णवे त्वष्ट-भेदाः स्युस्त्वादौ वैखानसः स्मृतः ।। १८५
श्रीराधा-वल्लभो देवि ! गोकुलेशस्तृतीयकः ।
वृन्दाख्यस्तु चतुर्थः स्यात् पाञ्चरात्रस्तु पञ्चमम् ।। १८६
वीर-वैष्णव-नामाख्यस्तदन्यः परिकीर्तितः ।
रामानन्दी हरि-व्यासी निम्वार्कश्चाष्टमः स्मृतः ।। १८७
स्मार्ता भागवता देवि ! एते मार्ग-प्रवर्तकाः ।
शाक्ते चान्तर्गता देवि ! चीनाः कापालिकाः शिवे ।। १८८
बौद्धा जैनास्ततो देवि ! दिव्याः कौलास्तथा शिवे !
वीरः पशुस्ततः प्रोक्तस्तेषां लक्षणमुच्यते ।। १८९
चीनानां द्वि-शतं भेदास्ताराच्छिन्ना-विधौ स तु ।
ताराधीशः पराधीशः क्षेमाख्यः प्रेम-तारकः ।। १९०
सागराख्यः परापन्नस्तथा जीव-दया-परः ।
चिरञ्जीवी सिद्ध-नामा संक्षेपान्नावकीर्तितः ।। १९१
कापालिके पञ्च-भेदास्तानहो ब्रूमहे शिवे !
इन्द्र-जाली देव-जाली रुद्र-जाली तृतीयकः ।। १९२

विद्या-जाली तुर्य-संख्यः पञ्चमः सिद्धि-जालिकः ।
पञ्च-कापालिकाः प्रोक्ता बौद्धान् संश्रृणु यत्नतः ॥ १६३
केशच्छेदी वृक्षच्छेदी मद्याशो कल्मषस्तथा ।
इच्छा-भेदी पञ्चमस्तु एवं बहु-विधा मताः ॥ १६४
जैने भेद-द्वयं देवि ! कथ्यते यत्नतः श्रृणु ।
पार्श्व-नाथः कला-नाथः पद्मा-भोगवती-रतः ॥ १६५
आदि-दिव्यस्तूप-दिव्यो दिव्य-भेद-द्वयं शिवे !
पशवस्त्रिविधा देवि ! ज्ञाताज्ञात-विनिन्दकाः ॥ १६६
पञ्चधा वोर इत्युक्तस्तद्-भेद श्रृणु पार्वति !
श्रीचक्र-वीरो देवेशि ! ऊर्मिलाख्यो द्वितीयकः ॥ १६७
चूडा-चक्रं तृतीयं स्यात् पुष्प-चक्रं चतुर्थकम् ।
जीव-चक्रं पञ्चमं स्यात् पञ्च-भेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १६८
भाव-योगो जीव-चक्रे पुष्प-चक्रे क्रियाभिधः ।
श्री-चक्रे ज्ञान-योगस्तु लय-योगस्तु ऊर्मिले ॥ १६९
चूडा-चक्रे राज-योगो किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

श्री देव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं चाति-गुप्तकम् ॥ २००

श्रीशिव उवाच—

कीटात् ब्रह्माण्ड-पर्यन्तं सर्व-शक्ति-मयं जगत् ।
शक्ति-सम्पूजनाद् देवि ! ब्रह्माण्डं पूजितं भवेत् ॥ २०१
शक्त्या शिवस्य वै देहे भुवनानि चतुर्दश ।
लोक-त्रयं कला-स्थाने देव-लोकादिकं शिवे ॥ २०२
पर्वता धातवो वाप्यो समुद्राः सरितस्तथा ।
ब्रह्माण्ड-गोलके यच्च यत् किञ्चिज्जगती-तले ॥ २०३
तत् समस्तं शक्ति-देहे स्फुटं तिष्ठति पार्वति !
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्ति-देह-समुद्भवाः ॥ २०४

द्वितीयः पटलः

उदयाक्षर-निरूपणम्

श्रीदेव्युवाच—

पूर्वोक्तं वद देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

धन-कामे गणपतिमारोग्ये च दिवाकरम् ॥ १
तारा-पतिं च श्री-कामे मुक्ति-कामे जनार्दनम् ।
नारायणं सर्व-कामे श्री-कामे पुरुषोत्तमम् ॥ २
मन्त्री मन्त्र-प्रसिद्ध्यै श्रीं विद्यार्थी कालिकां यजेत् ।
मातङ्गीं धन-कामस्तु वाराहीं सर्व-कामया ॥ ३
भुवनेशीं राज्य-कामः तथा नील-सरस्वतीम् ।
तथा त्रिपुरामेवं च कूटे कूट-विभाविनीम् ॥ ४
सर्व-कामं कलियुगे कृते च पुरुषोत्तमम् ।
द्वापरे शिव-भेदं च त्रेतायां वामनं हरिम् ॥ ५
अथ कलियुगे शस्ता या बालेति निगद्यते ।
त्रेतायां ललिता शस्ता द्वापरे पञ्च-कूटगा ॥ ६
षट्-कूटा च कलौ शस्ता सर्व-तन्त्रेषु गोपिता ।
सर्व-कामं कलि-युगे सुन्दरी परमेश्वरि ॥ ७
बगला सर्व-सिद्ध्यर्थं स्तम्भनार्थं विशेषतः ।
धूमावती मारणार्थे शरभो निग्रहे मतः ॥ ८
प्रत्यङ्गिरा अन्यस्त्रादि-निग्रहार्थं प्रकीर्तिता ।

श्रीशिव उवाच—

अन्यत्तेऽहं प्रवक्ष्यामि यद्यज्जानामि देवते ॥ ९

भूति-कामस्तु सततं पूजयेत् त्रिपुरां कलौ ।
कालिकां च महामायां वाणी-कामस्तु चार्चयेत् ।। १०
भुवनेशीं तथा तारां स्वर्ग-कामस्तु चार्चयेत् ।
ब्रह्म-वर्चस-कामश्च ब्रह्माणं परिपूजयेत् ।। ११
आरोग्य-कामोऽथ रविं धन-कामो हुताशनम् ।
कमलां सिद्धि-कामस्तु विद्या-कामः सरस्वतीम् ।। १२
कलौ नील-पताकां च तथा नील-सरस्वतीम् ।
वाक्-सिद्धिर्जायते शीघ्रं काम-सिद्धिर्न संशयः ।। १३
कर्मणां सिद्धि-कामस्तु पूजयेद् वै विनायकं ।
भोग-कामस्तु शशिनं बल-कामः समीरणम् ।। १४
विमुक्त्यै सर्व-संसारात् प्रत्यनेनार्चयेच्छिवम् ।
ध्यान-योगं तथा मोक्षं यदीच्छेद् ज्ञानमव्ययम् ।। १५
सोऽर्चयेच्च विरूपाक्षं सर्व-सत्व-मयं हरम् ।
छिन्नमस्तां राज-पूर्वां मातङ्गीं काम-कालिकाम् ।। १६
श्मशान-कालिकां देवि ! सर्व-सिद्धि-प्रदां यजेत् ।
अश्वारूढां कुक्कुटीं च तथा भोगवतीं शिवे ।। १७
नित्यक्लिन्नां च भेरुण्डां स्त्री-वश्यार्थं यजेत् प्रिये !
सर्वाकर्षण-कामस्तु कालिकैकाक्षरीं यजेत् ।। १८
तथा मधुमतीं विद्यां सर्वाकृष्टौ यजेत् प्रिये ।
परा-प्रासाद-विद्यां च तथा षट्-शाम्भवेश्वरीम् ।। १९
सर्व-काम-प्रसिद्धयर्थं यजेद्यत्नेन सुन्दरीम् ।
धनदा ऋद्धि-कामेन सिद्धि-कामेन कामिनी ।। २०
भैरवी रूप-कामेन हयग्रीवस्तु वाक्-प्रदः ।

श्रीशिव उवाच—

दीक्षा-परम्परामाह येन देवी-मयो भवेत् ।। २१
गौड-काश्मीर-द्रविडे कौले वामे च दक्षिणे ।
सर्वत्र योजनीया हि यथा-मार्गेण सुन्दरी ।। २२

अधिकार-वशाद् देवि ! कलौ पाप-समन्विते ।
कलौ युगे च सम्प्राप्ते सर्वे भ्रष्टा भवन्ति हि ।। २३
परम्परा-विनाशस्तु भविष्यति न संशयः ।
गुरु-क्षोभं विमुख्यं च नातः सिद्धिः प्रवर्तते ।। २४
अज्ञान-वशतो देवि ! भ्रमन्ति हि इतस्ततः ।
मार्ग-भ्रष्टास्तथा जाता शाखा-रण्डा यथा मताः ।। २५
कोटि-संख्य-युगैर्वापि न ते वै सिद्धि-भागिनः ।
दीक्षा-परम्परां वक्ष्ये श्रीविद्यायां महेश्वरि ।। २६
कालिकायामपि तथा गौड-काश्मीर-भेदतः ।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रीविद्या-भेद-दीक्षणम् ।। २७
लब्धाधिकारिभिर्देवि ! बालोपास्या महेश्वरि !
पूर्णाधिकारिभिर्देवि ! काम-सम्पूजिता परा ।। २८
तदुत्तरं षोडशी स्यात् परा विद्या तदुत्तरम् ।
परा-प्रासाद-विद्या स्यात् प्रासाद-पर-रूपिणीम् ।। २९
सम्प्रदायानुसारेण दीक्षणं कारयेत् प्रिये !
षट्-शाम्भवं ततः प्रोक्तं सम्प्रदायानुसारतः ।। ३०
चरण-दीक्षा ततः प्रोक्ता त्वितो दीक्षा न विद्यते ।
निर्वाण-दीक्षा देवेशि ! सर्वतश्चोत्तमा मता ।। ३१
निर्वाण-दीक्षा-परतो नान्य-दीक्षा तु विद्यते ।
निर्वाण-दीक्षया युक्तः परं ब्रह्म न संशयः ।। ३२
चरण-त्रय-दीक्षा तु क्वचित् कार्या महेश्वरि !
बाला-मन्त्रादिका मन्त्रा विद्या-मन्त्रैव कीर्तिता ।। ३३
या सा पञ्चदशी देवी षोडशी सैव कीर्तिता ।
षोढा-न्यासादिकं चैव अष्टादश-सहस्रकम् ।। ३४
न्यासा यत्नेन कर्तव्या नाम-पारायणं तथा ।
परा-प्रासाद-विद्यायां सर्वमेव प्रकीर्तितम् ।। ३५

काल-नित्यादिकं चैव युग-पर्याय-नित्यकाः ।
मन्त्र-पारायणं कर्म नाडी-पारायणं तथा ॥ ३६
षोडशी-विद्यया युक्तस्त्वधिकारी हि सर्वतः ।
षडन्वय-क्रमे दीक्षा न्यास-पूजादिकं शिवे ॥ ३७
भिन्नमेव पुरा प्रोक्तं विशेषः कथ्यते पुनः ।
चतुश्चरण-दीक्षायां भिन्न न्यासादिकं मतम् ॥ ३८
परा-प्रासाद-विद्यायां विशेषः कुत्रचित् प्रिये !
सर्वेषां पूजनं देवि ! श्रीचक्रे परिकीर्तितम् ॥ ३९
अधिकारानुसारेण योजनीयं महेश्वरि !
सर्व-दीक्षादिभिर्युक्तो महादेवो न संशयः ॥ ४०
उत्तरोत्तरमेतद्धि श्रेष्ठं विद्धि महेश्वरि !
एतज्-ज्ञान-वशाद्देवि ! साक्षाद् ब्रह्म-मयो भवेत् ॥ ४१
आदावेकाक्षरी प्रोक्ता बाला-वत् परिकीर्तिता ।
सिद्धकाली पञ्चदशी विद्या-वत् परिकीर्तिता ॥ ४२
अथ वै दक्षिणा-काली षोडशी सैव कीर्तिता ।
ततः कामकला काली परा-प्रासाद-वन्मता ॥ ४३
चरण-दीक्षा यथा प्रोक्ता तथैव हंस-कालिका ।
ततस्तु गुह्यका-काली षट्-शाम्भव-परेश्वरि ॥ ४४
षट्-शाम्भवे गुह्यकाल्यां भिन्न एव प्रकीर्तितः ।
अत्रापि काल-नित्यादि ज्ञानं प्रोक्तं मया तव ॥ ४५
मन्त्र-पारायणं देवि ! नाम-पारायणं तथा ।
नाडी-पारायणं चैव युग-नित्यादिकं शिवे ॥ ४६
काल-नित्यादिकं चैव दिन-नित्यादिकं तथा ।
सर्वं विस्तरतो देवि ! मया पूर्वं निवेदितम् ॥ ४७
काल्यां तु युग-नित्यादि काल-नित्यानुसारतः ।
विंशत्-साहस्रकं चाष्ट-शती षट्-त्रिंशदीरिता ॥ ४८

काल-नित्या-विधानादि साधनं कथ्यते पुनः ।
इत्येत् कथितं देवि ! संक्षेपेण मया तव ॥ ४९
एतद्-विधानवाँल्लोके सिद्धि-रूपो न संशयः ।
पूर्णाभिषेक-दीक्षायां नाम-पारायणं चरेत् ॥ ५०
शैवे शैवान्तगं नाम वैष्णवे तु तदन्तगम् ।
सौर-गाणप-बौद्धादौ तत्तच्छास्त्रोक्त-नामतः ॥ ५१
शाक्ते शक्त्यन्तगं नाम शाक्ते बाहुल्यमीरितम् ।
श्रीमच्छाम्भव-दीक्षादौ शाम्भवो ह्यत्र सम्मतः ॥ ५२
तद्-रश्मिगं च वा नाम गुरु-मध्य-स्थितं च वा ।
ऋतु-द्वैविध्यगं वापि यथाम्नाय-क्रमेण तु ॥ ५३
शिव-शक्ति-युग्म-भेदान् माला-मन्त्रस्थमेव तु ।
षोडश्यां पञ्चदश्यां च लोपामन्वगस्तिके शिवे ॥ ५४
एतद्-गुरु-प्रोक्त-नाम देयं यत्नेन दीक्षणे ।
परा-प्रासाद-मध्ये तु प्रासाद-परयाऽथ वा ॥ ५५
शिव-शक्त्यन्तगं नाम शैव-शक्त्यन्तगं च वा ।
निर्वाणाद्यन्तगं नाम चरणे तद्-गुरु-स्थितम् ॥ ५६
मेधायां तद्-गुरुस्थं च प्रोक्तमेतन्महेश्वरि !
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सारात्-सार-तरं परम् ॥ ५७

श्रीदेव्युवाच—

शापोद्धारोत्कीलने तु तत्र भेदः कियान् भवेत् ।
तन्मे वद महादेव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ ५८

श्रीशिव उवाच—

उत्कीलनं बन्धनं स्यात् शापस्तेजो-निरोधकः ।
कीलने तु महादेवि ! न गतागतमीरितम् ॥ ५९
गतागतं महादेवि ! शापोद्धारे तु वर्तते ।
भक्तानुग्रह-काम्यत्वाद्देवी-साधक-सन्निधौ ॥ ६०

गत्वा दत्तो वरो देवि ! स मृषा जात एव हि ।
मन्त्र-चैतन्य-रोधत्वान्मृषा जातो महेश्वरि ॥ ६१
अयं शापो निगदितस्तथोत्कीलनमुच्यते ।
भक्तानुग्रह-काम्यत्वाद् दातव्यो हि वरः शिवे ॥ ६२

बन्धनस्थ यदा मुक्तिस्तदैव तु गतागतम् ।
शक्तिस्तु वर्तते देव्या वरदाने महेश्वरि ॥ ६३
यथा ऊर्ज-तरे वत्से धेनु-प्रोतिस्तु वर्तते ।
बन्धनस्य यदा मुक्ति स्तन-पानं तदैव हि ॥ ६४

काली तारा तथा छिन्ना तेजः-पुञ्ज-निभा मता ।
त्रयाणां तेजः-संरोधं को हि कर्तुं क्षमो भवेत् ॥ ६५
तस्माच्छापादिकं नास्ति कालिकायां महेश्वरि !
कालिका तारिणी विद्या उत्कीलन-विमोचनी ॥ ६६

दाम-सन्त्रोटनं कृत्वा धेनुर्याति यथा सुतम् ।
भक्तानुग्रह-काम्यत्वात् तथेयं कालिका परा ॥ ६७
तारा छिन्ना स्तम्भनेशो सर्व-बन्ध-विमोचनी ।
शापे तु प्रस्रवो नास्ति कीलने प्रस्रवोऽस्ति हि ॥ ६८
कालिकायां महादेवि ! सर्वदा प्रस्रवोऽस्ति हि ।
शापोद्धार-निरुक्तिस्तु शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ ६९
वत्सो निकट-वर्ती स्याद् धेनुर्निकट-वर्तिनी ।
दुग्धाभावान्महादेवि ! नैकट्ये किं फलं भवेत् ॥ ७०

कालान्तरे समायाते पुनर्दुग्धं यथा भवेत् ।
शाप-निर्मोचनादेव पुनस्तेजः प्रवर्तते ॥ ७१
वत्स-बन्धन-मुक्तित्वात् फलं सिद्धं हि वर्तते ।
उत्कीलने बन्धनं हि फल-सिद्धि-प्रदा प्रिये ॥ ७२
तस्मादुत्कीलनं भिन्नं शापो भिन्नः प्रकीर्तितः ।
अक्षर-व्यत्ययो देवि ! उत्कीलन-विधौ स्मृतः ॥ ७३

मन्त्रश्चैतन्य-रूपत्वात् चैतन्य-व्यत्ययो न च ।
चैतन्य-व्यत्ययं त्यक्त्वा पाप-भागी नरो भवेत् ॥ ७४
तत्पापस्य निवृत्यर्थं प्राणायामः प्रकीर्तितः ।
देहावयव-रूपत्वं ह्यक्षरे वर्तते शिवे ॥ ७५
अक्षर-व्यत्ययाद् देवि ! हीनाङ्गत्वं प्रजायते ।
शाप-हीने महादेवि ! सर्वाङ्गं सिद्धमेव हि ॥ ७६
वत्स-बन्धनकं कर्म पुनः सिद्धं यथा भवेत् ।
तथोत्कीलनकं कर्म पुनः सिद्धं महेश्वरि ॥ ७७
शाप-दाने महादेवि ! चैतन्याभाव एव हि ।
विद्यमाना यथा गौवैं दुग्धं नास्ति महेश्वरि ॥ ७८
शाप-दाने महेशानि ! चैतन्यं नास्ति शाम्भवि !
उत्कीलने महादेवि ! चैतन्यं सिद्धमेव हि ॥ ७९
इति भेदेन गदितो किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

श्रीदेव्युवाच—

दीप-रेखादिकं कर्म पूर्वं यत् सूचितं त्वया ॥ ८०
किमपराद्धं मया देव ! न तन्मह्यं प्रकटीकृतम् ।

श्रीशिव उवाच---

दीप-रेखादिकं ज्ञानं सारात्-सार-तरं मतम् ॥ ८१
दीपिन्यन्योक्ति-सिद्ध्यर्थं दीप-रेखा प्रकीर्तिता ।
आरभ्य भानोरुदयात् षष्टिर्विघटिकान्तरम् ॥ ८२
सृष्टि-संहार-योगेन दीप-रेखा-विधिर्मता ।
विन्दुमारभ्य होरान्तं दीपिनो समुदेति हि ॥ ८३
सर्व-मन्त्राणि देवेशि ! दीपिनो समुदेति हि ।
घटि-क्रमेण देवेशि ! तत्र मन्त्रोदयो भवेत् ॥ ८४
मन्त्र-मात्रे त्विदं प्रोक्तं मया संकेतकं शिवे !
एकाक्षरं समारभ्य सहस्रान्तं महेश्वरि ॥ ८५

अक्षरे चोदयं देवि ! घटिका-क्रम-योगतः ।
तत्राक्षरं सदोदेति तज्ज्ञानात् फलमाप्नुयात् ॥ ८६
हंस-चारो महादेवि ! यथा चलति सर्वदा ।
अजपा सैव गदिता सङ्कल्पात्तु फल-प्रदा ॥ ८७
युगाद्यारम्भ-दिवसं ज्ञात्वा चाहर्गणं शिवे !
मन्त्राक्षरोदयं देवि ! विद्धि यत्र सुनिश्चितम् ॥ ८८
एकैक-घटिका-योगाद् विन्दु-रेखोदयाक्षरम् ।
होरान्तं यत्नतो देवि ! ज्ञातव्यं शुभमिच्छता ॥ ८९
द्वारमारभ्य विन्द्वन्तं पुनरेकोदयाक्षरम् ।
एवं व्याप्तेन देवेशि ! विराड्-रूपत्वतां व्रजेत् ॥ ९०
व्यापकत्वं विना देवि ! न विराड्-रूपता मता ।
विश्व-रूपत्व-भावो हि विराड्-रूपे प्रकीर्तितः ॥ ९१
दीप-रेखां विना देवि ! न हि वै दीपिनी मता ।
दीप-रेखा-मध्य-भागे दीपिनी समुदेति हि ॥ ९२
तत्रैव दीपिनीं पूज्य तत्रैव चोदयाक्षरम् ।
उदयाक्षर-योगेन सजीवं मन्त्रमेव हि ॥ ९३
विनोदयाक्षरं देवि ! मन्त्रं निःशप्तकं न हि ।
मन्त्र-शाप-निवृत्यर्थं उदयाक्षर-चिन्तनम् ॥ ९४
मन्त्रोदयाक्षरं देवि ! तथा रेखोदयो भवेत् ।
उदयाक्षर-योगेन किं न सिद्ध्यति भू-तले ॥ ९५
मन्त्रोदयं यथा देवि ! तथा रेखोदयो भवेत् ।
रेखोदयो मन्त्र-मात्रे स्यादुदयोऽपि हि वर्तते ॥ ९६
इति प्रोक्तं मया देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

श्रीदेव्युवाच—

पूर्वं संसूचितं नाथ ! यन्त्र-ध्यानं त्वया प्रभो ॥ ९७
कथं ध्येयं किं विशिष्टं किं ध्येयाध्येयमेव हि ।
वृत्तं भित्ति-स्वरूपं वा मेखला-वत्-स्वरूपकम् ॥ ९८

किं वा रेखा-मयं ध्येयं किं वा मेरु-स्वरूपकम् ।
विश्व-रूपं स्मरेद् वापि तत्सर्वं मयि कथ्यताम् ।। ९९

श्रीशिव उवाच—

ध्यानं तु त्रिविधं प्रोक्तं यन्त्र-मात्रे महेश्वरि !
आदौ विराट्-स्वरूपं स्याद् विश्व-चक्षुः-स्वरूपिणं ।।१००
यन्त्रं सम्भावयेद् देवि ! सर्वत्र कथितं त्विदम् ।
श्रीचक्रादौ महादेवि ! विराड्-रूपे तु साम्यता ।। १०१
द्वितीयं तु कथं ध्येयं तन्मे वद महेश्वरि !
तेजः-पुञ्ज-निभा रेखा सर्व-चैतन्य-स्वरूपिणी ।। १०२
सर्वं दर्पण-वद्-भाव्यं स्व-प्रकाश-स्वरूपिणम् ।
चैतन्यं भावयेत् सर्वं बिन्द्वादि-भूपुरान्तकम् ।। १०३
मूले तेजः-प्रकाशेन नाभिन्नं भावयेत् प्रिये !
तृतीयं शृणु देवेशि ! मेरु-रूपं सनातनम् ।। १०४
उत्तरोत्तर-बीजं च बिन्द्वारभ्य विभावयेत् ।
बिन्द्वधो भावयेद् देवि ! चैकैकोत्तरतः शिवे ।। १०५
नवोत्तर-क्रमेणैव भावयेद् वा महेश्वरि !
काली-विद्या-विधौ देवि ! नव-रत्न-स्वरूपिणी ।। १०६
रेखाः सम्भावयेद् देवि ! मेरु-प्रस्तारवच्च वा ।
श्रीचक्रं बीज-संयुक्तं निःशप्तं परमेश्वरि ।। १०७
बीज-हीनं तु यच्चक्रं तच्चक्रं सिद्धिदं न च ।
सृष्टि-चक्रं भवेदादौ स्थिति-चक्रं द्वितीयकम् ।। १०८
लय-चक्रं तृतीयं स्यात् त्रिधा चक्रं निवेदितम् ।
बीज-संलेखनं देवि ! त्रिविधं गदितं मया ।। १०९
बीजं बिना तु निर्जीवं शव-वत्-परिकीर्तितम् ।
बीज-युक्तं भवेद्यन्त्रं निःशप्तं सिद्धि-दायकम् ।। ११०
बीजाभावे मातृकार्णान् संलिखेद् विन्दु-भूषितान् ।
यन्त्र-मध्ये तु संलिख्य तद्यन्त्रं पूजयेच्छिवे ।। १११

दलाकारं तु यद्यन्त्रं तद्यन्त्रं सिद्धि-दायकम् ।
दलाकारं कलौ पूज्यं नान्यथा सिद्धिदं शिवे ।। ११२
मन्त्र-चैतन्यकं देवि ! यन्त्र-चैतन्यकं तथा ।
गुरु-चैतन्यकं देवि ! स्वस्मिंस्त्रितय-भावना ।। ११३
न तत्र ध्यान-रूपादि तेजः-पुञ्ज-विभावना ।
स-प्रपञ्चे तु निःसारे दुराचार-व्रते शिवे ।। ११४
भावनैव तु सम्प्रोक्ता भावना सिद्धिदा मता ।
भावना यदि सिद्धा न तदेतं तु कथं भवेत् ।। ११५
भावना-प्रेरणं देवि ! दैवेन क्रियते शिवे !
प्रत्ययं शृणु देवेशि ! यत् सर्वैः क्रियते सदा ।। ११६
कुण्डली भिन्नरूपा स्यात् तल्लिङ्गं भिन्नरूपिणम् ।
स्वयम्भु-लिङ्गमित्युक्तं स्वतः सिद्धं महेश्वरि ।। ११७
मूल-विद्या-मयी देवि ! कुण्डली शक्ति-रूपिणी ।
कुण्डली सर्प-रूपा स्याद् देवता भिन्न-रूपिणी ।। ११८
शिवस्याभिन्न-रूपत्वात् त्रिधा रूपं प्रकीर्तितम् ।
मूलाधारं तु कुण्डल्याः स्थानं प्रोक्तं महेश्वरि ।। ११९
श्रीदेवतायाः स्थानं तु हृदयं परिकीर्तितम् ।
शिव-स्थानं महेशानि ! सहस्रारं प्रकीर्तितम् ।। १२०
स्थान-भेदान्नाम-भेदाद् रूप-भेदान् महेश्वरि !
कथमैक्यं महादेवि ! तस्मात्तु भावना मता ।। १२१
स्थान-भेदे रूप-भेदे नाम-भेदे न वै मम ।
तात्पर्यं विद्यते देवि ! किं तु चैतन्य-भावना ।। १२२
गुरु-मुख्याः क्रियाः सर्वा निर्वाणं गुरु-रूपकम् ।
निर्वाणं परमं ब्रह्म निर्वाणं तु गुरोः पदम् ।। १२३
गुरुः शक्तिर्गुरुर्विद्या गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्विराट्-स्वरूपवान् ।। १२४

गुरुर्मन्त्रो हि चैतन्यं किं बहु ब्रह्म केवलम् ।
चैतन्यमेव तात्पर्यं ध्यानं तु भावनैव हि ॥ १२५
केन दृष्टं ध्यान-रूपं भावना-मात्र-गोचरम् ।
दृढ-भावनया युक्ते प्रत्यक्षं दर्शनं भवेत् ॥ १२६
चैतन्यं सर्वदा भाव्यं गुरौ देवि ! न संशयः ।
गुरुं विना न विद्याप्तिर्न च मन्त्राप्तिरेव च ॥ १२७
गुरु-स्थानं श्रेष्ठ-भूतं गुरौ सर्वस्य भावना ।
गुरु-दैवत-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ॥ १२८
मन्त्रार्थं हृदि निश्चित्य गुरु-रूपं परामृशन् ।
सर्वं गुरौ विलीनं वै ज्ञात्वा तु प्रजपेत् प्रिये ॥ १२९
स्वाभिन्नत्वेन सम्भाव्य त्रितयं त्रितयं त्रिषु ।
सर्व-चक्षुः सर्व-मुखं सर्वस्यैव स्वरूपिणम् ॥ १३०
गुरुमेव विजानीयाद् ! गुरुं ध्यायन् जपं चरेत् ।
मया पूर्वं निगदितं भाव-त्रितयकं शिवे ॥ १३१
पशु-वीर-दिव्य-भावाद् दिव्ये किं वा निरूपितम् ।
तेजः-पुञ्जं विभाव्याऽथ सर्वमेक-स्वरूपकम् ॥ १३२
चैतन्यं च विभाव्याऽथ महा-तेजः स्मरेच्छिवे !
गुरु-कृपा भवेद् देवि ! देव-रूपो गुरुः स्मृतः ॥ १३३
गुरु-रूपो भवेदात्मा आत्मा-रूपो मनुर्भवेत् ।
मन्त्र-रूपं तु सकलं विभाव्य मूर्ति-कल्पना ॥ १३४
ध्यानोक्तां देवतां ध्यात्वा सर्वं संसाधयेत् क्षणात् ।
एवं भावनया देवि ! ताद्रूप्यत्वं प्रजायते ॥ १३५
ताद्रूप्ये तु समापन्ने पर-शक्तित्वतां व्रजेत् ।
पर-शक्ति-स्वरूपोऽहमिति सम्भाव्यमव्ययम् ॥ १३६
चैतन्य-मूर्ति सञ्चिन्त्य किं न सिद्ध्यति भू-तले ।
त्रयाणामेकगं तेजस्तत्र मूर्ति-प्रकल्पना ॥ १३७

ध्यानोक्त-देवतां ध्यात्वा स्व-स्वरूपां विभावयेत् ।
त्रितयं त्रिषु सम्भाव्य तत्रेष्ट-मूर्ति-कल्पना ।। १३८
मनः स्थैर्यं यथा देवि ! तथा कार्यं महेश्वरि !
तस्याः सम-रसं देवि ! तेजः-पुञ्ज-निभं स्मरेत् ।। १३९
अर्ध-नारीश्वरमपि मन्त्र-चैतन्य-विग्रहम् ।
न देहे मन्त्र-वर्णान् स्वे व्याप्तान् वै भावयेत् सुधीः।। १४०
वन-माला-समां भाव्य तेजः-पुञ्ज-निभां शिवे !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं यथा कुण्डली-रूपकम् ।। १४१
कुण्डली-त्रितये देवि ! यथा सम्भाव्यते शिवे !
तथाऽत्र भावना प्रोक्ता किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। १४२

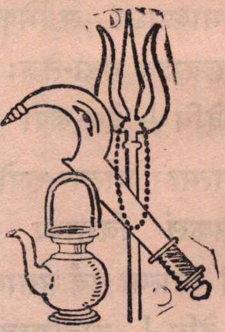

तृतीयः पटलः

प्राणायाम-जपः

श्रीदेव्युवाच—

देवाधि-देव सर्वज्ञ सव-शास्त्र-प्रवर्तक !
मन्त्रोदयादिकं ज्ञानं दीप-रेखादिकं प्रिये ।। १
भावनान्तं च कथितं पूर्वोक्तं न प्रकाशितम् ।

श्रीशिव उवाच—

तदेव कथ्यतेदानीं शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ।। २
केरलाख्य-मतं चैकं काश्मीरं तु द्वितीयकम् ।
गौड-संज्ञं तृतीयं स्यान्मतं तु भावना-विधौ ।। ३
आदौ तु केरलं देवि ! शुद्धं सर्वेषु सम्मतम् ।
गुरु-दैवत-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ।। ४
चैतन्यं तु त्रयाणां च तेजः-पुञ्जं विभावयेत् ।
उपदेष्टा गुरुर्देवि ! मन्त्रे चैतन्य-बोधनम् ।। ५
चैतन्यस्य स्वरूपं वै गुरु-रूपं विभावयेत् ।
नव-रत्न-प्रभा देवि ! यथा चैकत्र योज्यते ।। ६
एकत्र योजनादेव ज्वलन्मेरु-सम-प्रभाम् ।
एकत्र योजनाद् देवि ! कोटि-सूर्य-सम-प्रभाम ।। ७
तत्-प्रभायां महा-देवि ! गुरुं शम्भु-स्वरूपिणम् ।
वराभय-करं शान्तं द्वि-नेत्रं द्वि-भुजं गुरुम् ।। ८
तत्-तेजसा विलीनं हि जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ।
केरलाख्ये सम्प्रदाये एवं सम्भावयेद् गुरुम् ।। ९
गुरु-मुख्याः क्रियाः सर्वास्तस्मात् सर्वोत्तमो गुरुः ।
काश्मीराख्यं शृणु प्राज्ञे ! येन तन्मयतां व्रजेत् ।। १०

मन्त्र-देव-गुरूणां हि त्वैक्यं सम्भावयन् धिया ।
तेजः-पुञ्ज-निभं सर्वं ह्यक्षरस्य स्वरूपकम् ॥ ११
तेजः-पुञ्जाक्षराणि च सर्वं चैकत्र भावयेत् ।
सर्वं लीनं ह्यक्षरे वै चैतन्य-त्रितयं शिवे ॥ १२
सर्वं चैतन्यजं तेजः कोटि-सूर्य-सम-प्रभाम् ।
तेजः-पुजाक्षराण्येव रत्न-कूट-समूह-वत् ॥ १३
सम्भाव्य प्रजपेन्मन्त्रमिष्ट-सिद्धि-प्रदायकम् ।
काश्मीराख्य-क्रमः प्रोक्तो गौड-क्रम-मतः शृणु ॥ १४
देवता-गुरु-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ।
सर्वं तेजोमयं भाव्यं जगत्-स्थावर-जङ्गमम् ॥ १५
त्रयाणां देवि ! चैतन्यं तेजः-पुञ्ज-निभं शिवे !
तेजः-कूटमभूदेकं मेरु-पर्वत-सन्निभम् ॥ १६
तत्-तेजसि महा-देवीं सायुधां परिचिन्तयेत् ।
ध्यानोक्त-विधिना ध्यात्वा सर्व-रूपां विभावयेत् ॥ १७
एवं भावयतस्तस्य देवता वरदा भवेत् ।
इयं वै भावना प्रोक्ता किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १८

श्रीदेव्युवाच—

सम्प्रदाय-त्रयेणैव सङ्कल्पो यस्तु सूचितः ।
स च वै कथ्यतां देव ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ १९

श्रीशिव उवाच—

केरलाख्ये सम्प्रदाये सङ्कल्पं शृणु सादरम् ।
प्रीत्यर्थं देवतायास्तु सङ्कल्पः परिकीर्तितः ॥ २०
देवताया यदा प्रीतिर्जाता तत्क्षणमेव तु ।
प्रसन्नता भवेदादौ ततः प्रीतिः प्रवर्तते ॥ २१
प्रीतिर्जाता यदा देवि ! प्रसन्नत्वे न संशयः ।
प्रीत्यर्थे विनियोगस्तु मुख्योऽयं परिकीर्तितः ॥ २२

काश्मीराख्ये क्रमे देवि ! विनियोगं शृणु प्रिये !
प्रत्यक्ष-दर्शनार्थं हि देवताया महेश्वरि ॥ २३
गौड-क्रमे महेशानि ! सर्व-सिद्धयर्थमेव तु ।
देवताया यदा प्रीतिस्तदा सर्वं प्रवर्तते ॥ २४
प्रत्यक्ष-दर्शनं देवि ! प्रीतौ लीनं हि वर्तते ।
तथा वाक्यादि-संसिद्धिः प्रीतौ लीना हि वर्तते ॥ २५
तस्मात् प्रीतिर्मुख्य-भूता प्रीत्यर्थं विनियोगता ।
इति प्रोक्तं महा-देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २६

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि नित्या पञ्च-विधा कथम् ।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि काल-नित्यासु निर्णयम् ॥ २७
तिथि-नित्या भवेदादौ दिन-नित्या तदुत्तरम् ।
युग-नित्या ततः प्रोक्ता काल-नित्या मता ततः ॥ २८
ततः पर्याय-नित्या स्यादेवं पञ्च-विधा मता ।
शुक्ल-कृष्ण-क्रमेणैव द्विधा नित्यार्चनं मतम् ॥ २९
आदौ कामेश्वरी शुक्ले चित्राद्या कृष्ण-पक्षके ।
तिथि-नित्यां समभ्यर्च्य द्वाभ्यामाद्यां ततः प्रये ॥ ३०
पुनराद्यन्तमाचर्य दक्षिणामूर्ति-सम्मतम् ।
आनन्द-भैरव-मते प्रथमे दिन-नित्यकाम् ॥ ३१
शुक्ल-कृष्ण-क्रमेणैव तदन्ते सकलां यजेत् ।
तिथि-नित्या तु कथिता दिन-नित्या-पुरःसरम् ॥ ३२
शुक्ल-कृष्ण-क्रमेणैव तदन्ते सकलां यजेत् ।
युग-नित्या तु कथिता काल-नित्या च पूर्व-वत् ॥ ३३
पर्याय-नित्या देवेशि ! काल-नित्या-पुरःसरम् ।
कथ्यते शृणु देवेशि ! सावधान-मनाः शृणु ॥ ३४

शून्य-सर्गौ समुद्धृत्य ततः काम-कलां वदेत् ।
हंसः सोऽहं समुद्धृत्य पर्यायः कथ्यते शृणु ॥ ३५
अकारादि-क्षकारान्त उ-अ-इ-पल्लवान्वितैः ।
परस्परान्वितैर्देवि ! द्वि-त्रि-क्रम-गतैः शुभैः ॥ ३६
स्वरादिभिरथोपात्तैस्तैश्च तैश्च स्वरान्वितैः ।
परस्परं पल्लवितैर्नाम-परायणाभिधा ॥ ३७
पर्याय-नित्या कथिता काल-नित्यान्विता शुभा ।
पर्याय-स्व-जनिर्देवि ! काल-नित्या-प्रकाशतः ॥ ३८
तत्तत् पारायणं नाम कीर्तितं देव-दुर्लभम् ।
कालिकायां महेशानि ! नित्या-पर्याय-नामतः ॥ ३९
काली-पर्याय-नित्या वै संक्षेपेण प्रकाशिता ।
विंशत्-साहस्रकं भाग शत-षट्-त्रिंशदीरिता ॥ ४०
अत्रेत्थं केचिदिच्छन्ति नागे सप्तशतीति च ।
अक्षरोदयकं यत्तेऽनेकमेव प्रकीर्तितम् ॥ ४१
षष्टि-पारायणं नाम पूर्वमेव प्रकीर्तितम् ।
नाम-पारायणं भिन्नं मन्त्र-पारायणं तथा ॥ ४२
मन्त्र-पारायणं भिन्नमेव प्रकीर्तितम् ।
अक्षरोदयः षष्टितमस्त्वेक प्रकीर्तितः ॥ ४३
काली-पारायणं नाम कीर्तितं तव सुव्रते !
सुन्दर्यां भिन्नमेवोक्तं तच्छृणु त्वं महेश्वरि ॥ ४४
आ-ई-पल्लव-संयुक्तैः परस्पर-युतैः शिवे !
द्वि-त्रि-क्रमाक्षरैः काद्यैः क्षान्त-वर्ण-यतैः शिवे ॥ ४५
स्वरादिभिरथ क्षान्तैस्तैश्च तैः सस्वरैः शिवे !
नामानि त्रिपुरे ! ते हि गणितैः सम्भवन्ति हि ॥ ४६
विंशत्-साहस्रकं साष्ट-शतं षट्-त्रिंशदेव हि ।
गुह्यातिगुह्यं कथितं यन्न कुत्र प्रकाशितम् ॥ ४७

अकारः प्रथमो वा हि आकारः प्रथमोऽथ वा ।
अकारः प्रथमो देवि ! ह्याकारस्तदनन्तरम् ॥ ४८

विराड्-रूपं तु प्रथमं ततः सावयवा मता ।
विराड्-रूपं कालिकाख्यं सुन्दरं सुन्दरी-मुखम् ॥ ४९

तस्मादकारो मुख्यो हि स तु काली-विधौ मतः ।
कादि-वर्णः कालिकायां हादिः श्रीसुन्दरी-मते ॥ ५०

वर्ण-स्वरूपे तद्-रूपं न मदीयं तु विद्यते ।
कादिर्विराट् शून्य-रूपः ककारः परिकीर्तितः ॥ ५१

हादिर्हकारः श्रीविद्या चित्कला काम-सुन्दरी ।
महा-काम-कला विद्या हकारे तु विराजते ॥ ५२

विराट्-स्वरूपं सुन्दर्या विद्या-मात्रे प्रकीर्तितम् ।
तथापि काल्यां देवेशि ! मुख्यत्वेन व्यवस्थितम् ॥ ५३

नाम-पारायणे देवि ! तत्-स्वरूपं प्रदृश्यते ।
अकारो बिन्दु-संयुक्तो अकारः सर्ग-संयुतः ॥ ५४

अं-अश्चेत्यक्षर-द्वन्द्वमनुत्तर-स्वरूपकम् ।
अनुत्तरा द्वि-पञ्चाशद्-विद्याख्या परिकीर्तिता ॥ ५५

एवं काम-कला विद्या मत-भेदेन दर्शिता ।
ईकारः केवलो देवि ! महा-काम-कला मता ॥ ५६

अत एव काम-राजे ककारत्वे तु मुख्यता ।
लोपायां तु हकारो हि त्वाकारत्वेन कीर्तितः ॥ ५७

कृत्वा हरार्द्धं देवेशि ! यो ध्यायेत् जगदम्बिकाम् ।
मन्त्र-द्वयेन पुटितं सर्वाभिन्नत्व-भावना ॥ ५८

नाम-पारायणं प्रोक्तं काली-विद्या-विधौ शिवे !
अतएव तु सम्प्रोक्तं चित्-स्वरूपं महेश्वरि ॥ ५९

अकारः प्रथमो देवि ! ह्याकारस्तु द्वितीयकः ।
आकारो व्यापकत्वेन सर्व-व्यापक ईरितः ॥ ६०

हकारार्ध-कला देवि ! ईकारः परिकीर्तितः ।
एवं मिलित्वा देवेशि ! महा-राजेश्वरी परा ॥ ६१
महा-राजेश्वरी विद्या पल्लवः परमो मतः ।
श्रीविद्यायां महेशानि ! प्रोक्तं संक्षेपतः शिवे ॥ ६२
विराडुत्तरेश्वरी विद्या कालिकायां प्रकीर्तिता ।
अकारस्तु ककारेऽपि हकारेऽपि प्रकीर्तितः ॥ ६३
अकारोच्चारणं देवि ! न कादौ हादि-सम्मतम् ।
उभयोर्यत्र चेत् कूटं कूटार्थे परिकीर्तितम् ॥ ६४
कूटोच्चारणकं कर्म कलौ कस्य भविष्यति ।
तस्मादुच्चारणार्थं हि ह्यकारः परिकीर्तितः ॥ ६५
ककारस्त्वादि-वर्णो हि हकारश्चरमो मतः ।
अत्रार्थे प्रत्ययो देवि ! वर्णोद्धारे भविष्यति ॥ ६६
कहेत्येवं महा-मन्त्रो यस्य वाचि प्रवर्तते ।
स धन्यः स च विज्ञानी स हि वै देव-पूजितः ॥ ६७
प्रणामं कुर्यात्तं दृष्ट्वा ज्ञानात् फलमवाप्नुयात् ।
अज्ञानात् फलनाशः स्यात् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६८

श्रीदेव्युवाच—

षष्ठी-जप-प्रकारोऽपि नाम-पारायणं तथा ।
मन्त्र-पारायणं देवि ! ह्यक्षरोदयकं तथा ॥ ६९
दीप-रेखादि-विज्ञानं मन्त्रार्णस्योदयं तथा ।
कस्याधिकारो देवेश ! केन कार्यं स को भवेत् ॥ ७०
तन्मे वद महा-देव ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

पूर्णाभिषेकी शुद्धान्तो गुरु-भक्तो दृढ-व्रतः ॥ ७१
अनित्य-कर्म-सन्त्यागी नित्यानुष्ठान-तत्परः ।
पारम्पर्य-क्रमासक्तः षट्-शाम्भवान्तमेव हि ॥ ७२

सन्ध्या-चतुष्टये देवि ! ह्यधिकारो हि यस्य वै ।
आचार्यत्वे महा-देवि ! अधिकारो हि यस्य वै ।। ७३
भविष्य-ज्ञान-त्रैकाल्य-ज्ञान-विज्ञान-दर्शने ।
बाला पञ्चदशी कादि षोढा विद्या परा ततः ।। ७४
परा-प्रासाद-निर्वाणौ षडन्वय-क्रमस्ततः ।
एवं परम्परा-युक्ते नाम-संज्ञादि-संयुते ।। ७५
तस्याधिकारो देवेशि ! नाम-पारायणादिके ।
षष्ठी-जपं समारभ्य नाम-मन्त्रान्तिके शिवे ।। ७६
एवं पारायणं कर्म यः करोति महेश्वरि !
स च किं मानुषो देवि ! स साक्षाच्छिव एव हि ।। ७७
षष्ठी-पारायणं नाम नाम-पारायणं तथा ।
मन्त्र-पारायणं ज्ञानं दीप-रेखादिकं तथा ।। ७८
नाम-दानादि-संकेतो नाल्पस्य कर्मणः फलम् ।
येन कोटि-युगं देवि ! सुन्दरी सम्यगर्चिता ।। ७९
अष्टादश-सहस्रं हि न्यासान् येन स्व-देहके ।
पुरश्चर्यादि-संयुक्तैर्न्यस्ता देवेश-वन्दिता ।। ८०
तेनेदं लभ्यते देवि ! ह्यथवा नहि लभ्यते ।
एतत् तत्त्वं महेशानि ! किञ्चिज्जानामि यत्नतः ।। ८१
पूर्ण-वेत्ता महा-देवि ! स साक्षात् कालिकाम्बिका ।
सैव वै सुन्दरी-रूपा तारुण्यामृत-विग्रहा ।। ८२
जानाति सुन्दरी देवि ! सा त्वमेव महेश्वरि !
सर्वं गोपयसि प्राज्ञे ! मम भाग्यं महत्तरम् ।। ८३

श्रीदेव्युवाच—

धन्योऽसि शिव विश्वेश सर्व-पार-प्रदर्शक !
शक्तौ शिवं विना शम्भो ! सामरस्यं न दृश्यते ।। ८४

श्रीशिव उवाच—

भेदो नास्ति महा-देवि ! यथा बीजांकुरो भवेत् ।
सैवाहं पुं-स्वरूपेण स्त्री-रूपेणाहमेव हि ।। ८५

आवाभ्यां न हि भेदोऽस्ति भेदस्त्वज्ञान-सम्भवः ।
उपदिष्टोऽस्मि देवेशि ! ह्यनुत्तर-गुणार्णवे ॥ ८६
त्वत्-प्रसादादिदं सर्वं न वै विस्मृतमेव हि ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८७

श्रीदेव्युवाच—

पूर्वं संसूचितं नाथ ! स्वप्न-मन्त्र-विवेचनम् ।
न मह्यं कथितं नाथ ! मम वा योग्यता न हि ॥ ८८
सर्वं मे कथ्यतां देव ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

एतावत् काल-पर्यन्तं न कुत्रापि प्रकाशितम् ॥ ८९
तव प्रीत्या महेशानि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
पञ्चाशद् वै महा-पद्मा ह्यागम-ग्रन्था ईरिताः ॥ ९०
तन्त्र-मन्त्रा महा-देवि ! सर्वेषु च प्रतिष्ठिताः ।
त्रिंशन्निखर्व-षड्-वृन्द-नवत्यर्बुद-कोटयः ॥ ९१
मन्त्राः प्रोक्ता महेशानि ! ह्यागमं कुत्र किं स्थितम्
तत् शृणु त्वं महेशानि ! यद्यहं तव वल्लभः ॥ ९२
महत्-पञ्चाशत्-पद्मे तु षट्-विंशति भुवि स्थितम् ।
चतुर्दश स्थितं स्वर्गे दश पाताल-गोचरम् ॥ ९३
एवं क्रमेण देवेशि ! ह्यागमः कथितो मया ।
स्वप्न-मन्त्रा महा-देवि त्रिधा वै परिनिष्ठिताः ॥ ९४
पाताले तु विराट्-चक्रं स्वर्गे ताण्डव-चक्रकम् ।
स्वर्गे चक्र-द्वयं देवि ! त्रिपुराख्यं द्वितीयकम् ॥ ९५
आदौ विराट् ततो देवि ! शिव-ताण्डवमेव च ।
तृतीयं त्रिपुराख्यं तु स्वप्न-मन्त्रास्त्रिधा स्थिताः ॥ ९६
तत्रैव तु हृदन्ता ये ते विराट्-चक्र-गोचराः ।
अस्त्रान्तास्तु महेशानि ! शिव-ताण्डव-गोचराः ॥ ९७

त्रिपुरा-चक्र-मध्यस्था वह्नि-जायान्तिका मताः ।
एते मन्त्राः त्वौत्सुक्येन भुवि स्वप्नेन गोचराः ॥ ९८
स्वप्न-मार्गेण देवेशि ! उपदिष्टाः शिवेन तु ।
तेषां तु लक्षणं देवि ! शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ॥ ९९
पाताल-चक्र-मन्त्राणां लक्षणं शृणु साम्प्रतम् ।
अञ्जनं गुटिका गुप्तिश्चाज्ञा-सिद्धिस्तथैव च ॥ १००
शिव-ताण्डव-चक्रस्य लक्षणं शृणु साम्प्रतम् ।
खड्ग-वेताल-सिद्धिश्च पर-काय-प्रवेशनम् ॥ १०१
चराचर-गतित्वं च ह्यणिमाद्यष्टकं तथा ।
त्रिपुरा-चक्र-मन्त्राणां लक्षणं शृणु पार्वति ॥ १०२
मनोरथस्य चाक्लेशस्त्रिपुरा-चक्र-मण्डले ।
षष्टि-सिद्धीश्वरो भूत्वा भुवि स्वर्गे च भू-तले ॥ १०३
त्रिशङ्करस्था ये मन्त्रास्ते च कुत्र प्रतिष्ठिता ।
अर्ध-नारीश-चक्रे तु ते च तिष्ठन्ति पार्वति ॥ १०४
त्रिधा शङ्करतां यातास्ते वै पर-शिवस्य च ।
मण्डले संस्थिता देवि ! सुन्दरीव तु लक्षणम् ॥ १०५
परा-प्रासाद-मन्त्रो हि प्रासाद-परयाऽथवा ।
यथा द्वि-धात्वमापन्नस्तत्रापि च महेश्वरि ॥ १०६
आद्यं यत्तु भवेद् देवि ! तदाद्य-शङ्करो मतः ।
स शङ्करः परा-वत् स्यात् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १०७

श्रीदेव्युवाच----

स्वप्न-लब्धे महा-देवि ! ऋषिच्छन्दादिकं कथम् ।
ऋषिच्छन्दादिकं यन्न स्वप्ने प्रोक्तं महेश्वर ॥ १०८
तथा पीठादिकं ध्यानं यन्न प्रोक्तं महेश्वर !
यत्र नोक्तं महा-देव ! तत्र किं च कथं भवेत् ॥ १०९

श्रीशिव उवाच----

ऋषिः शिव इति प्रोक्तो गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
चिद्-रूपा देवता देवि ! कीलकाद्यं न विद्यते ॥ ११०

द्रविडाख्यं मतं प्रोक्तं कश्मीरं शृणु यत्नतः ।
ऋषिच्छन्दाद्यनुक्ते तु ऋषिर्ब्रह्मा महेश्वरि ॥ १११

गायत्रीच्छन्द आदिष्टं को विजानाति पार्वति !
स्वराः शक्तय इत्युक्तास्त्वव्यक्तं कीलकं मतम् ॥ ११२

पीठं तु मातृका-पीठं ध्यानादि मातृकोक्त-वत् ।
गौड-क्रमे महेशानि ! सिद्ध-मन्त्रतया शिवे ॥ ११३

न ऋषिच्छन्दसी देवि ! न पूजा-नियमः शिवे !
जप-मात्रेण सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ११४

न चक्र-शोधनादीनि सिद्ध-मन्त्रे महेश्वरि !
सिद्ध-मन्त्रे विकल्पश्चेत् सिद्धत्वं तस्य गच्छति ॥ ११५

न ऋणं न धनं वापि जप-मात्रेण सिद्धिदः ।
पुरश्चर्यादिकं देवि ! पूर्ववत् परिकीर्तितम् ॥ ११६

न षडङ्गं महेशानि ! चैतन्येशी तु देवता ।
प्राण-प्रतिष्ठा-ध्यानं तु ध्यान-मात्रं प्रकीर्तितम् ॥ ११७

तेजः-पुञ्जं मन्त्र-वर्ण-ध्यानं सर्वार्थ-सिद्धिदम् ।
मूल-मन्त्र-षडावृत्या षडङ्गं न्यासमाचरेत् ॥ ११८

पदं यत्र भवेद् देवि ! तेन वा न्यसनं चरेत् ।
यत्र प्रोक्तं षडङ्गाद्यं तत्र वै तत् समाचरेत् ॥ ११९

पीठेऽनुक्ते शक्ति-पीठं ध्यानेऽनुक्ते तु मातृका ।
पुरश्चर्याद्यनुक्ते तु दिक्-सहस्रं जपेत् प्रिये ॥ १२०

द्वा-विंशाक्षर-पर्यन्तं दिक्-सहस्रं प्रकीर्तितम् ।
तदुत्तरं महा-देवि ! गजान्तक-सहस्रकम् ॥ १२१

स्वप्न-लब्धे स्त्रिया दत्ते ह्यन्तरं तु कियद् भवेत् ।
संस्कारे साम्यता देवि ! घट-संस्कार-मात्रके ॥ १२२

सिद्धारि-चक्रं देवेशि ! नाम-मात्रं तु शोधयेत् ।
ऋण-चक्रं विचिन्त्याथ रुद्र-चक्राणि संन्यसेत् ॥ १२३

ऋण-धनाख्य-चक्रं हि सर्वत्र कीर्तितं मया ।
ऋण-चक्रं विहायाथ दशार्बुद-मितं जपेत् ॥ १२४
न तस्य सिद्धिर्देवेशि ! देवता-शापमाप्नुयात् ।
स्वस्य नास्ति ऋणित्वं हि देवे दोषो हि दीयते ॥ १२५
दोषो न दद्याद् देवेषु चोत्तमर्णं जपेत् सदा ।
ऋणिमन्त्रं समाश्रित्य यो मन्त्रान् विविधान् जपेत् ॥ १२६
इह सिद्धीश्वरो भूत्वा परे शिव-समो भवेत् ।
मन्त्रे संशोध्यमाने तु ऋणं हि दृश्यते प्रिये ॥ १२७

श्रीदेव्युवाच—

सिद्धिः स्वानुभवादेव तत्र किं वर्तते प्रभो ?

श्रीशिव उवाच—

पूर्वं संसाधितो मन्त्रः स ऋणीत्यभिधीयते ॥ १२८
तद्-युग-स्थान-नाम्ना तु स ऋणी परिनिष्ठितः ।
तत्प्रभावान्महेशानि ! स मन्त्रः सिद्धि-दायकः ॥ १२९
स्वप्न-मध्ये तु सम्प्राप्तश्चमत्कारो न विद्यते ।
शोध्यमाने महा-चक्रे न ऋणी दृश्यते स्फुटम् ॥ १३०
स मन्त्रस्तु धनी देवि ! शिष्येभ्यश्चोपदेशयेत् ।

श्रीदेव्युवाच—

पूर्वं प्रोक्तं त्वया देव ! स्वप्न-लब्धादयः प्रभो ॥ १३१
स्वप्नलब्धा स्त्रिया दत्ता माला-मन्त्रादिकाः प्रिय !
सिद्ध-मन्त्रा इति प्रोक्तास्त्वन्यथा प्रतिपादितम् ॥ १३२
तत्र मे संशयो जातस्तन्मे वद महेश्वर !

श्रीशिव उवाच—

सत्यमेतन्महेशानि ! सिद्धत्वं वर्तते स्फुटम् ॥ १३३
यत्रास्ति प्रत्ययो देवि ! स सिद्धः परिकीर्तितः ।
प्रत्ययो नास्ति देवेशि ! स धनी परिकीर्तितः ॥ १३४

सिद्धत्वं प्रत्यये देवि ! न सर्वे सिद्धतां गताः ।
पूर्व-संस्कार-वशतस्त्वन्ये मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।। १३५
पारम्पर्येण सम्प्राप्ताः संस्कार-वशतः शिवे !
तस्माद् ऋण-धनं शोध्य मन्त्रो जप्यः शुभेच्छुना ।। १३६
पूर्व-नाम्ना ऋणित्वं हि तथैव विद्यमानता ।
ईदृशस्तु महेशानि ! महा-भाग्येन लभ्यते ।। १३७
संस्कारेण तु सम्प्राप्तस्त्वधुना ऋणतां गतः ।
सोऽपि वै तादृशो देवि ! न धनी तादृशो मतः ।। १३८
चक्र-पञ्चक-मध्ये तु ह्येतद् योज्यं महेश्वरि !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं साधनान्तं प्रकीर्तितम् ।। १३९
पुंस्त्रीनपुंसका देवि फट्-स्वाहा हृत् क्रमात् स्मृताः
इति संक्षेपतः प्रोक्तं साधनं कथ्यते शृणु ।। १४०
अस्त्रमध्ये त्वस्त्रमन्त्राः वह्निकान्तान्तिकाः स्त्रियां
नमोऽन्ताः शिव-मन्त्रेषु ह्यन्तर्भूता इतीरिताः ।। १४१
केचिद् द्वि-मातृकोक्तं हि ध्यानमिच्छन्ति पार्वति !
केचित् नशयन्तु काश्मीरा द्विधा भेदः प्रकीर्तितः ।। १४२
पञ्चायतन-योगेन मन्त्रार्थेन महेश्वरि !
पल्लवेनाथ देवेशि ! ह्यन्तर्भूता भवन्ति हि ।। १४३
भुवि स्थितास्तु ये मन्त्राः पल्लवैः सङ्गता यदि ।
ते हि स्वप्नेषु सम्प्राप्तास्तेषां कुत्र प्रयोजना ।। १४४
केचित्तु कवचे प्रोक्ताः केचित् स्तोत्रे प्रकीर्तिताः ।
प्रधान-वत्तु ते सर्वे सञ्जप्याः परमेश्वरि ।। १४५
प्रधानोक्तं तु यत् कर्म तत्तत् सर्वत्र कीर्तितम् ।
तत्रोदाहरणं देवि ! नील-सारस्वते स्मर ।। १४६
गुरूपदिष्टा देवेशि ! पुरश्चर्या प्रकीर्तिता ।
तत्र मार्ग-क्रमो देवि ! कथितः पूर्व-वत् प्रिये ।। १४७

केरले तु पुरश्चर्या दशाङ्गा परिकीर्तिता ।
अष्टाङ्गा तु पुरश्चर्या काश्मीरे कथिता मया ।। १४८
पञ्चाङ्गा तु पुरश्चर्या गौड-मार्गे प्रकीर्तिता ।
स्वप्न-लब्धे महेशानि ! अङ्गे पुरस्क्रिया मता ।। १४९
जपो होमो ब्राह्मणानां भोजनं त्रितयं मतम् ।
स्वप्न-लब्धे पुरश्चर्या दोष-द्वय-निवारणम् ।। १५०
जात-सूतकमादौ स्यात् तदन्ते मृत-सूतकम् ।
सूतक-द्वय-संयुक्तः स मन्त्रो नैव सिद्ध्यति ।। १५१

श्रीदेव्युवाच—

जात-सूतक-दोषस्य वारणं केन वा भवेत् ?

श्रीशिव उवाच—

..............................लिखेदष्ट-दलं शुभम् ।। १५२
तन्मध्ये कलशं स्थाप्य तत्र वै वट-पत्रकम् ।
वट-पत्रे कुंकुमेन लिखित्वा मन्त्रमेव तु ।। १५३
कलशं पुरतः स्थाप्य गुरोः प्राणान् निवेशयेत् ।
गुरोः सकाशाद् ग्रहणं जात-सूतक-वारणम् ।। १५४

श्रीदेव्युवाच—

मृत-सूतक-दोषो हि कीदृशः परमेश्वर ?

श्रीशिव उवाच—

बिना पुरस्क्रियां देवि ! मन्त्रो मृत इतीरितः ।। १५५
जीव-हीनो यथा देहः सर्व-कर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरण-हीनो हि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।। १५६
तस्मात् कुर्यात् पुरश्चर्यां मृत-दोष-प्रशान्तये ।
यो मन्त्रश्चेतना-युक्तः स मन्त्रः सिद्धि-दायकः ।। १५७
चैतन्यं तु पुरश्चर्या चैतन्यं गुरुरेव च ।
यन्त्र-चैतन्यकं देवि ! मन्त्र-चैतन्यकं तथा ।। १५८

गुरु-चैतन्यकं चैव चैतन्य-त्रितयं मतम् ।
चैतन्य-त्रय-हीनो यः स मन्त्रः सिद्धिदो न हि ॥ १५९
स्वप्न लब्धो धनी चेत् स्यात् तदा किं वा विधीयतां
मन्त्रानुसारतो देवि ! पुरश्चर्यां समाचरेत् ॥ १६०
तत्तच्चक्रानुसारेण होम-कर्म समाचरेत् ।
अनुक्त-होम-द्रव्ये तु तिलैर्होमः प्रकीर्तिताः ॥ १६१
घृतेन कथितो देवि ! यवेनापि तथैव हि ।
केवलं घृत-होमेन वरदाः सर्व-शक्तयः ॥ १६२
एवं पुरस्क्रियां कृत्वा सिद्धत्वं प्रविचार्य च ।
मण्डलान्तं परीक्ष्याऽथ ह्यथवा त्वयनान्तकम् ॥ १६३
वत्सरान्तं चावलोक्य सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ।
चमत्कारो न जायेत तदा शिष्यो वदेद् गुरुम् ॥ १६४
ऋणादिकं विचार्याऽथ शिष्याय प्रवदेच्छिवे !
अन्यथा विकलो भूयाच्छिष्य-पापं गुरौ भवेत् ॥ १६५
त्यागं न कुर्याद् देवेशि ! मन्त्र-त्यागे दरिद्रता ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १६६

श्रीदेव्युवाच—

भू-लोकस्थो महा-मन्त्रः स्वप्न-मध्ये समागतः ।
तत्र किं वा प्रकर्तव्यं किं तत्र मण्डलं भवेत् ॥ १६७

श्रीशिव उवाच—

पूर्वं संसाधितो मन्त्रो दत्तः केनाप्यसाधितः ।
स ऋणी वा धनी वाऽपि विचार्य साधयेत् प्रिये ॥ १६८
तत्तत्-कल्पोक्त-रीत्या तु पुरश्चरणमाचरेत् ।
पारम्पर्य-विहीनत्वात् पूर्व-संसाधनात् प्रिये ॥ १६९
स्वप्न-द्वारा तु सम्प्राप्तस्तं मन्त्रं साधयेत् प्रिये !

श्रीदेव्युवाच—

अरि-मन्त्रः स्वप्न-मध्ये प्राप्तश्चेत् किं विधीयतां ॥ १७०

पल्लवं योजयेद् वापि त्याज्यो वा यत्नतः शिवे !
पल्लवैः संयुतो यो हि मन्त्रान्तरमुपागतः ॥ १७१

मूल-प्रकृति-वद् देवि ! सर्वं प्रोक्तं मया तव ।
अस्त्र-प्रकरणाद् देवि ! ह्यस्त्र-मध्ये प्रयोजना ॥ १७२

मन्त्र-प्रकरणाद् देवि ! मन्त्र-मध्ये नियोजयेत् ।
मूल-प्रस्तार-मार्गेण दर्शनादि-क्रमेण तु ॥ १७३

षडाम्नाय-क्रमेणैव प्रस्तार-द्वारतः शिवे !
मन्त्र-मात्रे तथा विद्या-मात्रे प्रस्तार-साधना ॥ १७४

पूर्वमेब मया प्रोक्ता संख्यां शृणु महेश्वरि !
मन्त्र-विद्यादि-भेदैस्तु आम्नाय-दर्शनादिकैः ॥ १७५

पारे परार्ध-संख्याता मन्त्रा जाता महेश्वरि !
कलौ प्रस्तार-हीनत्वादङ्का एव प्रकीर्तिताः ॥ १७६

प्रस्तार-रूपं यज्ज्ञानं गुह्याद् गुह्यतरं शिवे !
आदिनाथो विजानाति नाहं जानामि पार्वति ॥ १७७

श्रीमहा-सुन्दरी विद्या काली कामकला तु सा ।
आदिनाथ-परशिवौ वीजांकुर-समानकौ ॥ १७८

तथा कामकला काली श्रीमहा-सुन्दरी प्रिये !
सर्वं संक्षेपतः प्रोक्तं रहस्यं शृणु पार्वति ॥ १७९

स्त्री-लब्धे देव-देवेशि ! श्रीमद्-देवी-परम्परा ।
स्वप्न-लब्धे महा-देवि ! दक्ष-मूर्ति-परम्परा ॥ १८०

पूजयेद् दक्षिणामूर्ति गुरुत्वेन महेश्वरि !
चतुष्कं पूजयेदादौ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १८१

षडाम्नायस्य मन्त्राणां प्रस्तार-गणना शिवे ।
षडाम्नायस्य प्रस्तारास्त्रिंशद्-वृन्द-निखर्वकाः ॥ १८२

पञ्चार्बुदेति मन्त्राः स्युः पूर्वाम्नाये महेश्वरि !
दक्षाम्नाये महेशानि ! नवत्यर्बुद-कोटिकम् ॥ १८३

पञ्च-खर्वेण संयुक्ता मन्त्राः प्रोक्ता महेश्वरि !
आम्नाये पश्चिमे देवि ! त्रिशदर्बुद-पद्मकाः ।। १८४
मन्त्राः प्रोक्ता महेशानि ! चोत्तरं शृणु सादरम् ।
पञ्चाशद् वै महा-पद्म षडर्बुद-त्रि-वृन्दकम् ।। १८५
ऊर्ध्वाम्नाये महा-देवि प्रस्तार-गणनां शृणु ।
अष्टार्बुदं कोटि-वृन्दं पञ्च-शङ्केति कीर्तिताः ।। १८६
पातालाम्नाय-गणनां शृणु यत्नेन साम्प्रतम् ।
कोटचर्बुदं त्रि-नवति वृन्दं पद्मेन संयुताः ।। १८७
मन्त्राः पाताल-प्रस्तार-मध्यस्थाः परमेश्वरि !
षडाम्नायस्य प्रस्ताराः प्रोक्ता यत्नेन शाङ्करि ।। १८८
न प्रकाश्या यत्र कुत्र गणना-मात्र-गोचराः ।
गणितं यो हि जानाति शिव-सिद्धान्तगं शिवे ।। १८९
अष्टाविंशति-सिद्धान्ते यस्य ज्ञानं भवेत् प्रिये !
श्रीसिद्धान्त-मते देवि ! प्रस्तार-ज्ञानमेव हि ।। १९०
प्रस्तारज्ञो महेशानि ! कलौ दुर्लभ एव हि ।
गणना कथिता देवि ! प्रकारः कथ्यते शृणु ।। १९१
एतत्-प्रस्तार-विज्ञानी शिव-रूपो न संशयः ।
प्रस्तारज्ञस्य मुखतो यद्यन्निर्याति तत् प्रिये ।। १९२
शिव-वाक्य-समं तत्तत् किमुत फल-कत्थनम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं प्रस्तारः कथ्यते परः ।। १९३

श्रीदेव्युवाच—

संसूचितं तु यत् पूर्वं कथ्यतामपि साम्प्रतम् ।
मन्त्रे वृत्तं महा-देव ! कथं ध्यायेद्धि तद् वद ।। १९४
होम-तर्पण-कार्याणि कथं कार्याणि तद् वद ।

श्रीशिव उवाच—

दल-मूलं तु यद् वृत्तं तदाधारस्थमीरितम् ।। १९५

दलोपरिस्थं वृत्तं हि शृणु त्वं प्राण-वल्लभे !
चन्द्र-सूर्याग्निभ-मयं व्यत्ययेन प्रकीर्तितम् ॥ १९६
एते प्रसिद्धा देवेशि ! न हि चन्द्राः प्रकीर्तिताः ।
देव्याः कोटचर्बुद-कला सदोदेति हि यत्र वै ॥ १९७
स चन्द्रः स च सूर्यश्च सोऽग्निर्मुख्य इतीरितः ।
षडन्वयं महेशानि ! ते च प्रोक्ता मया तव ॥ १९८
त्रि-रूपं वृत्त-त्रितयं तेजो-रूपं महेश्वरि !
विराट्-स्वरूपं यत् प्रोक्तं तदेव परिनिष्ठितम् ॥ १९९
अन्यत्र स्मरणीयं हि स-वृत्ति-ध्यान-कर्मणि ।
तेजः-पुञ्ज-निभां देवि ! परिखां संस्मरेत् सदा ॥ २००
उत्तरोत्तरतो देवि ! सगुण-ध्यान-कर्मणि ।
उत्तरोत्तरतोच्चत्वे चिन्त्यमाने महेश्वरि ॥ २०१
साम्मुख्यं चैव सर्वेषां वर्तते प्रिय-वादिनि !
यथोच्च-नीच-स्थानेषु सर्वा आवृत्तियो मताः ॥ २०२
इति कारणतो मुख्यो मेरु-प्रस्तार ईरितः ।
कैलासाख्यस्तथा देवि ! प्रस्तारः परिकीर्तितः ॥ २०३
रत्न-गर्भाख्य-प्रस्तारस्तृतीयः परिकीर्तितः ।
आद्य-प्रस्तारे देवेशि ! सर्वेषां दर्शनं समम् ॥ २०४
कैलासाख्ये महेशानि ! केषाञ्चिदन्तरायिताः ।
रत्न-गर्भाख्य-प्रस्तारे मुख्या मताः प्रकीर्तिताः ॥ २०५
आवृत्तयस्तु देवेशि ! त्रिधा भेदत्वमागताः ।
नोचेत् त्रिधात्वं किमर्थं विश्व-रूपत्वमेव तु ॥ २०६
सर्वत्र कीर्तितं पूर्वं सत्यमेव महेश्वरि !
अधिकार-वशाद् देवि ! तत्तत्-स्थान-समाश्रयः ॥ २०७
होम-कर्म शृणु प्राज्ञे ! पूर्व-प्रश्नोत्तरं तव ।
होमे स्वाहां प्रयुञ्जीत हृन्मन्त्रः परिकीर्तितः ॥ २०८

तथाभिषेके देवेशि ! हृन्मन्त्रः परिकीर्तितः ।
होमेऽग्नि-जाया या प्रोक्ता सा होमे परिनिष्ठिता ॥ २०९
मन्त्र-मध्ये यदा वह्नि-जाया द्वे वर्तते प्रभो !
मन्त्रान्ते चैव हृन्मन्त्रास्तथा वह्नि-प्रिया विभो ॥ २१०
मन्त्रेणैव तु निर्वाहो द्वितीया किं प्रयोज्यताम् ।
मन्त्रान्ते या वह्नि-जाया सा तु मन्त्र-स्वरूपिणी ॥ २११
होमाङ्गत्वे द्वितीया तु कीर्तिता वै मया तव ।
तथैव तर्पणं विद्धि हृन्मन्त्रस्तु द्वितीयकः ॥ २१२
एवं न कुरुते यस्तु स हीनायुर्भवेच्छिवे !
होम-कर्म तु कार्यं स्यान्मन्त्रे सिद्धे फलं भवेत् ॥ २१३
सैवाग्नि-जाया चेद्-होमे गृह्यते प्राण-वल्लभे !
स्वस्य प्रभुत्वमायाति मन्त्राः क्लिन्ना भवेत् प्रिये ॥ २१४
क्लिन्न-दोष-निवृत्यर्थं होमे स्वाहा मयेरिता ।
स्वानन्दोप-निवृत्यर्थं हृन्मन्त्रस्तर्पणे मतः ॥ २१५
मन्त्र-क्षोभे महेशानि ! हुं-फडादि तु वर्तते ।
तथापि पल्लवत्वेन पुनर्देयं महेश्वरि ॥ २१६
हृन्मन्त्रेण पुटीकारे क्रियमाणे महेश्वरि !
मन्त्र-क्षोभ-निवृत्तिस्तु सर्वथा जायते शिवे ॥ २१७
मन्त्र-मध्ये नतिर्देवि ! वर्तते यद्यपि प्रिये !
तथापि सम्पुटत्वेन पुनर्देया महेश्वरि ॥ २१८
हृदयादि षडस्त्राणां पुरश्चर्योच्यते शृणु ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २१९

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यं भावना-क्रमे ।

श्रीशिव उवाच—

स्वाहान्तः सर्व-कार्यार्थं फडन्तः क्रूर-कर्मणि ॥ २२०
नमोऽन्तो मारणादौ तु मन्त्र-जातेः फलं स्मृतम् ।
शक्तौ स्त्रीषु च मन्त्रेषु रुद्राक्षं वर्जयेच्छिवे ॥ २२१

अथ वक्ष्यामि देवेशि ! चतुर्णामैक्य-भावनाम् ।
गुरु-दैवत-मन्त्राणां स्वाभिन्नत्वेन भावना ॥ २२२

गुरु-तजः-स्वरूपं हि कूटमेकं विभावयेत् ।
देव-चैतन्य-कूटं हि तेजो-रूपं विभावयेत् ॥ २२३
मन्त्राक्षराणां चैतन्यं ज्वलत्-पर्वत-सन्निभम् ।
स्वात्म-चैतन्य-कूटं हि तथैव मेरु-तुल्यकम् ॥ २२४
एकीभूतं चतुस्तेजो ब्रह्माण्ड-व्यापकं शिवे !
कोटि-कालानल-प्रख्यं यम-सूर्य-सम-प्रभम् ॥ २२५

चन्द्रार्बुद-समं देवि ! विराड्-रूपं विभावयेत् ।
तेजः-पुञ्जं विभाव्याथ तत्र मूर्ति प्रकल्पयेत् ॥ २२६
तत्रेष्ट-देवतां रम्यां कोटि-कन्दर्प-सन्निभाम् ।
ध्यानोक्तां तां तु सन्ध्यात्वा जपं कुर्यात् समाहितः ॥ २२७

अथवा सकलं ध्यायेत् तेजः-पुञ्ज-निभं शिवे !
एकीभूतं च तत्-तेजः सदा ध्यायेन्महेश्वरि ॥ २२८
अथान्तर्मातृकां वक्ष्ये पारम्पर्य-क्रमागताम् ।
षड्-दलानां स्वरूपं तु पूर्वमेव प्रकीर्तितम् ॥ २२९
वर्णोच्चारादिकं सर्वं प्रोक्तं तुभ्यं मया शिवे !
न्यसनस्य क्रमं देवि ! विलास-सम्प्रदायके ॥ २३०

कथ्यते शृणु देवेशि ! रहस्याति-रहस्यकम् ।
ब्रह्माण्डात् कोट-पर्यन्तं शिव-शक्ति-मयं ध्रुवम् ॥ २३१
शिव-शक्ति-मये मार्गे परा-प्रासाद-गोचरे ।
श्रीप्रासाद-परापि स्याद् विन्दु-सर्गान्वितापि सा ॥ २३२

हंस-शक्ति-मनु-युतं विन्दु-नादान्वितं शिवे !
श्रीप्रासाद-परा-मन्त्रः कीर्तितः परमेश्वरि ॥ २३३
हाद्यमादौ समुद्धृत्य मध्येऽर्णं विन्दु-संयुतम् ।
साद्यमन्ते समुच्चार्यं न्यसनीयं क्रमेण तु ॥ २३४

प्रत्यर्णं विन्यसेद् देवि ! योगं बाह्यमुपाचरेत् ।
साद्यं हाद्यं साद्य-हाद्ये वर्णादौ तु समुच्चरेत् ॥ २३५
ततो वर्णं समुच्चार्य न्यसनीयं महेश्वरि !
हाद्येन केवलेनैव सम्पुटीकृत्य मन्त्र-वित् ॥ २३६
साद्येन केवलेनैव सम्पुटीकृत्य मन्त्र-वित् !
साद्य-योगं ततो वर्णं न्यसेद् देवि ! यथा-क्रमात् ॥ २३७
हाद्य-योगं ततो वर्णं न्यसेद् देवि ! यथा-क्रमात् ।
श्री-बीजं तु समुद्धृत्य श्रीप्रासाद-परा ततः ॥ २३८
पुनः श्रीबीजमुद्धृत्य ततोऽर्णं तु समुच्चरेत् ।
अनेन सम्पुटीकृत्य न्यसेत् तत्तत्-स्थले शिवे ॥ २३९
श्रीँ स्त्रीँ ततः श्रीँ वै वर्णं ततः श्रीँ तु समुद्धरेत् ।
पुनः श्री-बीजमुद्धृत्य हसौं श्रीँ तु समुच्चरेत् ॥ २४०
एवं सम्पुट-योगेन न्यसनीयं महेश्वरि !
श्री-बीज-पुटितं हाद्यं ततो वर्णं समुच्चरेत् ॥ २४१
आदौ बीजं ततो वर्णं न्यसेद् तत्तत्-स्थले प्रिये !
श्री-बीजं तु ततः साद्यं पुनः श्री-बीजमुच्चरेत् ॥ २४२
अनेन सम्पुटीकृत्य न्यसेद् यत्नेन शाम्भवि !
श्री-बीज-पुटितं साद्यं ततो वर्णं समुच्चरेत् ॥ २४३
अनेन क्रम-योगेन सुन्दरो सुप्रसीदति ।
साद्यं श्री-बीज-पुटितं ततो वर्णं महेश्वरि ॥ २४४
हाद्यं श्री-बीज-पुटितं वर्णान्ते तु समुच्चरेत् ।
एवं विन्यस्य यत्नेन साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ २४५
श्रीबीज-पुटितं हाद्यं साद्यं श्री।पुटितं तथा ।
ततो वर्णं महेशानि ! पूर्व-बीजानि चोच्चरेत् ॥ २४६
एवं हि सम्पुटीकृत्य सद्योगं समुपाचरेत् ।
साद्यं श्री-बीज-पुटितं हाद्यं श्री-बीज-पुटितं ततः ॥ २४७

ततो वर्णं पुनर्बीजं न्यसेत् साधक-सत्तमः ।
योगं कृत्वाऽथवा देवि ! न्यसनीयं महेश्वरि ॥ २४८
श्री-बीज-पुटितं हाद्यं साद्यं च तत्पुटीकृतम् ।
वर्णं तत्पुटितं कृत्वा योगं च समुपाचरेत् ॥ २४९
साद्यं श्री-बीज-पुटितं हाद्यं च तत्पुटीकृतम् ।
एतैस्तु पुटितं वर्णं योगं च समुपाचरेत् ॥ २५०
हाद्यं श्री-पुटितं देवि ! साद्यं श्री-पुटितं तथा ।
पुनर्हाद्यं श्री-पुटितं ततो वर्णं समुच्चरेत् ॥ २५१
एतैस्तु सम्पुटीकृत्य पुनर्योगं समाचरेत् ।
साद्यं श्री-पुटितं देवि ! हाद्यं श्री-पुटितं तथा ॥ २५२
पुनः साद्यं श्री-पुटितं ततो वर्णं तु पूर्व-वत् ।
हाद्यं श्री-पुटितं देवि ! साद्यं श्री-योग-युक्तकम् ॥ २५३
पुनर्हाद्यं श्री-पुटितं वर्णं तैस्तु पुटीकृतम् ।
आदौ योगं च वा कृत्वा ततः साद्यं तु हाद्य-वत् ॥ २५४
हाद्यं श्री-पुटितं देवि ! साद्यं श्री-पुटितं तथा ।
पुनर्हाद्यं श्री-पुटितं हसौऽन्तैस्तु पुटीकृतम् ॥ २५५
योगं कृत्वाथवा देवि ! हसौ श्री-पुटितं च वा ।
एतैस्तु पुटितं वर्णं हसौँ श्री-पुटितं च वा ॥ २५६
श्री-हसौमिति मध्ये वा हसौँ श्री-मिति वा शिवे !
हाद्यं श्री-पुटितं देवि ! साद्यं श्री-पुटितं तथा ॥ २५७
पुनर्हाद्यं श्री-पुटितं हसौऽन्तैस्तु पुटीकृतम् ।
योगं कृत्वाथवा देवि ! स्हौं श्री-पुटितं च वा ॥ २५८
एतैस्तु पुटितं वर्णं योगं वा पूर्ववच्छिवे !
साद्यं श्री-पुटितं देवि ! हाद्यं श्री-पुटितं तथा ॥ २५९
पुनः साद्यं श्री-पुटितं स्हौऽन्तैस्तु पुटीकृतम् ।
एतैस्तु पुटितं वर्णं स्हौं श्री-पुटितं च वा ॥ २६०
श्रीँ स्हौमिति वा मध्ये स्हौं श्री मिति वा प्रिये !
विन्दु-सर्गान्वितं कृत्वा न्यसनीयं महेश्वरि ॥ २६१

हाद्यं साद्यं महेशानि ! श्री-युतं पुटितं च वा ।
पूर्वोक्तैः पुटितं ह्येतत् युक्तं वा परमेश्वरि ।। २६२
उत्तरोत्तर-योगेन पुटितं संयुतं च वा ।
हाद्य-साद्य-क्रमेणैव पारायण-क्रमं विदुः ।। २६३
पारायण-क्रमाः सर्वाः प्रोक्ताः पूर्वं मया शिवे !
अयं क्रमो महेशानि ! देवानामपि दुर्लभः ।। २६४
नाख्येयो यत्र कुत्रापि त्वन्यथा शापमाप्नुयात् ।
अनन्त-पादुकाख्योऽयं क्रमः प्रोक्तो मया शिवे ।। २६५
अन्य-पारायणैर्देवि ! सूक्ष्म-कालेन जायते ।
एवं षट्-चक्र-भेदेषु पारायणमुदीरितम् ।। २६६
मेधा-दीक्षा यस्य भवेत् तस्यात्रैवाधिकारिता ।
मेधा-दीक्षां विना देवि ! चक्र-पारायणं चरेत् ।। २६७
स च मृत्युमवाप्नुयात् रौरवं नरकं व्रजेत् ।
पर-काय-प्रवेशादि यस्य हस्ते विराजते ।। २६८
तस्य मेधा-दीक्षणं हि गदितं तु मया शिवे !
मया पूर्वं महेशानि ! षड्-वारं तु कृतं च वै ।। २६९
अहं किञ्चित्तु जानामि तवाग्रे तु प्रकाशितम् ।
पूर्णं जानाति देवेशि ! सुन्दरी पर-देवता ।। २७०
नान्यो जानाति देवेशि ! संक्षेपाद् गदितं मया !
पूर्णाभिषेक-युक्तो हि नाम-पारायणं तथा ।। २७१
मन्त्र-पारायणं देवि ! नाडी-पारायणादिकम् ।
मेधा-दीक्षा-समायुक्तश्चक्र-पारायणं चरेत् ।। २७२
अल्पायुष्यादधर्मत्वात् पारुष्य-जल्पनात् शिवे !
कलौ देवेशि ! नान्येषामधिकारो मयेरितः ।। २७३
बालाधिकारी यो देवि ! तस्य विद्याधिकारिता ।
विद्याधिकारे सम्पन्ने षोडश्यामधिकारवान् ।। २७४

षोढा-विद्यादि-सम्पन्नः परा-विद्याधिकारवान् ।
पराधिकार-संयुक्तः परा-प्रासाद-वान् भवेत् ।। २७५

श्रीप्रासाद-परा-युक्तो निर्वाणाधिपतिर्भवेत् ।
निर्वाण-दीक्षा-संयुक्तः षडन्वय-विधौ शिवे ।। २७६

अधिकारी भवेत् सो हि तत्त्वं शृणु महेश्वरि !
षडन्वय-समायुक्तो मेधा-दीक्षाधिकार-वान् ।। २७७

षडन्वयान्तगं कृत्वा मेधा-दीक्षणमाचरेत् ।
मेधा-दीक्षण-युक्तश्चेत् चक्र-पारायणं चरेत् ।। २७८

चक्र-पारायणे संख्या सुन्दरी-चरणान्तकी ।
वहिः-पारायणे संख्या गदिता तृतयेऽपि च ।। २७९

तथैव कालिकायास्तु प्रोक्ता श्रीचरणान्तकी ।
यदैव दर्शनं जातं तदैव तु समापनम् ।। २८०

बहिरन्तरयोर्भेदस्वेतावद् वर्तते शिवे !
प्रस्तार-षोडशान्तं हि कलौ पारायणं चरेत् ।। २८१

अत्र पारायणं नाम न्यसनं परमेश्वरि !
हठात्-तैरपशुर्यस्तु करोति परमेश्वरि ।। २८२

तस्य नाशो भवेद् देवि ! देवता-शापमाप्नुयात् ।
मेधा-दीक्षा-समायुक्तः षोडशोत्तरगं चरेत् ।। २८३

प्रस्तार-क्रम-योगेन ज्ञातव्यं परमेश्वरि !
बाला-दीक्षा-समायुक्तश्चन्द्र-प्रस्तार-युक् न्यसेत् ।। २८४

विद्या-दीक्षा-समायुक्तः साधनाद्यन्तगं न्यसेत् ।
सम्प्रदाय-क्रमेणैव विन्यसेत् साधकोत्तमः ।। २८५

पूर्णाभिषेक-युक्तो हि वह्नि-प्रस्तार-सम्पुटान् ।
परा-दीक्षण-युक्तो हि भूत-प्रस्तार-सम्पुटान् ।। २८६

श्रीप्रासाद-परा-युक्तो मुनि-प्रस्तार-सम्पुटान् ।
निर्वाण-दीक्षा-संयुक्तो नन्द-प्रस्तार-सम्पुटान् ।। २८७

षडन्वय-समायुक्तः कला-प्रस्तार-सम्पुटान् ।
योगं त्वथ प्रकुर्वीत ह्यादावन्तेऽपि पार्वति ॥ २८८
मध्ये वर्णं तु कृत्वा च वर्ण-सम्पुटितं न्यसेत् ।
पूर्णाभिषेक-युक्तो हि षडन्वय-समः शिवे ॥ २८९
षडन्वयानां यत् कर्म तदेतस्यापि कीर्तितम् ।
षडन्वयोत्तरं देवि ! मेधा-दीक्षां समाचरेत् ॥ २९०
मेधा-दीक्षण-संयुक्तः प्रस्तार-षोडशोत्तरम् ।
न्यास-योगेन देवेशि ! चक्र-पारायणं चरेत् ॥ २९१
आकर्षणं त्रिलोकानां वश्याज्ञा-सिद्धिरेव च ।
पर-काय-प्रवेशश्च गुटिका-सिद्धिरेव च ॥ २९२
वायु-स्तम्भस्तु वेताल-सिद्धिस्तद्धस्त-गोचराः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २९३

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव महा-देव ! संसार-स्थिति-कारक !
पूर्वं संसूचितं यन्मे तन्मे कथय शङ्कर ॥ २९४
किमेतावन्महा-देव ! ममापि गोपितं च यत् ।

श्रीशिव उवाच—

महा-देवि ! पराराध्ये ! सर्व-कारण-विग्रहे ॥ २९५
प्राणायाम-रहस्यं हि कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
प्राणायामः पञ्चधा स्यात् तत्क्रमं शृणु यत्नतः ॥ २९६
कलाभिः पूरकं कुर्यान्महतीभिश्च कुम्भकम् ।
रेचकं च तदर्धाभिः पुनरेतत् त्रयं चरेत् ॥ २९७
त्रिवारं त्रितयं कुर्यात् प्राणायामः प्रकीर्तितः ।
क्रमोत्क्रमेण देवेशि ! द्वितीयः परिकीर्तितः ॥ २९८
कुम्भकान्तो महेशानि ! यतीनां वाम-चारिणाम् ।
रेचकं वा पूरकं वा कृत्वा द्विविध ईरितः ॥ २९९
अवान्तराख्य-भेदो हि कथितस्ते मया तव ।
तृतीयस्तु महेशानि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ३००

कला-वृद्धि तदर्धं च कृत्वादौ परमेश्वरि !
अन्यदादि समारभ्य क्रमेणानेन कारयेत् ।। ३०१
पूर्व-वत्तु तृतीयं स्यादेवं वार-त्रयं चरेत् ।
कुम्भकाद्यं तद् द्वयान्ते प्राणायाम-द्वयं भवेत् ।। ३०२
पूर्वोक्त-क्रम-योगेन तदन्यः परिकीर्तितः ।
द्वितीयाख्य-क्रमेणैव द्वितीयः परिकीर्तितः ।। ३०३
तृतीयाख्य-क्रमेणैव तृतीयः परिनिष्ठितः ।
माला-श्रृङ्खलिका-योगात् तृतीयः परिकीर्तितः ।। ३०४
माला-श्रृङ्खलिका-योग-निरुक्तिं श्रृणु सादरम् ।
आद्यादन्तं चरेद् देवि ! ह्यन्तादाद्यं समाचरेत् ।। ३०५
पुनराद्यं तथान्तं च प्राणायामः कला-पतिः ।
अत्र पूर्व-त्रयं कृत्वा प्रस्तारः परिकीर्तितः ।। ३०६
पुनरन्तं तथाद्यं च यावत् तृतयकं भवेत् ।
कला-श्रृङ्खलिकाख्यस्तु प्राणायामः प्रकीर्तितः ।। ३०७
कला-वसुर्वेद-संख्य-प्राणायामस्तथापरः ।
महा-मन्त्र-विधौ देवि ! कीर्तितस्ते मया तव ।। ३०८
अष्टौ वेद-द्वितयकं ततोऽधिक्ये प्रकीर्तिताः ।
ततोऽधिक्ये महेशानि ! वेद-नेत्र-शशि-क्रमात् ।। ३०९
प्रस्ताराः कथिता देवि ! श्रृणु वर्ण-क्रमेण तु ।
कुम्भकाद्यं समारभ्य द्विविधोऽयं प्रकीर्तितः ।। ३१०
पूर्वोक्त-वह्नि-भेदेन भेद-बाहुल्यमीरितम् ।
कला-श्रृङ्खलिका-योगात् प्रस्तारः पूर्व-सूचिताः ।। ३११
वर्ण-क्रमो महेशानि ! कथ्यते श्रृणु साम्प्रतम् ।
स्वरैः पूरकमाचर्य वर्णैः कुम्भककं भवेत् ।। ३१२
आद्या तु नासिका प्रोक्ता चतुस्त्रिशतिकं पुनः ।
कृत्वा तु कुम्भकं देवि ! द्विरावृत्या स्वरैः शिवे ।। ३१३
रेचकं कारयेद् देवि ! प्राणायाम-त्रयं शिवे !
पूर्वोक्त-क्रम-योगेन प्रस्तार-क्रम ईरितः ।। ३१४

केवलेन स्वरेणैव कला-षट्-वेद-संयुतम् ।
अत्र पूर्वोक्त-योगेन प्रस्तार-भेद-भाजनम् ॥ ३१५

ईडया कर्षयेद् वायुर्बाह्य-षोडश-मात्रया ।
धारयेत् पूरकं योगी चतुःषष्टया तु मात्रया ॥ ३१६

सुषुम्णा-मध्यगं सम्यक् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद् योग-वित्तमः ॥ ३१७

प्राणायाममिमं प्राहुर्योग-शास्त्र-विशारदाः ।
भूयो भूयः क्रमात् तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ॥ ३१८

मात्रा-वृद्धि-क्रमेणैव सम्यक् द्वादश षोडश ।
जप-ध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ॥ ३१९

तदपेतं विगर्भं तु प्राणायामं परे विदुः ।
क्रमादभ्यसतां पुंसां देहे स्वेद-भ्रमोद्गमः ॥ ३२०

अगर्भं तु महेशानि ! एतदन्यं शृणु प्रिये !
मध्यमा कम्प-संयुक्तो भूमि-त्यागोऽपरो मतः ॥ ३२१

मध्यमस्तु ससन्धिः स्यात् परः साध्याख्यको भवेत् ।
पञ्चधा कथितो देवि ! प्राणायाम-क्रमो मया ॥ ३२२

प्राणायाम-जपासक्तः सिद्ध-योगीश्वरो भवेत् ।
प्राणायाम-जपेनैव किं न सिद्ध्यति भू-तले ॥ ३२३

पल-नाडी-मुहूर्ताख्यः तद् द्वयं प्रहर-क्रमात् ।
दिवाहोरात्र-योगेन साधयेत् स्थिर-मानसः ॥ ३२४

एवं साधयतः पुंसो योगाः सर्वेऽपि हस्तगाः ।
प्राणायाम-जपो देवि ! मुख्यत्वेन प्रकीर्तितः ॥ ३२५

तदभावे महेशानि ! प्राणायामं च वा चरेत् ।
भूत-शुद्धि-विधौ योज्यः शोषणादि-विधौ शिवे ॥ ३२६

प्राणायाम-क्रमेणैव त्रिः सकृद् वा समाचरेत् ।
नन्द-संख्या यदा भूयात् प्राणायामस्तदा चरेत् ॥ ३२७

केरलाख्य-क्रमे देवि ! न च शोषणमीरितम् ।
काश्मीराख्य-क्रमे देवि ! शोषणादि समाचरेत् ।। ३२८
गौडः काश्मीर-तुल्यः स्याच्चैतन्यस्तु चतुर्थकः ।
प्राणायाम-क्रमो देवि ! भूत-शुद्धि-क्रमोऽपि च ।। ३२९
यथा-योगं योजनीयं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

चतुर्थः पटलः

मन्त्र-प्रस्तार-निर्णयः

श्रीदेव्युवाच—

पूर्वं संसूचितं यन्मे यन्त्र-प्रस्तार-निर्णयम् ।
तन्मे कथय देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ १

श्रीशिव उवाच—

गोप्याद् गोप्यतरं देवि ! स्व-योनिरिव पार्वति !
तर्हि तत् ते वदाम्यत्र न वक्तव्यं त्वया शिवे ॥ २
चत्वारि शिव-चक्राणि शक्ति-चक्राणि पञ्च च ।
सामरस्याद् भवेच्चक्रं श्रीचक्रं सर्व-रूपकम् ॥ ३
विन्दोर्मन्वस्र-पर्यन्तं शक्ति-चक्रं प्रकीर्तितम् ।
तदुत्तरं महेशानि ! द्वारान्तं शिव-चक्रकम् ॥ ४
शुद्ध-चक्रमिदं प्रोक्तमिदमेव त्रिधा भवेत् ।
भूः कैलासस्तथा मेरु-प्रस्तारत्वेन पार्वति ॥ ५
भू-प्रस्तारो द्विधा देवि ! पातालोर्ध्व-क्रमेण तु ।
कैलासाख्यस्तु प्रस्तारो द्विविधः परिकीर्तितः ॥ ६
अर्ध-कैलास-संज्ञस्तु पूर्ण-कैलासकस्तथा ।
तथैव मेरु-प्रस्तारः कीर्तितस्तु मया तव ॥ ७
सृष्टि-स्थित्युपसंहार-क्रमादष्टादशैव तु ।
सृष्टि-स्थित्युपसंहार-बीज-लेख-क्रमेण तु ॥ ८
ऋत्वग्निसंख्याः प्रस्तारास्त्वङ्कानां वामतो गतिः ।
नित्यायाश्चैव तादात्म्यं प्रस्तारे मेरु-संज्ञके ॥ ९
मातृकायाश्च तादात्म्यं कैलासाख्यं प्रकीर्तितम् ।
वाग्-देवतायास्तादात्म्यं भू-प्रस्तारे प्रकीर्तितम् ॥ १०
इमं यन्त्रं तु षोडश्यां कीर्तितं तु मया तव ।
शुद्धमष्टादशाख्यं हि मातृका-लेखन-क्रमात् ॥ ११

सृष्टि-स्थित्युपसंहारे बाण-वेद-विपर्ययः ।
अथवा तु दलाकारं सिद्धं यन्त्रं तु कारयेत् ।। १२
प्रस्तारैः पूर्व-सम्प्रोक्तैः सृष्टि-स्थिति-लयादिकैः ।
एवं यन्त्रं तु निःशप्तं कीर्तितं तु मया तव ।। १३
नव संख्या-विधैर्भेदैर्ललितायां महेश्वरि !
प्रस्तारा बहवो देवि ! जायन्ते तानहं ब्रुवे ।। १४
कादि-हादि-मतेनैव द्विधात्वं परिकीर्तितम् ।
षड्-भेदाः कादि-षट्के तु काम-राजादिकेऽपि षट् ।। १५
एतद् विबोधनं देवि ! कथ्यते शृणु सत्वरम् ।
चतुर्दशारं देवेशि ! काम-राजे तु भिद्यते ।। १६
लोपादि-षट्के शुद्धेऽन्ये द्वितीयं परिभिद्यते ।
कादि-षट्के तु हाद्ये च दशारे भेद-भाजनम् ।। १७
लोपादि-षट्के नेत्राख्ये दशारे भेद-भाजनम् ।
एवं मिलित्वा देवेशि ! प्रस्तारा द्वादशेरिताः ।। १८
प्रत्येकं तु महेशानि ! पूर्व-प्रस्तार-भेदतः ।
सृष्टि-स्थित्युपसंहार-लेखन-क्रमतः शिवे ।। १९
सृष्टि - स्थित्युपसंहार-क्रम-योगेन पार्वति !
दलाकार-क्रमेणैव प्रत्येकं भेद-भाजनम् ।। २०
एकैक-पत्रे देवेशि ! शतमष्टोत्तरं शिवे !
त्रयोदश-प्रभेदैस्तु प्रस्तारः परिकीर्तितः ।। २१
चन्द्र-चन्द्र-षडङ्कं च मुनि-ऋत्वङ्क-संख्यकम् ।
यन्त्राणि चोद्धृतान्यत्र प्रस्तार-क्रम-योगतः ।। २२
रहस्याति-रहस्यं हि तव स्नेहादिहोदितम् ।
यस्य स्मरण-मात्रेण साक्षाद् रुद्रो भविष्यति ।। २३
त्वया सङ्कथिता देवि ! प्रस्ताराः पूर्व-सूचिताः ।
ते सर्वे कथिता देवि ! गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।। २४
एतदज्ञानतो देवि ! ह्यथवा ज्ञान-मोहितः ।
यत्र कुत्र वसेद् देवि ! यत्र कुत्र प्रपूजकः ।। २५

स दरिद्रः प्रभवति नात्र कार्या विचारणा ।
श्रीविद्योपासका यो हि देवेन्द्र इव चापरः ॥ २६
देवेन्द्रस्य महेशानि ! सिद्ध-लक्ष्मीः प्रकीर्तिता ।
श्रीविद्योपासकस्याथ लक्ष्मी-नाम शृणु प्रिये ॥ २७
सर्व-सम्भोग-साम्राज्य-लक्ष्मीः तस्य गृहे स्थिता ।
स दरिद्रः कथं देवि ! श्रीमद्-ब्रह्माण्ड-नायकः ॥ २८
एतदज्ञानतो देवि ! ज्ञानतोऽपि महेश्वरि !
दरिद्रत्वं महेशानि ! भवत्येव न संशयः ॥ २९
स दारिद्र्यमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
ज्ञात्वाऽपि देव-देवेशि ! यत्र कुत्र वदेद् यदि ॥ ३०
स दारिद्र्यमवाप्यान्ते रौरवं नरकं व्रजेत् ।
पूर्णाभिषेके न ब्रुवन्नाम-पारायण-क्रमे ॥ ३१
मन्त्र-पारायणे देवि ! चक्र-पारायणे तथा ।
मेधा-दीक्षान्तगा दीक्षा यस्य हस्ते विराजते ॥ ३२
तस्याधिकारो देवेशि ! यन्त्र-प्रस्तार-निर्णये ।
अधिकारो न चान्यस्य यः कुर्यात् स तु नारकी ॥ ३३
दारिद्र्यान्म्रियते जन्तुः दारिद्र्ये तु निमज्जति ।
दारिद्र्य-हरणं देवि ! योऽभिवांच्छति सर्वदा ॥ ३४
स दीक्षितः पुरा भूयात् पश्चात् प्रस्तार-दर्शकः ।
एतज्जानाति यः सम्यक् स शिवो नात्र संशयः ॥ ३५
शिवः सत्यं शिवः सत्यं शिवः सत्यं न संशयः ।
शिव एव परो देवि ! सर्वथा पूजयेच्च तम् ॥ ३६
तस्य पूजन-मात्रेण तुल्यो लक्ष्मी-पतिर्भवेत् ।
किं बहूक्तेन देवेशि ! कादि-हादि-मतात्मकम् ॥ ३७
गोपनीयं महेशानि ! स्व-योनिरपरा यथा ।
राज्यं दद्यात् शिरो दद्यात् स्त्रियं दद्यान्महेश्वरि ॥ ३८
न तु दद्यादिदं शास्त्रं सर्वथाऽपि प्रगोपयेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९

यन्त्र-प्रस्तार-नामानं स्तवं यः पठति प्रिये !
सर्व-सिद्धीश्वरः साक्षान्महा-देव इवापरः ॥ ४०
महेन्द्र-जालमिन्द्रादि-जालानां रचनां तथा ।
पाताल-खेचरी-सिद्धिर्गुटिकाञ्जनमेव च ॥ ४१
यक्षिणी-खड्ग-सिद्धिस्तु तस्य हस्त-प्रवेशिका ।
ब्रह्माण्ड-गोलके या च या काश्चिज्जगती-तले ॥ ४२
समस्ताः सिद्धयस्तस्य भवन्त्येव न संशयः ।
प्रस्तार-स्मरणादेव ये ये तस्य हि सिद्धयः ॥ ४३
स्वयमायान्ति पुरतो रचनायास्तु का कथा ।
यन्त्र-पारायणं नाम स्तवं देवि ! प्रकीर्तितम् ॥ ४४
नाडी-पारायणं नाम नाम-पारायणं तथा ।
मन्त्र-पारायणं नाम चक्र-पारायणं तथा ॥ ४५
यन्त्र-पारायणं देवि ! प्रत्यहं कारयेत् प्रिये !
एकावर्तन-मात्रेण त्रैलोक्य-विजयं भवेत् ॥ ४६
आवर्तन-द्वये श्रीशः त्रिरावर्तन-मात्रतः ।
त्रिगुणात्मा भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ ४७
पञ्चावर्तन-मात्रेण राज-राजेश्वरो भवेत् ।
यावद्धि दर्शनं भूयात् तावद्धि परमेश्वरि ॥ ४८
अर्णवस्य च मर्यादा कीर्तिता परमेश्वरि !
यं यं कामं विचिन्त्याथ स्तोत्रमेतत् पठेत् सदा ॥ ४९
तं तं काममवाप्यान्ते तत्तद्-रूपो भवेन्नरः ।
किं बहूक्तेन देवेशि ! राज-राजेश्वरी तु सा ॥ ५०
यथा छिन्ना तथा काली तथैव सुन्दरी परा ।
तथैव तारा सन्दिष्टा चतुर्णां न हि भिन्नता ॥ ५१
कालिकायामपि तथा यन्त्र-पारायणं चरेत् ।
कादि-हादि-मतत्वेन द्विधात्वं परिकीर्तितम् ॥ ५२
एतज्-ज्ञान-युतं दृष्ट्वा दण्ड-वत् प्रणिपत्य च ।
देव-वत् पूजनं कुर्यादन्यथा न हि सिद्ध्यति ॥ ५३

यन्त्र-प्रस्तार-राजानं यन्त्र-पारायणं परम् ।
नाम ख्यातं महेशानि ! शिव-शक्त्यात्मकं तथा ॥ ५४
शिव-शक्त्यात्मकं देवि ! यत्-किञ्चिज्जगती-तले ।
तस्माच्छक्त्यात्मकं देवि ! जगत् स्थावर-जङ्गमं ॥ ५५
सर्वस्वं तु मयाख्यातं किमितोऽपि विशेषणम् ।
भेद-प्रस्तार-सिद्ध्यर्थमङ्कान् शृणु महेश्वरि ॥ ५६
रात्र्यष्ट-कुणपाख्यं हि शक्ति-चिह्नाभिधस्ततः ।
विष्णु-केतु-गजावर्त-क्रमेण परिकीर्तितः ॥ ५७
प्रथमस्य दशारस्य प्रोक्तो रेखा-विनिर्णयः ।
एवं पञ्च चतुर्भेदाः सर्व-सिद्धि-प्रदायकाः ॥ ५८
द्वितीयस्य दशारस्य रेखाङ्कानां विनिर्णयः ।
ऋत्वष्ट-गणमारान्त्यादर्थ-वीरादिभिस्ततः ॥ ५९
नाथ-मार्ग-क्रमेणैव दिन-वेधेन सिद्ध्यति ।
रश्मि-द्वन्द्वं रसो वाणो चैवं रेखां विभेदयेत् ॥ ६०
एवं पञ्च प्रभेदाः स्युर्मन्वस्त्रे शृणु साम्प्रतम् ।
नित्या वाणी मातृकाप्तिः संख्यावर्तेन वै भवेत् ॥ ६१
द्वितीयस्य महेशानि ! गुण-वाक्-रस-चन्द्रता ।
कला-योजन-मार्गेण द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥ ६२
इति संक्षेपतः प्रोक्तं फल-सङ्कथनं शिवे !
जिह्वा-कोटि-सहस्रैस्तु वक्त्र-कोटि-शतैरपि ॥ ६३
महिमां वर्णितुं चास्य न शक्नोमि महेश्वरि !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं तत्त्व-न्यास-क्रमं शृणु ॥ ६४
आत्म-विद्या-शिवैस्तत्त्वैस्तत्त्व-न्यासं समाचरेत् ।
पादादि-नाभि-पर्यन्तमात्म-तत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥ ६५
नाभ्यादि-हृदयान्तं हि विद्या-तत्त्वं प्रकीर्तितम् ।
हृदयाद् विन्दु-पर्यन्तं शिव-तत्त्वं प्रकीर्तितम् ॥ ६६
सर्व-मन्त्रं समुच्चार्य सर्वाङ्गे व्यापनं शिवे !
सर्व-तत्त्वमिदं प्रोक्तं सर्व-देवत्व-कारकम् ॥ ६७

तिथि-तत्त्वानि देवेशि ! आत्म-तत्त्वे भवन्ति हि ।
पञ्च-विंशति-तत्त्वानि विद्या-तत्त्वे भवन्ति हि ॥ ६८
षट्-त्रिंशच्छैव-तत्त्वानि शिवे-तत्त्वे भवन्ति हि ।
अथ पञ्चाशत् तत्त्वानि सर्व-तत्त्वे भवन्ति हि ॥ ६९
स्थापने वेद-तत्त्वानि शोधने तत्त्व-पञ्चकम् ।
भूत-शुद्धौ त्रिःक्रमेण आचामेच्च त्रि-तत्त्वतः ॥ ७०
सर्व-मन्त्रे महेशानि ! आचामेत् तत्व-वैदिकीम् ।
बीज-मध्य-गतं नाम किं वा कुर्याद्धि संकुलम् ॥ ७१
किं वा नाम्ना समाक्रान्ते मन्त्रे तत्त्व-प्रकल्पना ।
एकाक्षरे द्व्यक्षरादौ तत्त्वास्पद-विवर्जिते ॥ ७२
तत्त्व-न्यासोदितं सिद्धं नान्यत्र परिकल्पयेत् ।
सिद्ध-विद्या-विधौ देवि ! श्रीविद्यायां महेश्वरि ॥ ७३
सर्व-भेदाख्य-तत्त्वानि त्रि-तत्त्वे निवसन्ति वै ।
त्रि-तत्त्वस्य परिज्ञानी शक्ति-पाताधिपो भवेत् ॥ ७४
आलापाद् दर्शनात् संस्पर्शाद् दानाद्यनुग्रहादपि ।
तत्-स्पृष्ट-वस्तु-संस्पर्शान्मन्त्र-दानाज्जपादपि ॥ ७५
जिह्वायां मन्त्र-संलेखात् ताम्बूलोच्छिष्टभक्षणात् ।
गण्डूषाद् वस्त्र-जलतस्त्वभिमन्त्रण-योगतः ॥ ७६
तन्नाम-स्मरणात् क्रोश-शतान्ते स्मरणादपि ।
यन्निःसृतं तत् तथैव शापानुग्रहणे शिवे ॥ ७७
सर्व-शास्त्र-रहस्यज्ञस्तथा श्रुति-धरो भवेत् ।
अष्टादश-विधौ देवि ! शक्ति-पातो भवेच्छिवे ॥ ७८
अथवा सिद्धि-बाहुल्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
तत्र चेत् सिद्धि-बाहुल्यमिच्छा-शक्ति-परो भवेत् ॥ ७९
शक्ति-संसर्ग-मात्रेण सर्वं पूतं भवेच्छिवे !
शक्तिं विना न वै मुक्तिः शक्तिर्मोक्ष-प्रदा मता ॥ ८०

पञ्चमः पटलः

स्नान-भेद-निर्णयः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं निर्णयं महत् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ १
स्नान-मुख्याः क्रियाः सर्वाः स्नानं च दैवते भवेत् ।
प्रातः-काले च मध्याह्ने सायाह्ने स्तोत्र-पाठके ॥ २
यदा यदा मनो-ग्लानिस्तदैव स्नानमाचरेत् ।
............ब्रह्म-योगे म्लेच्छ-स्पर्शे तथैव च ॥ ३
भाषणे पतितस्याथ मन्त्र-स्नानं समाचरेत् ।
श्रीविद्यायां चतुः-कालं कालिकायां त्रि-कालकम् ॥ ४
यदैव मनसो ग्लानिस्तदैव स्नानमाचरेत् ।
विद्योच्चारं तु यः कुर्यादस्नातः कृत-भोजनः ॥ ५
तस्य विद्या भवेन्नष्टा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
अशुचिः सन् महेशानि ! विद्योच्चारं तु यश्चरेत् ॥ ६
तस्य नाशो भवेद् देवि ! विद्या दग्धा भवेद् ध्रुवम् ।
स्नान-कालश्च सम्प्रोक्ताः स्नान-भेदान् शृणु प्रिये ॥ ७
स्नानं पञ्च-विधं प्रोक्तं येन देवी-मयो भवेत् ।
वारुणं नाभसं चैव तृतीयं भस्मजं स्मृतम् ॥ ८
चतुर्थं तैजसं देवि ! पञ्चमं दैवतं भवेत् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥ ९
एते पञ्च-महादेवाः पञ्च-स्नाने व्यवस्थिताः ।
परा च तदतीता च तत्-परा तदनन्तरम् ॥ १०
चित्-परा च तदतीता च पञ्चमी परिकीर्तिताः ।
वारुणं द्विविधं प्रोक्तं वैदिकं तान्त्रिकं तथा ॥ ११

स्व-शाखोक्त-विधानेन वैदिकं स्नानमीरितम् ।
स्व-स्व-कल्पोक्त-विधिना तान्त्रिकं स्नानमाचरेत् ॥ १२
वीराणां तु कनिष्ठं स्यात् त्रितयं शृणु पार्वति !
उत्तमं तु महेशानि ! सर्वत्र परिकीर्तितम् ॥ १३
मध्यमं तु महेशानि ! प्राणायाम-पुरःसरम् ।
ऋष्यादिकं प्रविन्यस्य सप्त-मुद्रा-पुरःसरम् ॥ १४
जलमानीय देवेशि ! सर्वाङ्गं मूलमुच्चरन् ।
दशधा सप्तधा वापि देहं सम्मार्जयेच्छिवे ॥ १५
कुशेन दूर्वया वापि ह्यथवा तत्व-मुद्रया ।
ततस्तु तिलकं देवि ! दशधा वाग्-यतोऽथवा ॥ १६
ऊर्ध्व-पुण्ड्रं त्रि-प्रकारं त्रि-पुण्ड्रं द्वि-प्रकारकम् ।
अगस्ति-पत्राकारं तु पट्ट-बन्धनमेव च ॥ १७
अगस्ति-पत्राकारं तु सिन्दूरैर्घुसृणेन च ।
कुचन्दनेन वा देवि ! योग-मार्गेण कारयेत् ॥ १८
पूर्वोक्तं मन्त्र-मात्रे स्यादिदं श्रीकालिका-मनौ ।
सर्व-देवेऽपि कर्तव्यं स्व-स्व-यन्त्रेण पार्वति ॥ १९
मणि-बन्धादधो हस्तौ पादौ गुल्फादधः प्रिये !
आननं क्षालयेद् देवि ! ताराच्छिन्ना-विधौ शिवे ॥ २०
कारयेत् स्नानमेतद्धि पञ्चाङ्ग-शुद्धि-दायकम् ।
वारुणं कथितं देवि ! नाभसं शृणु पार्वति ॥ २१
अष्टादश-विधं देवि ! नाभसं परिकीर्तितम् ।
शुद्धा नमोऽन्ताः स्वाहान्ताः तर्पणान्ता जयान्तिकाः ।२२
माला-मनुः पञ्च-विधः शिव-शक्ति-क्रमेण च ।
तद्-द्वय-क्रम-योगेन मन्त्राः पञ्चदश स्मृताः ॥ २३
साधकः कृष्ण-प्रतिपदित्यादि फाल्गुनान्तकम् ।
रश्मि-क्रमेण देवेशि ! षट्-चक्र-क्रमगेऽपि च ॥ २४
प्रोक्तमष्टादश-विधं स्नानं नाभस-संज्ञकम् ।
मूलाधाराद् बिलान्तं च सम्भाव्य या भवान्तिकम् ॥ २५

रश्मयोऽत्र महेशानि ! त्रि-शतं षष्टि कीर्तिताः ।
वर्ष-मात्रं तु जाह्नव्यां स्नानं त्रिषवणं कृतम् ।। २६
तत् फलं प्राप्नुयाद् देवि ! नात्र कार्या विचारणा ।
ऋत्वादि-क्रम-योगेन तत्तद्-ऋतु-भवैर्जलैः ।। २७
स्नाने कृते फलं यच्च सकृदेव भवेच्च तत् ।
रश्मि-क्रमेण देवेशि ! साक्षाच्छाम्भव-रूप-भाक् ।। २८
प्रति-चक्रे महेशानि ! चक्रान्तस्तस्य देवताः ।
चिन्तयेत् प्रयतो भूत्वा मूलाधाराद् बिलान्तकम् ।। २९
अन्तः-स्नानमिदं प्रोक्तं देवता-दर्शन-प्रदम् ।
ब्रह्म-रन्ध्रे तु देवेशि ! सर्वेषां लयमाचरेत् ।। ३०
पुनः शुद्धि-स्वरूपं तु विभाव्य जपमाचरेत् ।
नाभसं कथितं स्नानं भस्म-स्नानं शृणु प्रिये ।। ३१
अग्निर्जलं स्थलं चेति वायुर्व्योमेति सर्वतः ।
अभ्रकाभिस्त्रिभिर्देवि ! स्नानं मृत्यु-ज्वरापहम् ।। ३२
शैव-ऋक्-पञ्चकेनैव द्वितीयं परिकीर्तितम् ।
श्रीमालिन्यादिभिर्देवि ! श्रीविद्यायां तृतीयकम् ।। ३३
सूर्य-मन्त्रं भस्म-मध्ये तेन सर्वाङ्ग-लेपनम् ।
ध्यानोक्तं होम--कुण्डस्थं भस्मना पञ्चमं भवेत् ।। ३४
अन्येऽपि बहवो भेदाः सन्ति च प्राणकोदिताः ।
तैजसमथ वक्ष्यामि येन सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ।। ३५
गुरु-दैवत-मन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया ।
गुरु-तेजो मन्त्र-तेजो देव-तेजस्तथैव च ।। ३६
एकीकृत्य त्रि-चैतन्यं तन्मूर्ति परिकल्पयेत् ।
हृदये देवता-स्थानं कण्ठे चैव मनुर्मतः ।। ३७
सहस्रारे गुरुः प्रोक्तस्त्रि-चैतन्यं विभावयेत् ।
तां मूर्ति स्वस्य देहे तु यथा स्वावयव-क्रमात् ।। ३८

सम्भावयेन्महेशानि ! देवता-दर्शन-प्रदम् ।
तैजसं गदितं देवि ! दैवतं शृणु पार्वति ॥ ३९
मूलाधारं समारभ्य बिलान्तं परमेश्वरि !
देवतां भावयेद् देवि ! स्व-मुखेन मुखं शिवे ॥ ४०
तस्याः सर्वाङ्गकं देवि ! स्व-देहे स्थान-योगतः ।
द्वार-देशे महेशानि ! गङ्गां च यमुनां तथा ॥ ४१
सर्व-सम्भावनायां तु गङ्गया किं फलं भवेत् ।
इडा गङ्गेति विख्याता सुषुम्णा यमुना नदी ॥ ४२
सरस्वती पिङ्गला स्यात् प्रयागं देह-मध्यगम् ।
देह-ज्ञानं बिना देवि ! बाह्य-ज्ञानेन किं फलम् ॥ ४३
गुरु-पंक्ति सहस्रारे ह्यङ्गानि भ्रुवि भावयेत् ।
कण्ठ-मूलान्तकं देवि ! सर्वावरण-देवताः ॥ ४४
भावयेद् यत्नतो देवि ! दैवतं स्नानमीरितम् ।
अनेन स्नान-योगेन किं तद् यन्न करे स्थितम् ॥ ४५
ब्रह्माद्या देवताः सिद्धाः स्नानेनानेन पार्वति !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं सन्ध्या-कर्म शृणु प्रिये ॥ ४६
सुन्दर्यां तु चतुःकालं सन्ध्या-वन्दनमाचरेत् ।
प्रातःकाले च मध्याह्ने सायाह्नेऽप्यर्ध-रात्रके ॥ ४७
चतुर्विधां तु गायत्रीं जपेद् यत्नेन पार्वति !
प्रस्ताराकृति-रूपा च उपस्थानाभिधा तथा ॥ ४८
वांच्छा-कल्पलता देवि ! चतुर्थी परिकीर्तिता ।
षष्टि-पारायणं प्रातर्मध्याह्ने नाम-संज्ञकम् ॥ ४९
मन्त्र-पारायणं रात्रौ निशायां चक्र-संज्ञकम् ।
तृतीयामर्ध-रात्रे तु तूर्य-सन्ध्यां समाचरेत् ॥ ५०
कालिकायामिदं प्रोक्तमुपस्थान-विवर्जितम् ।
मेधा-दीक्षादि-राज्ञीत्वात् काल्यां सन्ध्या-चतुष्टयं ॥ ५१
सन्ध्या-त्रयं तु तारायां छिन्नायां द्विविधा भवेत् ।
एतासां न हि भेदोऽस्ति भेद-भाङ् नरकं व्रजेत् ॥ ५२

षष्ठः पटलः

दीपेशादि-विनिर्णयः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि दीपेशादि-विनिर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

बद्ध-पद्मासनो मूर्ध्नि दीप-नाथं प्रपूजयेत् ॥ १

वर्गाष्टकं चाष्ट-दिक्षु स्वर-द्वन्द्व-समन्वितम् ।
विलिखेत् तत्र वर्गे च महा-नादाक्षरं भवेत् ॥ २

सत्य-बिन्दुकः प्रथमं श्रीकण्ठादि ततः परम् ।
तद्-वर्णेशं नन्दनाथं च चतुर्थमनन्तरम् ॥ ३

अतिरिक्त-पदस्यान्ते वर्णायेति समुद्धरेत् ।
रक्त-द्वादश-शक्त्यार्घ-युक्तायेति पदं वदेत् ॥ ४

अस्मिन् क्षेत्र इमां पूजां गृह्ण-युग्ममथापि वा ।
स्वाहान्तगो मनुरयं दीप-नाथस्य कीर्तितः ॥ ५

ईशाने दीप-नाथं च पूजयेत् परमेश्वरि !
उच्छिष्टो मृदमानीय नदी-तीर-द्वयात् तथा ॥ ६

रूपं ताल-मितं कृत्वा नामार्णान्यस्य तद्-धृदि ।
नाम-मायास्त्र-धत्तूर-लिखितं पूरितं भुवि ॥ ७

त्रि-सप्त जपतो सार्धं वशयेदुर्वशीमपि ।
अथान्यदपि देवेशि ! रहस्यं कथ्यते शृणु ॥ ८

वाम-हस्ते'''धृत्वा दक्ष-हस्तेन होमयेत् ।
मालां दत्वा शक्ति-हस्ते गणनां कारयेच्छिवे ॥ ९

द्वि-त्रि-मासोत्तरं देवि ! मालां संग्रथयेच्छिवे !
स्वयं सन्त्रुटिता माला प्रायश्चित्ताय कल्पते ॥ १०

जीर्ण-सूत्रं तु विज्ञाय मालां संग्रथयेच्छिवे !
षण्मासोत्तरगं देवि ! जीर्ण-सूत्रस्य मालिका ॥ ११

यः स्थापयेन्महेशानि ! तस्य नाशो भविष्यति ।
त्रुटिता चेत् स्वयं मालां प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।। १२
गजान्तक-सहस्रं तु जप-होमं समाचरेत् ।
पुनः संग्रथनं कृत्वा प्राण-स्थापन-पूर्वकम् ।। १३
तदा माला सिद्धिदा स्यान्नान्यथा शाङ्करं वचः ।
पुरश्चर्या-जपे होमे माला हस्त-च्युता यदि ।। १४
प्रायश्चित्तं शतं जप्त्वा तद्-दशांश-प्रवर्धनम् ।
तद्-दशांशं त्यजेज्जापं प्रायश्चित्त-क्रमेण च ।। १५
केचिदत्र समिच्छन्ति पुरश्चर्या पुनर्भवेत् ।
प्रायश्चित्तं शतं जप्त्वा पुरश्चर्यां पुनश्चरेत् ।। १६
अयुतं होमयेद् देवि ! पायसैर्नारिकेलजैः ।
त्रैलोक्यं च वशीकुर्यान्नात्र कार्या विचारणा ।। १७
तिल-तण्डुल-होमेन प्रीतिं सञ्जनयेत् प्रिये !

श्रीदेव्युवाच—

प्रसृतिस्तण्डुलाः प्रोक्ताः शत-मात्रं तिलाः स्मृताः ।। १८
कथं साम्यं महा-देव ! तन्मे कथय शङ्कर !
अर्ध-प्रसृति-मात्रं तु तण्डुला वा महेश्वर ।। १९
पञ्चाशद् वा तिला ग्राह्याः सन्देहं हर मे प्रभो !

श्रीशिव उवाच—

प्रसृतिश्च शतं देवि ! संयोगेन तु होमयेत् ।। २०
दक्षिणामूर्ति-देवस्य सम्मतं परिकीर्तितम् ।
अर्ध-प्रसृति-मात्रं तु तण्डुलाः परमेश्वरि ।। २१
पञ्चाशच्च तिला ग्राह्या अक्षोभ्य-ऋषि-सम्मतम् ।
यवानां च तिलानां च यथा योगेन चाहुतिः ।। २२
तथैव तिल-संयोगः कर्तव्यः काल-सम्मतः ।
सम-तोल-समे कुण्डे होमयेत् कालिका-मते ।। २३

······स्व-मुखं दत्वा वाम-हस्तेन होमयेत् ।
देवता वरदा तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ २४
··················देवेशि ! होमयेदविचारयन् ।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ २५
पात्रं षोडशकं स्थाप्य सम्पूज्य पर-देवताम् ।
तदन्ते होमयेद् रात्रौ तदन्ते तर्पणं भवेत् ॥ २६
देवि-शङ्ख-मुखं नेत्रे देवतायाः समाचरेत् ।
केरलाख्य-मते प्रोक्तं काश्मीराख्य-मतं शृणु ॥ २७
यथा देवी तथा देवी-विशेषाख्यः प्रकीर्तितः ।
स्व-साम्मुख्येन देवेशि ! स्थापयेत् पात्र-राशिकम् ॥ २८
चैतन्यस्य मते देवि ! तिर्यक् चक्रेण स्थापयेत् ।
स्व-साम्मुख्ये तथा तिर्यक् देवता-सम्मुखेऽपि च ॥ २९
प्राची नव षट् च प्रोक्ता कथमङ्गादि-कल्पना ।
स्वस्य प्राची च वा देवि ! देवतायाऽथवा भवेत् ॥ ३०

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च कथ्यते शृणु सादरम् ।
स्व-साम्मुख्ये स्थिते पात्रे देव-वच्चाङ्ग-कल्पनम् ॥ ३१
निरञ्जन-मतं प्रोक्तं तत्-साम्मुख्येऽपि पार्वति !
पार्वती-मतमाख्यातं रुद्र-वीर-मतं शृणु ॥ ३२
देवी-पात्रं देव-मुख्ये अङ्गादि स्वाङ्ग-वद् भवेत् ।
तत्र प्राची-क्रमं ज्ञात्वा सर्वं संसाधयेद् ध्रुवम् ॥ ३३
आसनाद्यं समारभ्य भूत-शुद्ध्यन्तगं शिवे !
सिद्ध-प्राची तु सम्प्रोक्ता ततस्तु कल्पिता भवेत् ॥ ३४
स्थित्यादि-पात्र-कर्मान्तं सिद्ध-प्राची प्रकीर्तिता ।
पूजायां तु महेशानि ! कल्पिता दिक् शुभ-प्रदा ॥ ३५
अर्घ्यान्त-पूजा-न्यसने कल्पिता दिक् च शम्बरे ।
महा-भूत-बलिर्देवि ! स्वस्य प्राची-विधौ भवेत् ॥ ३६

देवी-बलिः स्व-वामे तु स्व-दक्षे मृड-सम्मते ।
अग्नीशासुर-वायव्ये मध्ये दिक्ष्वङ्ग-पूजनम् ।। ३७
केरलस्य मतं प्रोक्तं चिद्-घनस्य मतं शृणु ।
अग्नि-नैर्ऋत-वायव्ये शम्भु-कोणेषु मध्यतः ।। ३८
चतुर्दिक्षु महेशानि ! मण्डलावर्त-मार्गतः ।
अग्नीशासुर-वायव्ये मध्ये पृष्ठे षडङ्गकम् ।। ३९
केसरेषु च कोणेषु देहेषु च षडङ्गकम् ।
काल-रुद्र-मते देवि ! षडङ्ग-पूजनं भवेत् ।। ४०
क्रमदर्पेण कथितं प्राची चाङ्ग-प्रपूजनम् भवेत् ।
चतुरावर्त-मार्गेण संहाराख्य-क्रमेण च ।। ४१
षडङ्ग-पूजनं प्रोक्तं विशेषं शृणु सादरम् ।
अर्घ-पूजा-विधौ सिद्ध-प्राची प्रोक्ता तु पीठके ।। ४२
मृडेन परमेशानि ! कल्पिता तु क्वचिद् भवेत् ।
क्वचित् सिद्धा महेशानि कल्पिता तु क्वचिद् भवेत्।। ४३
वायव्य-दिशि पर्यन्तं गुरु-पंक्ति प्रपूजयेत् ।
विद्या-पृष्ठे महेशानि ! गुरवः सन्ति सर्वदा ।। ४४
काल्यां त्रि-पंक्ति-मार्गेण देवी-पृष्ठ-क्रमेण च ।
दिव्यादि-क्रम-योगेन तदधः स्व-गुरु-त्रयम् ।। ४५
दक्षोदक् च प्रतीच्यां च रेखा-त्रितयकं चरेत् ।
दिव्यौघो देवता-पृष्ठे तदन्यौ तत्-स्थल-द्वये ।। ४६
विद्याया भेद-भावे तु स्व-गुरुं पूजयेच्छिवे !
सर्वोपरि महेशानि ! गुरु-स्थानं प्रकीर्तितम् ।। ४७
सिद्ध-प्राची-विधौ देवि ! विलोके केरल-मते ।
गौडे कल्पित-दिङ्-मार्गा यथा देवी तथैव ते ।। ४८
न तेषां मुख्यता देवि ! मुख्या तु देवता भवेत् ।

श्रीदेव्युवाच—

अत्रार्थे संशयो मेऽस्ति संशयं मम हारय ।। ४९

कल्पित-क्रम-मार्गेण यदि पूजा भवेच्छिव !
तेषां दिक्-व्यत्यये देव ! स्थानस्य संच्युतिर्भवेत् ॥ ५०

श्रीशिव उवाच--

स्वामी यत्र समायाति तत्रैवाङ्गादि-देवताः ।
न चाङ्गे मुख्यता देवि ! तत्-पूजायां तु मुख्यता ॥ ५१
दशांशेनाङ्ग-मन्त्राणां जप-पूजां समाचरेत् ।
तेन ते सिद्धिदा देवि ! नान्यथा सिद्धि-रोध-कृत् ॥ ५२
कदा को वा महा-देवः का वा प्राची स्थिता भवेत् ।
सूर्यस्तु वारुणीं याति नित्यानित्यं महेश्वरि ॥ ५३
दिवा-रात्रि-व्यत्ययस्तु साधकस्य करे स्थितः ।
चन्द्र-सूर्य-व्यत्ययं च स कर्तुं भवति क्षमः ॥ ५४
सूर्य-स्थाने भवेच्चन्द्रः चन्द्र-स्थाने तु सूर्यता ।
एवं क्रमेण देवेशि ! ब्रह्माण्डानां परम्परा ॥ ५५
कदा का वा स्थिता प्राची कति जाताः पुरन्दराः ।
एकैक-वारं देवेशि ! कीटाद्यपि पुरन्दरः ॥ ५६
कुत्र के वा स्थिता देवि ! सर्वं साधक-गोचरम् ।
यदाशाभिमुखो भूत्वा चक्र-राजं समुद्धरेत् ॥ ५७
सैव पूर्वा विनिर्दिष्टा सर्वत्र योजयेत् क्रमम् ।
यदा पूर्व-मुखो भूत्वा चक्रेशीं परिपूजयेत् ॥ ५८
तदा प्रतीची पूर्वा स्याद् देवताया महेश्वरि !
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा यदा चक्रं समुद्धरेत् ॥ ५९
पूर्वैव पूर्वा निर्दिष्टा दक्षिणे शृणु पार्वति !
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा यदा चक्रं समुद्धरेत् ॥ ६०
तदोत्तरा भवेत् पूर्वा प्रतीची दक्षिणा भवेत् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा यदा देवीं प्रपूजयेत् ॥ ६१
दक्षिणैव भवेत् पूर्वा संक्षेपात् परमेश्वरि !
तथा काम्य-विधौ देवि ! विदिक्षु संस्थितो यदि ॥ ६२

देवि ! स्व-मध्ये पूर्वा तु संक्षेपेण प्रकीर्तिता ।
यथा यथा शिवा याति परिवारास्तथा तथा ॥ ६३
यस्याः कृपा-कटाक्षेण स्थानं लब्धं च तैः पुरा ।
ते सेवार्थं समायान्ति देवताया महेश्वरि ॥ ६४
बलिदान-विधौ देवि ! सिद्धा वा कल्पिता च वा ।
देवता-हस्त-दक्षाख्यः स्व-साम्मुख्य-क्रमेण च ॥ ६५
प्राची प्रोक्ता केरले च गौडे प्राग्-दक्ष-भावतः ।
देव्यग्र-दलमारभ्य प्रादक्षिण्य-क्रमेण तु ॥ ६६
काश्मीराख्य-मते प्रोक्तं पूजनं तत्-क्रमेण तु ।
स्व-देहं च स्व-देवीं च स्व-गुरुं परमेश्वरि ॥ ६७
स्व-देह-स्थिति-मार्गेण स्व-रूपं पूजयेत् प्रिये !
पूजा-विधौ महेशानि ! स्वाग्रे सञ्चिन्त्य पूजयेत् ॥ ६८
अत्रापि देव-देवेशि ! स्व-रूपेण स्व-रूपता ।
तद्-रूपे स्वस्य रूपं च तथैव च गुरोरपि ॥ ६९
एवं क्रमेण देवेशि ! त्रितयं त्रितयं त्रिषु ।
मार्ग-त्रय-क्रमेणैव सर्वं संक्षेपतो मतम् ॥ ७०
बलि-दान-भव-द्रव्यं देवताग्रे निवेदयेत् ।
स्व-साम्मुख्येन वा देवि ! तत्साम्मुख्येन वा प्रिये ॥ ७१
केरल-क्रम-योगेन काश्मीर-क्रम-योगतः ।
गौड-मार्ग-क्रमेणैव सर्वं संक्षेपतो मतम् ॥ ७२

सप्तमः पटलः

देश-व्यवस्था-नियमः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

भिन्नाञ्जनं समारभ्य मा भैर्मा भैर्महेश्वरि ।। १
वृत्तानन्दं तु देवेशि ! ध्यात्वा वाञ्छा-मितं शिवे !
शिखा-गतं स्मरेत् वह्नि-शिखा-साधक-रूपिणम् ।। २
खड्गं तु देव्या रसनां बुद्धया ध्यात्वा महेश्वरि !
साध्यस्य जाडच-रूपत्वं शिखायां परमेश्वरि ।। ३
साध्यस्य हृदये देवि ! देवी तिष्ठति सर्वदा ।
जाडचं तत्रैव देवेशि ! रसना लेह-भक्षणा ।। ४
एवं ध्यात्वा जपेद् वीरस्त्रैकाल्य-ज्ञानमाप्नुयात् ।
तारा-विधौ महेशानि ! काम्य-ध्यानं महेश्वरि ।। ५
प्रत्यालीढं समारभ्य पञ्च-मुद्रा-विभूषितम् ।
इत्येतं चिन्त्य यत्नेन जाडचं न्यस्य कपालके ।। ६
कर्त्र्या सङ्कृतनं चिन्त्यं त्रैलोक्याधिपतिः कविः ।
राज्य-दातृत्व-सामर्थ्यं नहि तारां बिना कलौ ।। ७
विपरीत-रता सक्तामाग्नेयी-नाडिका-गताम् ।
शवस्य हृदये न्यस्तं दक्षिणं चरणं शुभम् ।। ८
शवस्य पाद-युगलमनुलोमाकृति-क्रमात् ।
संन्यस्य वाम-चरणे प्रत्यालीढं तदुच्यते ।। ९
साधनायां दक्ष-शिरः प्राक् प्रत्यक् च शिरः सदा ।
शव-स्वरूपं कथितं वाम-हस्तं हृदि स्थितम् ।। १०

चतुर्भुजा कालिका स्यातु धनुरायुध-धारिणी ।
कपाल पञ्चमं चेत् स्यात् वर-हस्ते विधारयन् ॥ ११
मुण्ड-रूपं कपालं तु महा-काल-मते मतम् ।
कलौ तारा कलौ काली कलौ तारा च कालिका ॥ १२
शिव-शक्ति-प्रभेदेन देहे शक्तिरुपस्थिता ।
तारा शिवस्तथा काली शक्ति-रूपा प्रकीर्तिता ॥ १३
काली शिवस्तथा तारा शक्ति-रूपा प्रकीर्तिता ।
अहो ज्ञान-वतां ज्ञानी काली-तारा-परायणः ॥ १४
रहस्याति-रहस्यं च प्रोक्तं देवि ! तवाग्रतः ।
देश-व्यवस्थां देवेशि ! कथ्यते शृणु यत्नतः ॥ १५
वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे !
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां न हि दुष्यति ॥ १६
रत्नाकरं समारभ्य ब्रह्म-पुत्रान्तगं शिवे !
वङ्ग-देशो मया प्रोक्तः सर्व-सिद्धि-प्रदायकः ॥ १७
जगन्नाथात् पूर्व-भागात् कृष्णा-तीरान्तगं शिवे !
कलिङ्ग-देशः सम्प्रोक्तो वाम-मार्ग-परायणः ॥ १८
कलिङ्ग-देशमारभ्य पञ्चाष्ट-योजनं शिवे !
दक्षिणस्यां महेशानि ! कालिन्दः परिकीर्तितः ॥ १९
सुब्रह्मण्यं समारभ्य यावद् देवो जनार्दनः ।
तावत् केरल-देशः स्यात् तन्मध्ये सिद्धि-केरलं ॥ २०
रामेश्वरो वेङ्कटेशो हंस-केरल-बोधकः ।
अनन्त-शैलमारभ्य यावत् स्यादुडुपं पुरम् ॥ २१
तावत् सर्वेश-नामा तु केरलः परिकीर्तितः !
शारदा-मठमारभ्य कुंकुमाद्रि-तटान्तकम् ॥ २२
तावत् काश्मीरदेशः स्यात् पञ्चाशद्योजनान्तकः ।
कालेश्वरं श्वेत-गिरिं त्रिपुरां नील-पर्वतम् ॥ २३
काम-रूपाभिधो देवि ! गणेश-गिरि-मूर्द्धनि ।
त्रि-पञ्चकं समारभ्य मध्ये चोज्जयिनी शिवे ॥ २४

मार्जार-तीर्थं राजेन्द्रे कोला-पुर-निवासिनम् ।
तावद् देशो महा-राष्ट्रः कार्णाटस्याभिगोचरः ॥ २५
जगन्नाथादूर्ध्व-भागं अर्वाक् श्रीभ्रमराम्बिका ।
तावदन्ध्राभिधो देशः सौराष्ट्रं शृणु सादरम् ॥ २६
कोङ्कणात् पश्चिमं तीर्त्वा समुद्र-प्रान्त-गोचरः ।
हिंगुलाजान्तका देवि ! जन्तवो जन-लेशतः ॥ २७
सौराष्ट्र-देशो देवेशि ! नाम्ना तु गुर्जराभिधः ।
श्रीशैलं तु समारभ्य चोलेशान्मध्य-भागतः ॥ २८
तैलङ्ग-देशो देवेशि ! ध्यानाध्ययन-तत्परः ।
मूकाम्बिकां समारभ्य मलयाद्रयन्तगं शिवे ॥ २९
मलयालाभिधो देशो मन्त्र-सिद्धि-प्रवर्तकः ।
राम-नाथं समारभ्य श्रीरङ्गान्तं बिलेश्वरि ॥ ३०
कर्णाट-देशो देवेशि ! साम्राज्य-भोग-दायकः ।
ताम्र-पर्णीं समारभ्य शैलार्द्धात् पुरतोऽर्द्धतः ॥ ३१
अवन्ती-संज्ञको देशः कालिका तत्र तिष्ठति ।
भद्र-काली महत्-पूर्वं राम-दुर्गाच्च पश्चिमे ॥ ३२
श्रीविदर्भाभिधो देशो वैदर्भास्तत्र तिष्ठति ।
गुर्जरात् पूर्व-भागे तु द्वारकातो हि दक्षिणे ॥ ३३
मरु-देशो महेशानि ! उष्ट्रोत्पत्ति-परायणः ।
श्रीकोङ्कणादधो-भागे तापीतः पश्चिमोत्तरे ॥ ३४
आभीर-देशो देवेशि ! विन्ध्य-शैले व्यवस्थितः ।
अवन्तीतः पूर्व-भागे गोदावर्यास्तथोत्तरे ॥ ३५
मालवाख्यो महा-देशो धन-धान्य-परायणः ।
द्रविड-तैलङ्गयोर्मध्ये चोल-देशः प्रकीर्तितः ॥ ३६
लम्ब-कर्णाश्च ते प्रोक्ता भेदो ह्यवान्तरो भवेत् ।
कुरु-क्षेत्रात् पश्चिमे तु तथा चोत्तर-भागतः ॥ ३७

इन्द्र-प्रस्थान्महेशानि ! दश-त्रि-योजनोत्तरम् ।
पाञ्चाल-देशो देवेशि ! सौन्दर्य-गर्व-भूषितः ॥ ३८

पाञ्चाल-देशमारभ्य म्लेच्छाद् दक्षिण-पूर्वतः ।
काम्बोज-देशो देवेशि ! वाजि-राशि-परायणः ॥ ३९

वैदर्भ-देशादूर्ध्वं च इन्द्र-प्रस्थाच्च दक्षिणे ।
मरु-देशात् पूर्व-भागे वैराड्-देशः प्रकीर्तितः ॥ ४०

काम्बोजाद् दक्ष-भागे तु इन्द्र-प्रस्थाच्च पश्चिमे ।
पाण्डच-देशो महेशानि ! महा-शूरत्व-कारकः ॥ ४१

गण्डकी-तीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे !
विदेह-भूः समाख्याता तैरभुक्त्यधः स तु ॥ ४२

काम्बोज-देशमारभ्य महा-म्लेच्छात्तु पूर्वके ।
वाह्लीक-देशो देवेशि ! अश्वोत्पत्ति-परायणः ॥ ४३

तप्त-कुण्डं समारभ्य राम-क्षेत्रान्तकं शिवे !
किरात-देशो देवेशि ! विन्ध्य-शैले च तिष्ठति ॥ ४४

कर-तोयां समारभ्य हिंगुलाजान्तकं शिवे !
बक्तान-देशो देवेशि ! महा-म्लेच्छ-परायणः ॥ ४५

हिंगु-पीठं समारभ्य मर्के शान्तं महेश्वरि !
खुरासानाभिधो देशो म्लेच्छ-मार्ग-परायणः ॥ ४६

तन्मध्ये चोत्तरे देवि ! ऐराकः परिकीर्तितः ।
काश्मीरं तु समारभ्य काम-रूपाच्च पश्चिमे ॥ ४७

भोटान्त-देशो देवेशि ! मानसेशाच्च दक्षिणे ।
मानसेशाद् दक्ष-पूर्वे चीन-देशः प्रकीर्तितः ॥ ४८

कैलास-गिरिमारभ्य सरयू-योनितः परे ।
आमोङ्गान्तं महेशानि ! महा-चीनाभिधो भवेत् ॥ ४९

जटेश्वरं समारभ्य योगिन्यन्तं महेश्वरि !
नेपाल-देशो देवेशि ! शिल-हट्टं शृणु प्रिये ॥ ५०

गणेश्वरं समारभ्य महोदध्यन्तगं शिवे !
शिल-हट्टाभिधो देशः पर्वते तिष्ठति प्रिये ॥ ५१

वङ्ग-देशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे !
गौड-देशः समाख्यातः सर्व-विद्या-विशारदः ।। ५२
गोकर्णेशात् पूर्व-भागे आर्यावर्तात्तु चोत्तरे ।
तैरभूक्तात् पश्चिमे तु महा-पुर्याश्च पूर्वतः ।। ५३
महा-कोशल-देशः स्यात् सूर्य-वंश-परायणः ।
व्यासेश्वरं समारभ्य तप्त-कुण्डान्तकं शिवे ।। ५४
मगधाख्यो महा-देशो यात्रायां न हि दुष्यति ।
दक्षोत्तर-क्रमेणैव क्रमात् कीकट-मागधौ ।। ५५
चरणाद्रिं समारभ्य गृध्र-कूटान्तकं शिवे !
तावत् कीकट-देशः स्यात् तदुत्तरो मागधो मतः ।। ५६
जगन्नाथ-प्रान्त-देशस्त्वौत्कलः परिकीर्तितः ।
काम-गिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि ।। ५७
श्रीकुन्तलाभिधो देशो हूणं शृणु महेश्वरि !
काम-गिरेर्दक्ष-भागे मरु-देशात् तथोत्तरे ।। ५८
हूण-देशः समाख्यातः शूरास्तत्र वसन्ति हि ।
अथ घट्टं समारभ्य कोटीशस्य च मध्यगः ।। ५९
समुद्र-प्रान्त-देशो हि कोङ्कणः परिकीर्तितः ।
ब्रह्म-पुत्रात् काम-रूपान्मध्य-भागे तु कैकयः ।। ६०
मगधाद् दक्ष-भागे तु विन्ध्यात् पश्चिमतः शिवे !
शौरसेनाभिधो देशः सूर्य-वंश-प्रकाशकः ।। ६१
हस्तिनापुरमारभ्य कुरु-क्षेत्राच्च दक्षिणे ।
पाञ्चालात् पूर्व-भागे तु कुरु-देशः प्रकीर्तितः ।। ६२
मरु-देशात् पूर्व-भागे कामाद्रेर्दक्षिणे शिवे !
सिंहलाख्यो महा-देशः सर्व-देशोत्तमोत्तमः ।। ६३
शिल-हट्टात् पूर्व-भागे काम-रूपात् तथोत्तरे ।
पुलिन्द-देशो देवेशि ! नर-नारायणः परः ।। ६४

गणेश्वरात् पूर्व-भागे समुद्राद्रुत्तरे शिवे !
कच्छ-देशः समाख्यातः सेवनं शृणु सादरम् ।। ६५
पुलिन्दादुत्तरे भागे कच्छाच्च पश्चिमे शिवे !
मत्स्य-देशः समाख्यातो मत्स्य-बाहुल्य-कारकः ।। ६६
वैराट-पाण्डययोर्मध्ये पूर्व-दक्ष-क्रमेण च ।
मद्र-देशः समाख्यातो माद्रीशस्तत्र तिष्ठति ।। ६७
शूर-सेनात् पूर्व-भागे कण्ठकात् पश्चिमे वरे ।
सौवीर-देशो देवेशि ! सर्व-देशाधमोऽधमः ।। ६८
अवन्तीतः पश्चिमे तु वैदर्भाद् दक्षिणोत्तरे ।
लाट-देशः समाख्यातो बर्बरं शृणु पार्वति ।। ६९
माया-पुरं समारभ्य सप्त-शृङ्गात् तथोत्तरे ।
बर्बराख्यो महा-देशः सैन्धवं शृणु सादरम् ।। ७०
लङ्का-प्रदेशमारभ्य मक्कान्तं परमेश्वरि !
सैन्धवाख्यो महा-देशः पर्वते तिष्ठति प्रिये ।। ७१
एते षट्-पञ्चाशद् देशा मया प्रोक्तास्तव प्रिये !
एतन्मध्येऽपि देवेशि ! देश-भेदास्त्वनेकशः ।। ७२
कोटिशः सन्ति देवेशि ! एते मुख्याः प्रकीर्तिताः ।
रहस्यातिरहस्यं च गोप्तव्यं पशु-सङ्कटे ।। ७३

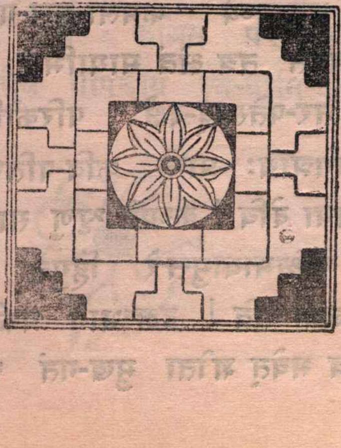

अष्टमः पटल;

पञ्च-प्रस्थ-कथनम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पञ्च-प्रस्थानि साम्प्रतम् ।

श्रीशिव उवाच—

इन्द्र-प्रस्थं यम-प्रस्थं वरुण-प्रस्थमेव च ॥ १
कूर्म-प्रस्थं महा-देवि ! देव-प्रस्थं च पञ्चमम् ।
इन्द्र-प्रस्थं महेशानि ! शृणु वक्ष्ये यथा-क्रमम् ॥ २
इन्द्र-प्रस्थं महेशानि ! योगिनी-कोटि-संयुतम् ।
मथुरा-गोकुलं पूर्व-भागे तस्य प्रकीर्तितम् ॥ ३
वृन्दावनं कोण-देशे हस्तिनापुरमुत्तरे ।
द्वारका पश्चिमायां तु गदावर्त्तस्तु दक्षिणे ॥ ४
इन्द्र-प्रस्थ-मध्य-भागे कालिका-मुख-गोचरम् ।
वाराही-क्षेत्रमुद्दिष्टमिन्द्र-प्रस्थं तदुच्यते ॥ ५
सिंहासनं चाश्व-पतेस्तदेव परिकीर्तितम् ।
यम-प्रस्थं महेशानि ! दक्षिणस्यां व्यवस्थितम् ॥ ६
सोमेश्वरः पश्चिमायां सप्त-शृङ्गी तु पूर्वगा ।
माया-पुरं वाम-भागे व्यङ्कटेशस्तु दक्षिणे ॥ ७
यम-प्रस्थं भवेन्मध्ये कमला-मुख-गोचरम् ।
शङ्खावर्तो भवेत् तत्र क्षेत्रं मायाभिधं भवेत् ॥ ८
सिंहासनं नर-पतेस्तद्-दक्षे परिकीर्तितम् ।
ततः पूर्वे जगन्नाथः प्राप्ते कवि-पतिर्भवेत् ॥ ९
वारुणाख्यं तथा देवि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
मक्केश्वरः पश्चिमायामुत्तरे हिंगुला भवेत् ॥ १०
त्रैलोक्य-विजया देवि ! दक्ष-भागे प्रकीर्तिता ।
राजावर्तस्तत्र भवेत् शीता मुख-गतं च तत् ॥ ११

तदन्ते सागराः सप्त समुद्राश्च तदन्तके ।
तावत् श्रीवारुणाख्यं तु प्रस्थं प्रोक्तं मया तव ॥ १२
कूर्म-प्रस्थं महेशानि ! कथ्यते श्रृणु पार्वति !
गोकर्णेशाद् दक्ष-भागे कामाख्यात् पूर्व-गोचरः ॥ १३
उत्तरे मानसेशः स्यात् पश्चिमे सारदा भवेत् ।
त्रिगुणावर्तमेतद्धि वज्रेश्या मुखमीरितम् ॥ १४
षट्-पञ्च-कोटि-चामुण्डा-गणैर्व्याप्तं तु तद् भवेत् ।
देव-प्रस्थं महेशानि ! कथ्यते श्रृणु साम्प्रतम् ॥ १५
श्रीरङ्गो दक्षिणे प्रोक्तो गायत्री पश्चिमे भवेत् ।
पूर्वे चैव जगन्नाथस्तूत्तरेऽमर-कण्टकम् ॥ १६
काञ्ची-पुरं मध्य-भागे मोहनावर्तनमेव च ।
ललितायाः मुखं तच्च विद्या-गण-विभूषितम् ॥ १७
कामाख्या-क्षेत्रमुद्दिष्टं महा-मन्त्र-विभूषितम् ।
नव-लक्ष-महा-विद्या सगणैः परि-भूषिताः ॥ १८
पञ्च-प्रस्थानि देवेशि ! कथितानि मया तव ।
कृष्ण-मुद्रण-रामश्च श्रीर्विष्णुर्वरदेश्वरः ॥ १९
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
परादि तदतीतान्तं तृतीये परिवर्तते ॥ २०
विष्णोर्भेदाः स्मृता ह्येते नाविष्णुः पृथिवी-पतिः ।
पञ्च-प्रस्थेश्वरो भूयात् काली-तारा-परायणः ॥ २१
रहस्याति-रहस्यं च कथितं परमेश्वरि !
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ॥ २२

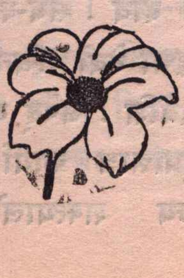

नवमः पटलः

लता-साधनम्

श्रीदेव्युवाच--

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वमुक्तं रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च कथ्यते तव भक्तितः ॥ १
आनन्द-भुवनं नाम महा-योग-वनं शृणु ।
शक्तिमानीय देवेशि ! तस्याः सन्दीक्षणं चरेत् ॥ २
दीक्षितां च सुशीलां च मन्त्र-यन्त्र-परायणाम् ।
राज-पत्नीं देव-पत्नीं देवतां गुरु-रूपिणीम् ॥ ३
राज-वेश्यां ब्रह्म-वेश्यां दिव्य-वेश्यां कला-पराम् ।
तीर्थ-वेश्यां गुप्त-वेश्यां नृत्य-वेश्यां च वा प्रिये ॥ ४
समानीय दिवा-रात्रौ यथा-योगेन पार्वति !
सन्दीक्ष्य यत्नतो देवि ! त्रैलोक्य-रञ्जिनीं कलां ॥ ५
प्रसून-मञ्चे संस्थाप्य पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ।
दत्वा सम्पूज्य यत्नेन चतुःषष्ट्युपचारकः ॥ ६
शृङ्गार-रत्नाभरणैर्नाना - दिव्यैर्महेश्वरि !
स्वेष्ट-देवीं सञ्चिन्त्य पूजयेत् त्रि-जटेश्वरीम् ॥ ७
मन्त्र-भेदे स्वल्प-मन्त्रे आवृत्तिर्भूयसी यदा ।
बिन्दोश्च परितः कोणे पूजयेत् तां च देवताम् ॥ ८
साङ्गां सावरणां पूज्य यथा-काम-वर-प्रदाम् ।
तां विलोक्य जपेद् देवि ! सर्व-कालमतन्द्रितः ॥ ९
तस्यां तु देवता-बुद्ध्या देवीं चिन्त्य महोत्सवैः ।
तत्-पादौ चिन्त्य देवेशि ! जपेद् यत्नेन पार्वति ॥ १०
सर्व-सिद्धीश्वरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
तस्यां तु देवं सम्पूज्य शक्त्यालोकन-तत्परः ॥ ११

पूजयेत् परमेशानि ! त्रैलोक्य-विजयी कविः ।
तस्या मुखं तु सञ्चिन्त्य देवी-बुद्ध्या दिवा शिवे ॥ १२
त्रि-सहस्रं जपेन्मासं त्रिकालज्ञो नरो भवेत् ।
तस्याः कूटमिदं ज्ञात्वा जपेल्लक्षं दिवा शिवे ॥ १३
तस्याः मोदायितं दृष्ट्वा दिवा पञ्चायुतं जपेत् ।
पञ्च-काम-समो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १४
कञ्चुकं तस्याः संवीक्ष्य दिवा लक्ष-द्वयं जपेत् ।
सर्व-सिद्धीश्वरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १५
लतायाश्चकितं दृष्ट्वा दिवा जप्त्वा दिवाकरः ।
दिवा पश्यन् जपेत् तारां विकार-रहितः शिवे ॥ १६
सर्व-सिद्धीश्वरो भूयात् काली-तुल्यो नरो भवेत् ।
दिवा हास्य-रतां वीक्ष्य योगिनी-मेलनं लभेत् ॥ १७
लतां……दिवा कृत्वा त्रि-लक्षात् त्रिगुणेश्वरः ।
दिवा………तु संवीक्ष्य देवता-ध्यान-तत्परः ॥ १८
मास-त्रय-प्रयोगेण देवतां पश्यति ध्रुवम् ।
दिवा…………मासाद्य समालिग्य महेश्वरि ॥ १९
प्रजपेत् सार्ध-लक्षं च शिव-शक्ति-समो भवेत् ।
दिवा तां…………तु कृत्वा लक्षान्मही-पतिः ॥ २०
दिवा चार्द्रां लतां वीक्ष्य चन्द्र-कोटि-समं जपेत् ।
दिवा सौरीं च संवीक्ष्य त्रि-लक्षाच्च त्रिशक्तिधृक् ॥ २१
लता-ग्रन्थींश्च संवीक्ष्य दिवा जपति भू-पतिः ।
स्थायी-भाव-गतां वीक्ष्य जपेल्लक्षमनन्य-धीः ॥ २२
त्रि-लक्ष-जपतो नूनं राज-राज-समो भवेत् ।
लतां पुष्प-वतीं दृष्ट्वा दिवा जपति सुन्दरी ॥ २३
लतां काम-गतां वीक्ष्य दिवा जपति शङ्करः ।
लता-मण्डलगो भूत्वा देवता-ध्यान-तत्परः ॥ २४

दिवा-रात्रं जपेद् देवि ! भुवनेशी-समो भवेत् ।
लतां गान-रतां दृष्ट्वा ताम्बूल-दानमाचरेत् ॥ २५
ताम्बूल-रागं संवीक्ष्य लक्षं जपति नित्यशः ।
दिवा नित्यं जपेत् कालीं शिव एव न संशयः ॥ २६
लता-ताम्बूल-वीटों तु गृहीत्वा भक्ष्य संजपेत् ।
स्वरोद्युक्तां तत्र देवि ! देवता-वरमाप्नुयात् ॥ २७
शय्या-भङ्गी-लता-हस्ताद् दिवा कृत्वा तु······ ।
गन्धर्व-वेशमासाद्य सर्व-सिद्धि स विन्दति ॥ २८
अष्टमी-सन्धि-वेलायामष्टोत्तर-लता-गृहम् ।
व्रजन् दिवा जपेन्नित्यं दिन-मात्रं महेश्वरि ॥ २९
प्रत्यष्टम्यां चरन्नेवं सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ।
अमा-चतुर्दशी-सन्धौ लता-त्रि-शतकान्वितः ॥ ३०
पुष्पं प्रत्येकं दत्वा तु चीन-वेष-परायणः ।
दिवा जपेन्महेशानि ! यावदन्या चतुर्दशी ॥ ३१
तावज्जपेन्निरातङ्कः सर्व-सिद्धि-समन्वितः ।
नील-वेशं समासाद्य·········पूजनं चरेत् ॥ ३२
त्रि-मासं कुरुते यस्तु सुरतेशीं स वै लभेत् ।
तां लतां भोग-सामग्री-समुद्युक्तां च वीक्ष्य च ॥ ३३
त्रि-दिनं च दिवा-रात्रि जपात् सिद्धीश्वरो भवेत् ।
तां नाट्यस्थां च संवीक्ष्य देवता-ध्यान-तत्परः ॥ ३४
रात्रौ दिवा जपेद् देवीं त्रैलोक्य-कवितां लभेत् ।
तां वीणा-वाद्य-निरतां वीक्ष्य देवीं दिवा जपेत् ॥ ३५
राज-राज-समो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
मृदङ्ग-वादन-रतां लतां वीक्ष्य दिवा जपेत् ॥ ३६
देवतां वरदां मास-पञ्चकैः पश्यति ध्रुवम् ।
डिण्डी-रव-गतां वीक्ष्य लतां दिन-गतं जपेत् ॥ ३७

सर्व-सिद्धीश्वरो भूत्वा त्रैलोक्य-विजयी हरः ।
लतां नाटच-गतां वीक्ष्य अहो-रात्रं जपेच्छिवे ।। ३८
तारा-रूपो नरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
मुक्त-केशीं लतां दृष्ट्वा दिवा लक्ष-द्वयं जपेत् ।। ३६
काली-तारा-समो भूत्वा छिन्ना-सिद्धि स विन्दति ।
रहस्याति-रहस्यं च तव प्रीत्या च कीर्तितम् ।। ४०
आनन्द-योगो देवेशि ! तव प्रीत्या मयेरितः ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं विशेषाद् दिवसे शुभः ।। ४१

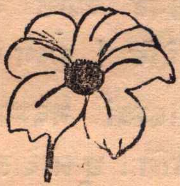

दशमः पटलः

अज्ञात-दुर्निमित्तम्

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि सूचितस्य विनिर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

शक्ति-सङ्गम-तन्त्रादौ मेरु-स्थाने च सूचितम् ॥ १
तदेव कथ्यते यत्नात् सावधान-मना भव ।
सामान्यत्वेन कथितं विशेषं शृणु सादरम् ॥ २

पौषे माघे भाद्रपदे ज्येष्ठे वा परमेश्वरि !
कृष्णे शुक्लेऽथवा देवि ! कृष्ण-पक्षे विशेषतः ॥ ३
सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां नवम्यामायुधे तथा ।
षष्ठ्याममायां देवेशि ! धूम्रोदेति नभः-स्थले ॥ ४
पाते भद्रा-दिने वापि गण्डे शूलेऽथवा प्रिये !
भरण्यां कृत्तिकायां च त्वार्द्रायां रौद्रगेऽपि वा ॥ ५
हस्त-चित्रा ऋक्ष-गतो धूम्रो भूयान्महेश्वरि !
अधिकार-विहीनेन यत्कृतं यच्च कारितम् ॥ ६
तेन योगेन वा देवि ! महा-पाप-वशादथ ।
भूमि-भार-विनाशार्थं धूम्र-केतुर्भविष्यति ॥ ७
त्रि-वर्षं पञ्च-मासैश्च षष्टि-नाडी-पलानि च ।
तत्त्व-संख्यानि देवेशि ! मध्य-धूम्रो भविष्यति ॥ ८
चतुर्मासोत्तरं देवि ! शक्र-केतुर्भविष्यति ।
अहि-केतुस्ततो भूयात् सर्पाकारो महेश्वरि ॥ ९
शक्र-केतुर्लोष्ट्र-निभो घट-केतुस्तथापरः ।
पादुका-केतुरपरो हसन्ती-संज्ञिकस्ततः ॥ १०

व्याघ्र-पुच्छ-निभश्चैव सर्प-पुच्छ-निभस्ततः ।
चिह्नान्येतानि देवेशि ! सम्भवन्ति पदे पदे ॥ ११
श्रीविद्या-मण्डपं कुर्यात्तदा शान्तिर्भविष्यति ।
तस्मात् त्विदं महेशानि ! गोपनीयं कलौ युगे ॥ १२
अर्ध-मध्य-पूर्ण-भेदाद् भेद-बाहुल्यमीरितम् ।
एवं भेदेन देवेशि ! त्रि-शतं पञ्च मेरवः ॥ १३
अग्नि-मेरुर्महेशानि ! विधिः सिद्धि-प्रदायिका ।
सम्प्रदाय-क्रमेणैव कर्तव्यं मेरु-साधनम् ॥ १४
लोभान्मोहाद् भयाद् दम्भाद्यदि कुर्यान्नराधमः ।
सर्वस्व-हरणं कृत्वा नरके पातयाम्यहम् ॥ १५
घट-केतुर्यदा भूयात् कुटुम्बं तु विनश्यति ।
धूम-केतुर्महेशानि ! स भूपाल-विनाश-कृत् ॥ १६
धूम्र-केतुर्यदा भूयात् तत्-कुटुम्बं तु वर्षतः ।
यमालये प्रविष्टं स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १७
वेद-बाह्यो यथा देवि ! सर्व-कर्म-बहिष्कृतः ।
तथायं द्विज-बाह्यः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १८
कुटुम्बहा भवेत् सो हि प्रायश्चित्तेन शुद्धयति ।
तस्य संसर्ग-मात्रेण राज्य-भ्रष्टो भवेद् विभुः ॥ १९
तस्माद् यत्नेन देवेशि ! प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ।
शुद्धो भूयात् ततो देवि ! नान्यथा नारकी ध्रुवम् ॥ २०
श्रीमेरु-रश्मि-विज्ञानात् त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।
अज्ञानात् परमेशानि ! यः करोति नराधमः ॥ २१
स पापिष्ठो दुराचारी दुःख-भागी भवेद् ध्रुवम् ।
प्राजापत्य-शतं कृत्वा गोदानान्तं तु विंशतिः ॥ २२
सहस्रं भोजयेद् विप्रान् शुद्धो भवति नान्यथा ।
अन्यथा देव-देवेशि ! संहर्ता परमेश्वरः ॥ २३

प्रत्यङ्गिरा स्वयं शास्ता हेलया ह्याद्य-नायिका ।
ब्रह्मास्त्रमपि देवेशि ! तत्-संहाराय निश्चितं ।। २४
सप्त-वर्षै रन्ध्र-वर्षैः सकेशो नश्यति ध्रुवम् ।
त्रि-मास-वेद-वर्षैस्तु पृथ्वी-पालो विनश्यति ।। २५
वर्षेण च कलत्रं च पञ्च-वर्षेण कन्यकाम् ।
स्वसां तु ऋतु-वर्षेण तत्-संसर्गात् ऋषि-क्रमात् ।। २६
दीक्षा-युक्तस्तु यः कुर्यात् तत्फलं तु कथं शिवे !
वक्त्र-कोटि-सहस्रैस्तु जिह्वा-कोटि-शतैरपि ।। २७
महिमा वर्णितुं शक्तिः कथमत्र कलौ युगे ।
कलौ पाप-समाकीर्णे न मेरु-साधनं मतम् ।। २८
न्यास-मेरुर्यन्त्र-मेरुः कर्तव्यः कुत्र-चित् प्रिये !
तामसं कर्म चैतद्धि न कर्तव्यं हितेच्छुना ।। २९
गो-लोकेन समालापात् गो-लोकत्वं यथा भवेत् ।
अज्ञात-द्विज-संलापात् स भवेद् ब्राह्मणाधमः ।। ३०
गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं निरन्तरम् ।
गोपनात् सिद्धिमाप्नोति गोपनात् शिवतां व्रजेत् ।। ३१
न देयं पर-शिष्येभ्यः कृपणायेति सुन्दरि !
दीक्षा-हीनाय नो दद्याद् गोपयेन्मातृ-जार-वत् ।। ३२

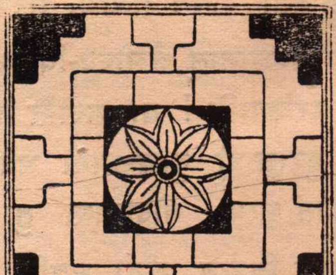

एकादशः पटलः

महाकाल-मन्त्र-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

भू-कम्पादिकमेतद्धि सूचितं तद्-वदाधुना ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यमिति विज्ञाय नोक्तं देवि ! मया तव ॥ १
इदमेव महेशानि ! उक्तं कोटि-विनायके ।
अष्टादश--सहस्रं तु केतु-संख्या प्रकीर्तिता ॥ २
तन्मध्ये तु शतं चाष्टादश-संख्या प्रकीर्तिता ।
एतन्मध्ये महेशानि ! पञ्चाशत्-केतवः शिवे ॥ ३
सम्मार्जन-समाकारा वृक्षाकारास्तथैव च ।
शिखाकार-समापन्नास्तथा हस्तक-सन्निभाः ॥ ४
तृणाकारास्तथा कम्बु-सदृशाः कुटिलाः शिवे !
वृक्ष-मात्र-समाकारा घटाकारास्तथा प्रिये ॥ ५
एक-विंशद्-दिनं व्याप्य तद्-द्वयं वा महेश्वरि !
मास-मात्रं तथा देवि ! तद्-द्वयं परमेश्वरि ॥ ६
चतुर्दिक्षु भ्रमन्त्येव दिवा वा चोदयो भवेत् ।
चतुःप्रहर-योगेन रात्रौ तूदयमेव च ॥ ७
एक-वारं द्वि-वारं वा त्रि-चतुः-पञ्च-वारकम् ।
क्रम-केतुर्महेशानि ! समुदेति निरन्तरम् ॥ ८
एक-रूपं च वा देवि ! भिन्न-रूपं च वा प्रिये !
आ-ब्रह्म-कल्प-पर्यन्तं सर्व-रूपेण वर्तते ॥ ९
देश-भङ्गो भवेदादौ राष्ट्र-भङ्गो द्वितीयके ।
छत्र-भङ्गस्तृतीये स्याच्चतुर्थे सर्व-पीडनम् ॥ १०

पञ्चमे देव-देवेशि ! सर्वत्र भूत-सङ्गमः ।
त्रि-त्रि-मास-क्रमेणैव पञ्च-षड्-वर्ष-योगतः ॥ ११
धूम्र-केतुर्यदा भूयात् तदा छत्रं विनश्यति ।
एवं विचार्य यत्नेन शान्तिकं च समाचरेत् ॥ १२
इति संक्षेपतः प्रोक्तो धूम्र-केतुर्विनिर्णयः ।
दिवा नक्षत्र-पातस्तु नक्षत्र-दर्शनं तथा ॥ १३
अहि-केतुस्तथा देवि ! दिवा चोल्का-प्रदर्शनम् ।
पौर्णिमायां नष्ट-चन्द्रः कार्तिक्यां तु विशेषतः ॥ १४
सप्त-विंशति-नक्षत्र-योगे दिङ्-मण्डलं तथा ।
मण्डलं पञ्च-भूतानां सप्तर्षीणां समागमे ॥ १५
अमायां चन्द्र-सन्दर्शः प्रलयस्य तु कारणम् ।
भू-कम्पः प्रतिमा-हासः तद्-भङ्गस्तु तथैव च ॥ १६
उल्का-पातो दिवा रात्रौ दुश्चिह्नानि महेश्वरि !
चिह्नान्येतानि दृष्ट्वा तु कारयेत् स्वस्ति-वाचनं ॥ १७
महोत्पातादिकं भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
छत्र-भङ्गो राष्ट्र-भङ्गो महा-मारी-भयं तथा ॥ १८
सर्वथा सम्भवत्येव येन लक्षणमुच्यते ।
मोरगं तु समासाद्य महा-म्लेच्छान्तकं शिवे ॥ १९
प्रोक्तस्त्वश्व-पतिर्देवि ! शृणुष्व गज-नायकम् ।
कोङ्कणान्तं समासाद्य आग्नेयान्तं महेश्वरि ॥ २०
प्रोक्ता गज-पतिर्देवि ! शृणुष्व नर-नायकम् ।
आ-पूर्व-पश्चिमं व्याप्य प्रोक्तो नर-पतिः प्रिये ॥ २१
सर्वेषां लक्षणं देवि ! कथितं शम्भु-ताण्डवे ।
दिन-होराभिधं चक्रं प्रवक्ष्यामि समासतः ॥ २२
रहस्याति-रहस्यं च गोप्याद् गोप्य-तरं शिवे !
यस्य विज्ञान-मात्रेण त्रैकाल्य-गोचरो भवेत् ॥ २३

मद्-भक्तोऽसि महा-देवि ! तस्मात् तत्ते वदाम्यहं ।
काल-कौशल-चक्रं च विष्णु-कौशलमेव च ॥ २४
युद्ध-कौशल-चक्रं च रुद्र-कौशलकं तथा ।
दिन-कौशल-चक्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २५
दिन कौशल-चक्रस्य विज्ञानी शिव एव हि ।
रेखाः पञ्च समास्फाल्य ततो दण्डाहतास्तथा ॥ २६
दिक्-क्रमः कथितो देवि ! विदिङ्-मार्ग-क्रमेण च ।
एवमष्टार्गलं चक्रं मुखं प्राच्यां समाचरेत् ॥ २७
प्रतीच्यां पाद-युग्मं स्याद् वेद-हस्ताभिधं ततः ।
गोल-वद् भ्रमणादेव तत्तन्नाम्ना मुखं भवेत् ॥ २८
नित्याः षोडश देवेशि ! प्रति-रेखागत-क्रमात् ।
पञ्चाशन्मातृका-वर्णाः सर्वाङ्गे यदि निश्चिताः ॥ २९
योगिनीनां चतुःषष्टिर्यथा-रेखा-क्रमेण तु ।
षट्-पञ्चाशद्-गणेशाश्च दीप-रेखा-समाश्रिताः ॥ ३०
केशवाद्या वैष्णवाश्च कारके परि-निष्ठिताः ।
कारकाणां च संख्या वै भुवनाख्या प्रकीर्तिता ॥ ३१
आधिपत्ये महा-देव-श्रीकण्ठाः परिकीर्तिताः ।
चतुर्दश-ग्रहास्तत्र चराचर-विभेदतः ॥ ३२
चराचर-विभेदेन चतुर्धा शशि-भास्करौ ।
अष्टाविंशति ऋक्षानि परिवर्त-क्रमेण च ॥ ३३
चराचर-विभागेन तत्र राशिं समाचरेत् ।
एवं तार्तीय-युग्मे तु नेत्र-युग्मं प्रकीर्तितम् ॥ ३४
पाद-स्थाने तु सर्वज्ञः त्रिधा भेदः प्रकीर्तितः ।
साम्मुख्यं वाम-दक्षश्च त्रिधा भागः प्रकीर्तितः ॥ ३५
अहो-रात्रेण देवेशि ! ग्रह-ऋक्ष-परिक्रमः ।
द्वे द्वे नाडीमभिव्याप्य सृष्टि-संहरणैः शिवे ॥ ३६

सृष्टि-मार्गेण सूर्यः स्यात् संहृत्या चन्द्र एव च ।
स्थूल-क्रमेण सर्वेशे ! प्रातरारभ्यते रविः ॥ ३७
सन्ध्यामारभ्य चन्द्रः स्याद् रात्रौ व्यत्यय एव च ।
विंशत् साहस्रकं सप्तशती षट्-त्रिंशदीरिताः ॥ ३८
दिन-कौशलकं व्याप्य परिवर्त-क्रमाच्छिवे !
फलं यच्छन्ति विश्वेशि ! ममाज्ञा-पालकाः सदा ॥ ३९
अन्येषां तु मते देवि ! सव्य-मार्गेण वर्तनम् ।
अथाष्टादश-सिद्धान्त उपाधिः परिकीर्तिता ॥ ४०
क्वचित् कदाचिन्मिलति भाग्य-योगान्न संशयः ।
सूर्योदये तु यो वारः स ग्रहः प्रातरेव तु ॥ ४१
केरले व्यङ्कटेशाख्ये सतां मतं मयेरितम् ।

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यं पूर्व-सूचितम् ॥ ४२

श्रीशिव उवाच—

क्षमा-पालो भवेद् दासः कविर्मूकस्तथा भवेत् ।
दीनत्वतां धनाधीशो वह्निः शैत्यत्वतां व्रजेत् ॥ ४३
महेन्द्रोऽपि विरूपः स्यान्मेधा-ग्रहणजं फलम् ।
साम्राज्य-मेधा-दीक्षायाः फलं प्रोक्तं पदान्तकम् ॥ ४४
नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
विद्या-न्यासाच्चिन्तनाच्च ब्राह्मणत्वं भवेच्छिवे ॥ ४५
युगानां तु सहस्रं हि तपस्या येन वै कृता ।
महा-विद्या-क्रमेणैव पञ्च-षोढा-क्रमेण च ॥ ४६
शक्ति-न्यास-क्रमेणैव नित्य-पूजा-क्रमेण च ।
एवं तपस्या-संयुक्तः पृथ्वी-पति-पदं लभेत् ॥ ४७
षट्-पञ्च-कोटि-चामुण्डा-पञ्चाशद्-गणपैर्युतम् ।
गदावर्त-समाक्रान्तं वाराह्यापि विभूषितम् ॥ ४८

अष्टोत्तर-शतं देवि ! वाराही-गण-संकुलम् ।
योगिनीनां चतुःषष्टि-कुलै सम्भूषितं पदम् ।। ४९
कालि-हृदय-मध्यस्थमिन्द्र-प्रस्थाभिधं पदम् ।
साम्राज्य-मेधा-दीक्षाद्यैर्भूषितो यो युगे युगे ।। ५०
तस्य हस्त-गतं देवि ! पदं भवति नान्यथा ।
तार्क्ष्य-ग्रहे महेशानि ! साम्राण्मेधा-युतश्चरेत् ।। ५१
मनोरथ-मयी सिद्धिर्यस्य हस्ते विराजते ।
इच्छा-सिद्धिस्तथा तारा यस्य राजति सर्वदा ।। ५२
काली वा सुन्दरी वापि प्रसन्ना यस्य चास्ति च ।
अङ्क-मन्त्रैः पताकाद्यैः कालीं विन्द्यात् पदादिकैः ।। ५३
पूर्वोक्त-रक्षकास्तस्य क्षीणश्चेन्नश्यति ध्रुवम् ।
पूर्वं कृत-युगे देवि ! देव-दैत्य-पुरोगमाः ।। ५४
आचार्य-द्वितयं कृत्वा राज्य-भोगं च चक्रतुः ।
भौमाचार्यो गुरुः प्रोक्तो शुक्रो दैत्य-गुरुः स्मृतः ।। ५५
मृत-सञ्जीविनी विद्या पर-काय-प्रवेशनम् ।
पर-विद्याकर्षणं च त्वस्त्राणां शतकं तथा ।। ५६
त्रयस्त्रिंशत्-कोटि-संख्या माया यद्धस्तगाः शिवे !
तत्-प्रीत्या तु महेशानि ! क्षणमेकं तु याचितः ।। ५७
अस्मिन् क्षणे जायमानाः सर्वे सिद्धा भवन्ति च ।
इति ज्ञात्वा महेशानि ! क्षणं दत्तं मया तदा ।। ५८
तत्काले ये च वै जातास्ते सिद्धाः सिद्धि-दायकाः ।
चतुरशीति सिद्धाश्च जातास्तत्काल-गोचराः ।। ५९
नव-नाथास्तथा जाता शुक्र-जन्म-क्षणे शिवे !
यस्य जन्म-क्षणे देवि ! जाता ये सिद्ध-रूपिणः ।। ६०
प्रत्यक्ष-रूपिणस्तस्य का कथा परमेश्वरि !
तस्य निग्रह-कर्ता तु भूमौ कोऽस्ति सुरालये ।। ६१

नागालये वा देवेज्ये त्रैलोक्य-विजयी स तु ।
तस्य निग्रह-कर्ता तु न च कोऽप्यस्ति भू-तले ।। ६२
त्रैलोक्य-विजयास्त्रं च यस्य हस्ते विराजते ।
नाम-पारायणं देवि ! मन्त्र-पारायणं तथा ।। ६३
खेचरी-संयुतो यो हि स्तम्भकः शशि-सूर्ययोः ।
कालानलास्त्र-सम्पन्नस्तस्य निग्रह-कारकः ।। ६४

।। इति शुक्रः ।।

शिव-पूजा-रतः पूर्वं त्रिंशद्-वर्ष-युगं शिवे !
प्रत्यहं करवीरेण पूजा-कारी महेश्वरि ।। ६५
तदा तुष्टो महा-देवस्त्विदं वचनमब्रवीत् ।
निधीनां नवकं दत्तमिन्द्राद्यास्तव पूजकाः ।। ६६
कुबेरस्त्वं सुराध्यक्ष ! मम हारि सदा वस ।
निधि-नाथस्य पदवी तदा दत्ता मया शिवे ।। ६७
धनदा कमला सौख्यं लक्ष्मीस्तत्र वसेत् सदा ।
नर-शास्तास्तथा यक्षा यक्षिण्यः किन्नरी-गणाः ।। ६८
तव सेवां प्रकुर्वन्ति धनेशस्त्वं भव प्रिय !
एवं तस्य वरो दत्तो मया पूर्वं महेश्वरि ।। ६९
तस्य विग्रह-कर्ता तु को वा भुवन-मध्यगः ।
श्रीक्रोध-मण्डलं देवि ! यस्य हस्ते विराजते ।। ७०
मन्त्र-मण्डलकं देवि ! महा-मण्डलमेव च ।
विद्या-मण्डलकं वापि पार्षन्मण्डलमेव च ।। ७१
षट्-शाम्भव-युतो यो हि तस्य निग्रह-कारकः ।
महा-क्रोधांकुशेनैव धनदां ताडयेच्छिवे ।। ७२
धनदा तु कुबेरस्य निधनत्वं करिष्यति ।

।। इति धनेशः ।।

महा-काल्या महेशानि ! तार्तीये स्थापितस्तु यः ।। ७३

तार्तीय-नेत्र-रूपस्तु वह्निरित्यभिधीयते ।
वीर-भद्रस्तथा रुद्रः क्रोधः कालान्तकेति च ॥ ७४
प्रलयाद् वस्तु-संहार-पर्यायाः कीर्तिता मया ।
यद्यत् कार्यं समायाति तत्तद्-रूपेण वर्तते ॥ ७५
श्रीकाल्याः प्रेर्यमाणस्तु तत्तद्-रूपेण वर्तते ।
काली-क्रोधात् समुद्भूतो देवता-मुख-वाचकः ॥ ७६
तस्मिन् हुतं च दत्तं च सर्वं भस्म भविष्यति ।
स एव बाडवाग्निस्तु तत्तत् कार्य-वशाद् भवेत् ॥ ७७
अग्निं विना महेशानि ! न देवि न महेश्वरः ।
कीटाद् ब्रह्माण्ड-पर्यन्तं वह्निः सर्वत्र तिष्ठति ॥ ७८
काली-श्मशान-सम्भूतः काल्या नेत्रे नियोजितः ।
संहार-समये प्राप्ते काल्या सम्प्रेरितः शिवे ॥ ७९
ब्रह्माण्डं भस्मसात् कृत्वा ज्वाला-माला-समाकुलः ।
अनादि-सृष्टि-रूपाया महा-मायाद्य-चण्डिका ॥ ८०
श्रीमत्-सिद्धि-कराली या गुह्य-काली तु या परा ।
काल-काली तु या प्रोक्ता महा-काम-कला तु या ॥ ८१
स्व-राज-दन्ते देवेशि ! ब्रह्माण्डं स्थापितं तया ।
अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्डं राज-दन्ते विराजते ॥ ८२
दन्तेषु राजते यस्माद् राज-दन्ताविति स्मृतौ ।
त्रैलोक्य-चर्वकौ दन्तौ मम कार्य-करावुभौ ॥ ८३
तेन कारणतो देवि ! राज-दन्तौ प्रकीर्तितौ ।
इच्छा-शक्त्या तया देवि ! सृष्टिरुत्पादिता पुनः ॥ ८४
तदा वह्निर्महेशानि ! स्व-नेत्रे स्थापितस्तदा ।
अष्टोत्तर-शतं वह्नेः षोडशोत्तरगं रवेः ॥ ८५
शतं षट्-त्रिंशत्-सोमस्य नेत्र-त्रितयकं शिवे !
एता एव कला देवि ! शाम्भवादौ प्रयोजिताः ॥ ८६

ईदृग्-विधो महेशानि ! वह्निरुक्तो मया तव ।
तस्य निग्रह-कर्ता च ब्रह्माण्डे कोऽस्ति वै प्रिये ॥ ८७
नव-चक्रोपासको यः षट्-चक्रोपासकोऽपि वा ।
साम्राज्य-शाम्भवाक्रान्तः पञ्चास्त्र-साधने रतः ॥ ८८
दश-विद्या-मयी या तु तस्योपासन-तत्परः ।
दिवा-रात्रि-व्यत्ययं तु यः कर्तुं भवति क्षमः ॥ ८९
स वह्नेर्निग्रहे शक्तो भवत्येव न चान्यथा ।

॥ इति वह्निः ॥

षट्-त्रिंशत्-कोटि-देवानामीश्वरो यस्तु कीर्तितः ॥ ९०
स देवेन्द्र इति ख्यातो महा-साम्राज्य-दायकः ।
निखर्व-वारं देवेशि ! श्रीविद्योपास्ति-तत्परः ॥ ९१
ततः शाम्भव-सम्पन्नो मेधा-दीक्षा-युतस्ततः ।
रश्मि-मण्डल-संयुक्तः साम्राज्य-मण्डलान्वितः ॥ ९२
चक्र-पारायणासक्तो यन्त्र-पारायणान्वितः ।
कला-युग्म-सहस्राणां कादि-हादि-क्रमेण च ॥ ९३
एतद्-युक्त-तपस्या तु येन यम-युगं कृता ।
तेनेदं प्राप्यते देवि ! पदमिन्द्राभिधं शिवे ॥ ९४
पञ्च-रत्नं समासाद्यं वीर-साधन-तत्परः ।
तस्य हस्त-गतं देवि ! पदमिन्द्राभिधं भवेत् ॥ ९५
नव-कोटि-महा-मन्त्रैः समाक्रान्तं शिवे ! पदम् ।
तद्-रक्षका महेशानि ! पञ्चाशत्-कोटि-भैरवाः ॥ ९६
क्रोध-राजस्तु शरभस्तथा प्रत्यङ्गिरा शिवे !
अनन्त-कोटि-मन्त्रैश्च रक्षितं तत्पदं शिवे ॥ ९७
प्राप्तिस्त्विन्द्र-पदस्याथ नाल्पस्य तपसः फलम् ।
तस्य निग्रह-कर्ता तु कोऽस्ति क्वापि चराचरे ॥ ९८
क्रूर-कर्म-करत्वाच्च राक्षसाः परिकीर्तिताः ।
ब्रह्माण्ड-गोलके या च या काचिज्जगती-तले ॥ ९९

समस्ताः सिद्धयो देवि ! यस्य हस्त-गताः सदा ।
स एव निग्रहं कर्तुं शाक्तो भवति नान्यथा ॥ १००
अञ्जन-खेचरी-खड्ग-वेताल-गुटिकास्तथा ।
चन्द्र-सूर्य-सहस्राणि साधको यः करोति च ॥ १०१
सुन्दरी-कालिका-तारा यस्य गेह-गताः सदा ।
देवेन्द्र-निग्रहे शक्तिस्तस्य वै भवति ध्रुवम् ॥ १०२
नराय न प्रकाश्यं स्यात् किमन्यद् बहु-जल्पनम् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कालिका-सिद्धि-लक्षणम् ॥ १०३
कादि-हादि-मतत्वेन प्रोक्तमेतन्मया तव ।
गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनिरपरा यथा ॥ १०४

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि जीव-क्रीडा-विनिर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि जीव-न्यास-विनिर्णयम् ॥ १०५
जीव-न्यासः पञ्चधा स्यात् बीज-स्त्री-दक्ष-सागराः ।
कालानल-क्रमेणैव प्रोक्तः पञ्च-विधः शिवे ॥ १०६
गौड-केरल-काश्मीर-क्रम-भेदेन पार्वति !
देव-देहे च पुत्तल्यां षष्ठी चन्द्र-विनिर्णयः ॥ १०७
गाणपे चैव पुत्तल्यां शिव-लिङ्गे च पार्वति !
पार्थिवाभिध-दुर्गायां यथा-लिङ्गेन योजयेत् ॥ १०८
काश्मीराख्य-क्रमे देवि ! षष्ठी वह्नि-विभूषिता ।
बहुत्वादि-क्रमे देवि ! क्रम एषः प्रकीर्तितः ॥ १०९
गौडे द्वयं तु साम्यं स्यादित्यागमेषु गोपितम् ।
केरलाख्य-क्रमे देवि ! षष्ठी चन्द्रेण योजयेत् ॥ ११०
द्वि-त्रि-रुद्र-शतान्ते तु ग्रह - दोष-निवारणे ।
विंशद्-दिनं पूजयेद्धि सर्व-ग्रह-निवारणम् ॥ १११

एक-विंशति सम्पूज्य सर्व-पापैः प्रमुच्यते !
शतं सम्पूजयेन्नित्यं सर्व-कामांल्लभेच्छिवे ॥ ११२
सहस्र-पूजनाद् देवि ! दुर्भगः सुभगो भवेत् ।
सहस्र-त्रितयं पूज्य सर्व-कार्य-क्षमो भवेत् ॥ ११३
एवं लक्षादि सम्पूज्य सर्व-सिद्धीश्वरो भवेत् ।
एक-द्वि-त्रि-विधौ देवि ! कोटिशोऽनन्त-रूप-धृक् ॥ ११४
शिवः संव्याप्य सर्वं तु सदा तिष्ठति पार्वति !
शिवस्य प्राणा इत्युक्त्वा पार्थिवे प्राण-योजनम् ॥ ११५
एकः शिवो महेशानि ! प्राणास्तु बह्वः शिवे !
शिवस्य प्राणाः सर्वत्र संव्याप्य सन्ति पार्वति ॥ ११६
पार्थिवेषु शिवः प्राणाः षष्ठी चन्द्र-समाङ्किते ।
काश्मीराख्य-क्रमो देवि ! कथितस्ते मया तव ॥ ११७
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः कर्ता निरंजनः ।
भस्मोद्धूलित-सर्वाङ्गो रुद्राक्ष-भूषिताङ्गकः ॥ ११८
सप्त-विंशति-रुद्राक्षाः सन्ध्या-वत् परिकीर्तिताः ।
उक्त-संख्या महेशानि ! स्नान-वत् परिकीर्तिताः ॥ ११९
सहस्र-मणयो देवि ! नैमित्तिक-विधौ शिवे !
द्वि-त्रि-वेद-सहस्राणि रुद्राक्षान् धारयेत् प्रिये ॥ १२०
रुद्राक्ष-मण्डलं कृत्वा तूत्तमाधम-मध्यमः ।
रुद्राक्ष-भूषितो भूत्वा रुद्र-तुल्यः क्षणाद् भवेत् ॥ १२१
मस्तके त्रिगुणा धार्या द्विगुणा बाहु-मण्डले ।
यथेच्छया च सर्वाङ्गे उक्त-संख्या श्रुतौ शिवे ॥ १२२
रुद्राक्ष-धारणे देवि ! विशेषान्नियम-द्वयम् ।
स्त्री-द्विष्टं गुरु-शप्तं च तत्-संसर्गं न कारयेत् ॥ १२३
नेत्र-त्रयात् समुत्पन्ना रुद्राक्षास्त्रिविधाः कलौ ।
धन-श्रीर्दक्ष-नेत्रे स्यात् मोरङ्गोऽन्यस्तु चोत्तरः ॥ १२४

तृतीयस्तु मलाकी स्यान्नाग्निर्दहति तत्तनुम् ।
रुद्र-चक्षुः समाख्याता रुद्राक्षाः परिकीर्तिताः ॥ १२५
रुद्राक्ष-मण्डपे स्थित्वा यं यं मन्त्रं जपेच्छिवे !
स एव सिद्ध-रूपः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १२६
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं कृत्वा स्थाप्य जपेन्मनुम् ।
रुद्राक्ष-मण्डपे देवि ! पूजयेत् सिद्धि-हेतवे ॥ १२७
रुद्राक्ष-मण्डपे देवि ! द्विधा श्रीचक्र-पूजनात् ।
श्रीविद्या-रूपमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ १२८
द्विविधत्वं प्रवक्ष्यामि येन देवी-मयो भवेत् ।
चत्वारि शिव-चक्राणि शक्ति-चक्राणि पञ्च च ॥ १२९
भूपुरं गुण-रेखा च नाग-युग्म-दलानि च ।
ततो नाग-दलं देवि ! शिव-चक्राणि पार्वति ॥ १३०
मन्वस्त्रं दिग्युगास्त्रं च त्वष्टास्त्रं च त्रिकोणकम् ।
पञ्च वै शक्ति-चक्राणि दक्षिणामूर्ति-सम्मते ॥ १३१
आनन्दभैरव-मते शक्ति-शैवानि संश्रृणु ।
चतुः श्रीकण्ठ-संयुक्तैः शिव-रामादि पञ्चभिः ॥ १३२
परस्पर-प्रभिन्नाभिः शम्भोः प्रकृतिभिर्नव ।
श्रीचक्र-सिद्धिमेतद्धि शिव-शक्त्यात्मकं महः ॥ १३३
अन्तर्गृहं बहिश्चैव गृहं तु द्विविधं शिवे !
चतुर्दशार-पर्यन्तमन्तर्गृहमिदं शिवे ॥ १३४
बहिर्गृहं त्वष्ट-दलाद् भूपुरान्तं प्रकीर्तितम् ।
चतुर्दशार-पर्यन्तं श्रीचक्रं परिकीर्तितम् ॥ १३५
यथा परा-पूजनादौ बिन्दु-मध्ये गृहं शिवे !
तथान्तर्गृहमित्युक्तं सर्व-देव-प्रपूजिते ॥ १३६
रुद्राक्ष-मण्डपे देवि ! चक्र-द्वय-विचारणात् ।
सर्व-सिद्धीश्वरो भूयान्नात्र कार्या विचारणा ॥ १३७

तत्र पीठ-क्रमं ज्ञात्वा यन्त्रे शक्तिं प्रपूजयेत् ।

श्रीदेव्युवाच—

पीठ-कुम्भं प्रपूज्यं स्यात् तन्मे वद महेश्वर ॥ १३८
अधो मध्येऽथवा पूज्यं कुत्र वा परमेश्वर !
अथवोपरि पूज्यं वा कुत्र पूजा विधीयताम् ॥ १३९
तन्मे वद महेशान ! यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

पीठं तु पात्रमित्युक्तं पीठोपरि प्रपूजयेत् ॥ १४०
यन्त्रं चैतन्यमित्युक्तं पीठं चाधस्तनं भवेत् ।
यन्त्राधः पूजयेत् पीठं यन्त्रं मूर्ति-मयं शिवे ॥ १४१
मूर्तेरधो भवेत् पीठं मूर्तिः पीठोपरि प्रिये !
यन्त्राधः पूजयेत् पीठं यन्त्रं मूर्तौ निधापयेत् ॥ १४२
अत्र केचिदपीच्छन्ति यन्त्र-मध्ये प्रपूजनम् ।
शुभ-योगे शुभ-दिने महा-पर्वणि साधकः ॥ १४३
चन्द्र-सूर्य-ग्रहे वापि यन्त्र-स्थापनमाचरेत् ।
यन्त्र-संस्थापनं कार्यं चन्द्र-सूर्य-ग्रहे शिवे ॥ १४४
तद्-यन्त्रस्था देवता तु सहसा वर-दायिनी ।
चन्द्र-सूर्य-ग्रहे देवि ! यद्यत् कर्म करोति च ॥ १४५
तत्तदक्षयमायाति विद्या-राज्ञी - प्रसादतः ।
प्रमादान्मोहतो वापि पवित्रारोपणं प्रिये ॥ १४६
अधि-वासनकं कर्म न जानन् पूर्वमेव चेत् ।
तदा किंवा महेशानि ! तत् कार्यं वा विलोपयेत् ॥ १४७
लोपने चेत् महत्-पापं कार्यं यत्नेन शाङ्करि !
प्रथम-प्रहरे देवि ! ह्यधि-वासनमाचरेत् ॥ १४८
तृतीय-प्रहरे देवि ! पवित्रारोपणं चरेत् ।
प्रहर-द्वय-भेदेन ह्यधि-वासनमीरितम् ॥ १४९

कार्य-लोपो न कर्तव्यः सर्वथा हितमिच्छता ।
यन्त्राधि-वासनं कार्यमेवमेव प्रकीर्तितम् ॥ १५०
कर्म-लोपे क्रियमाणे देवता-शापमाप्नुयात् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं सम्प्रदाय-त्रये शिवे ॥ १५१
पुरश्चर्या त्रिधा देवि ! तत् क्रमं शृणु पार्वति !
दशाङ्गा केरले प्रोक्ता काश्मीरे वसु-संज्ञिता ॥ १५२
पञ्चाङ्गा गौड-मार्गे तु साम्राज्य-मण्डलं शृणु ।
कालिका-शाप-मुक्तिस्तु महा-कालश्च कुल्लुका ॥ १५३
तद्-गायत्री स्पर्श-मणिस्तारा तस्याश्च कुल्लुका ।
अक्षोभ्य-वटुकौ देवि ! तथा चैकाक्षरी शिवे ॥ १५४
तद् गायत्री तथा बाला तद्-गायत्री तथैव च ।
काम-विद्यामणिः कीलास्तद्-विद्या कुल्लुका तथा ॥ १५५
स्वर्णेशः क्षेत्रपालश्च तथैव छिन्नमस्तका ।
एकार्णा तस्या गायत्री ततः काम-कला शिवे ॥ १५६
तद्-गायत्री मधुमती तथा पद्मावती शिवे !
सम्पत्-सरस्वती चैव नवार्णा विजया तथा ॥ १५७
द्वात्रिंशदक्षरी विद्या त्रैलोक्य-विजया तथा ।
हेलका चार्द्र-पटिका मृत-सञ्जीवनी तथा ॥ १५८
......स्तम्भ-करी विद्या तथा कर्ण-पिशाचिनी ।
भ्रमरी-कुण्डली देवि ! तथा वै काल-सुन्दरी ॥ १५९
कर्ण-चण्डा तथामोघ-कर्णाख्या तु पिशाचिनी ।
महा-कर्ण-पिशाची च तथा स्वप्नेश्वरी शिवे ॥ १६०
स्वप्न-वाराहिका विद्या द्वितीया महती शिवे !
श्रीमहा-रक्त-चामुण्डा त्रिपुराकर्षणी तथा ॥ १६१
चिटि-विद्या महेशानी कमलाक्षी ततः परम् ।
आकर्षणी महा-काली श्रीविद्याकर्षिणी तथा ॥ १६२

वशीकरण-काली च महा-नील-सरस्वती ।
नकुली बगला विद्या तद् गायत्री च कुल्लुका ॥ १६३
वसोर्धारा च धूमेशी तथा मारण-कालिका ।
त्रैलोक्य-मोहिनी चैव श्रीमहा-कुल-हारिणी ॥ १६४
सुरतेशी किन्नरी च रञ्जकी तदनन्तरम् ।
वशीकरण-ताम्बूला द्वितीयाऽपि तथैव च ॥ १६५
क्षिप्र-कामिनिका विद्या काली कामकला शिवे !
ताम्बूलाकर्षिणी विद्या द्वितीया मुख-मार्जनी ॥ १६६
श्रीविद्या कुल्लुका चैव दीपिनी च महेश्वरी ।
कालिका दीपिनी चैव महा-मण्डलमेव च ॥ १६७
खड्ग-वारण-विद्या च भूत-रुद्र-महांकुशा ।
प्रत्यङ्गिरेति देवेशि ! साम्राज्य-मण्डलं मतम् ॥ १६८
जप-पूजा जपश्चैव ध्यानं चैव तथा जपः ।
पुनर्ध्यानं बलिश्चैव नैवेद्यं च विसर्जनम् ॥ १६९
कुमारी-पूजनं होमो बलिदानं च भोजनम् ।
पुनर्जपो महेशानि ! साम्राज्य-मण्डल-क्रमः ॥ १७०
क्रूर-चण्डा क्रूर-जटा उग्र-घण्टा तथैव च ।
एते विज्ञाय यत्नेन साधयेत् सिद्धि-साधनम् ॥ १७१
जपेन पुटिता पूजा पूजया पुटितो जपः ।
अन्योन्य-पूजनं कृत्वा साधयेद् वीर-साधनम् ॥ १७२
पूजा-युक्तं जपेन्मन्त्रं न मन्त्रं केवलं जपेत् ।
जप-युक्ता भवेत् पूजा न पूजा केवला भवेत् ॥ १७३
इति संक्षेपतः प्रोक्तं गोपनीयं स्व-योनिवत् ।

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव महादेव ! विश्व-सिद्धि-परायण ॥ १७४
चराचरमिदं सर्वं त्वन्मुखाद् विश्रुतं मया ।
इदानीं वद सर्वज्ञ ! भूतानां निग्रहो महान् ॥ १७५

श्रीशिव उवाच--

रहस्याति-रहस्यं च कथं तत् प्रवदाम्यहम् ।
तथापि तव सम्प्रीत्या कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ १७६
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च राक्षसा ब्रह्म-राक्षसाः ।
भूत-प्रेत-ग्रहाश्चैव तथा बाल-ग्रहाः शिवे ॥ १७७
कश्मलाश्च निवाताश्च डाकिनी शाकिनी तथा ।
याकिनी राकिनी चैव हाकिनी लाकिनी तथा ॥ १७८
काकिनी प्रमुखाश्च कोटिशः भैरवेरिताः ।
रुद्र-ग्रहास्तथा विष्णु-ग्रहा ब्रह्म-ग्रहास्तथा ॥ १७९
कृत्य-ग्रहास्तथा देवि ! कूष्माण्डा यक्षिणी-ग्रहाः ।
काम-ग्रहा मदोन्मादास्तथोन्मत्त-ग्रहाः शिवे ॥ १८०
जल-ग्रहास्तथा सर्वे ग्रहाश्चेटक-पूतनाः ।
स्कन्द-ग्रहा महेशानि ! तथा वैनायिकाः शिवे ॥ १८१
धन-ग्रहास्तथा देवि ! तथा देव-ग्रहा अपि ।
यक्षाश्च दानवा दैत्या वेतालाः किन्नरी-गणाः ॥ १८२
भूतिन्यप्सरसश्चैव तथैव नागिनी-ग्रहाः ।
एवमादि-ग्रहादीनां नाशनं येन जायते ॥ १८३
शूलिनी शरभश्चैव शिव-पञ्चाक्षरी तथा ।
नव-दुर्गा बहिर्बन्धस्तथान्तर्बन्ध एव च ॥ १८४
सुभ्रूणश्च महेशानि ! तथैव खड्ग-वारणः ।
महा-विद्या-मण्डलं च महा-मण्डलमेव च ॥ १८५
हनुमान् भैरवश्चैव बटुकः क्रोध-भैरवः ।
प्रत्यङ्गिरा वीर-भद्रस्त्रैलोक्य-विजया तथा ॥ १८६
नारसिंहो महेशानि ! महा-शरभ-शूलिनी ।
चण्ड-काली भद्र-काली प्रोक्ता रुद्र-महांकुशा ॥ १८७
महा-पाशुपतास्त्रं चाघोरास्त्रं च तथैव च ।
एते मन्त्रा मया प्रोक्ता शाबर-द्वय-योगतः ॥ १८८

ब्रह्म-राक्षस-वेताल-कृत्यादौ खड्ग-वारणे ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः प्रेतापस्मार-नाशने ॥ १८९
यातुधान-विनाशे तु तथा किम्पुरुषादिके ।
शरभो हनुमान् देवि ! विरूपाक्षोऽङ्गिरा अपि ॥ १९०
भूत-प्रेत-पिशाचादि क्रूर-ग्रह-निवारणे ।
शूलिनी नव-दुर्गा च तथा पञ्चांगुलिः प्रिये ॥ १९१
कूष्माण्ड-डाकिनी-नाशे प्रेतापस्मार-नाशने ।
वीर-भद्रः शिवः प्रोक्तः सर्व-नाशे तु तद्-गणाः ॥ १९२
सर्वेषां नाशने शान्तौ प्रीतावपि महेश्वरि !
महा-विद्या-मण्डलं च बन्ध-द्वय-समन्वितम् ॥ १९३
महा-विद्या मण्डलेन किं तद् यन्त्र करे स्थितम् ।
गोपनीयं गोपनीयं गोप्नीयं प्रयत्नतः ॥ १९४
रहस्याति-रहस्यं च स्व-योनिरपरा यथा ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १९५

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यमपरं वद ।

श्रीशिव उवाच—

आवेशं भैरवादीनां निग्रहो येन जायते ॥ १९६
तेनैव शक्यते कर्तुं नान्यथा शाङ्करं वचः ।
तन्मूल-विद्या-योगेन किंवा सिद्ध्यति पार्वति ॥ १९७
नृसिंहानां भैरवाणां तथा हनुमदादिके ।
श्रीवीर-वायु-पुत्रेण खड्ग-वारणतः शमः ॥ १९८
रक्तप-भैरवादीनां शास्ता श्रीभैरवेश्वरः ।
दामिनीनां तथेष्टानां महेष्टानामपि प्रिये ॥ १९९
निग्रहे वीर-काली तु किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

श्रीदेव्युवाच—

अथ वै कुल्लुकोत्पत्तिं कथयस्व ममाधुना ॥ २००

श्रीशिव उवाच—

रहस्यमपि देवेशि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
कुल्लुका च तथा सेतुर्महा-सेतुस्तथैव च ।। २०१
निर्वाणं कुण्डली षष्ठी सर्वोत्पत्ति शृणु प्रिये !
विद्यानां कुल-पूज्यत्वात् कुल्लुका तेन कीर्तिता ।। २०२
विद्या-सम्बन्धि-दोषाणां भक्षयित्री यतः शिवे !
तेनेयं कुल्लुका नाम कालि-नित्या तृतीयका ।। २०३
कुल्लैव कुल्लुका नाम्नी नीला नील-सरस्वती ।
विद्या-सिद्धयर्णवे देवि ! पारं प्रगच्छति ।। २०४
तेन सेतुर्महेशानि ! विद्या मार्गः प्रकीर्तितः ।
महा-विद्याप्ति-सन्दर्शी महा-सेतुर्महेश्वरि ।। २०५
महा-विद्यार्णवस्याथ चैतन्यस्य प्रदर्शकः ।
महा-सेतुर्महादेवि ! महा-विद्या-स्वरूप-धृक् ।। २०६
देवतायास्तु निर्वाणं चैतन्यं यच्च कीर्तितम् ।
निर्वाणं कथितं भद्रे ! विद्या-वाक्-मातृकार्णकैः ।। २०७
निर्वाणं परमेशानि ! सेतुश्चरण-रूप-धृक् ।
निर्वाणं तु महेशानि ! पर-ब्रह्मात्मता शिवे ।। २०८
चतुर्थं कथितं भद्रे ! विद्या-चरणमीरितम् ।
पञ्चमी कुण्डली देवी यथा-वदवधारय ।। २०९
मूलाधाराद बिलान्तं च विष-तन्तु-स्वरूपिणीम् ।
सर्व-देव-स्वरूपां च सर्व-वर्ण-प्रदीपिनीम् ।। २१०
महा-कुण्डलिनीं देवीममरीं कुण्डलीं पराम् ।
प्रथमं कालिका-देव्याः कुल्लुका पञ्चमी परा ।। २११
काली कूर्चं वधू माया फडन्ता परिकीर्तिता ।
तारायास्त्र्यक्षरी नीला छिन्ना चाष्टाक्षरी भवेत् ।। २१२
वज्र-वैरोचनीये च अन्ते वर्म प्रकीर्तितम् ।
हैस्त्रैं बीजं तु भैरव्याः कुल्लुका परिकीर्तितम् ।। २१३

श्रीमत्-त्रिपुरसुन्दर्याः कुल्लुका द्वादशाक्षरी ।
वाग्भवं काम-राजं च लज्जां च त्रिपुरेति च ।। २१४
भगवति ततः स्वाहा कुल्लुका त्रिपुरा-मनोः ।
अन्यासां प्रणवं तारा कूर्चेति त्र्यक्षरी मता ।। २१५
अघोरश्च विरूपाक्षः छिन्नाया द्वार-देवताः ।
क्रमेण कुल्लुकादीनां ऋषयः परिकीर्तिताः ।। २१६
छन्दः स्व-स्व-देवताया बीज-शक्त्यादिकं तथा ।
पुरश्चर्यादिकं देवि ! कर्तव्यं स्व-स्व-मूल-वत् ।। २१७
महा-कुण्डलिनीं वक्ष्ये सर्व-तन्त्रेषु गोपिताम् ।
प्रणवं च तथा जूँ सः काल-मूर्ति-पदं ततः ।। २१८
काल-प्रबोधिनि-पदं कालातीते-पदं वदेत् ।
काल-दायिनि-शब्दान्ते कपाल-पात्र-धारिणि ।। २१९
अमरीति कुण्डलिनि जूँ सः वं च त्रयं तथा ।
सोऽहं स्वाहा महेशानि महा-कुण्डलिनी-मनुः ।। २२०
चिन्तयेत् कुण्डलीं देवीं मूल-चूलि-निवासिनीम् ।
तदधः काम-राजं च सा प्रोक्ता स्पर्श-सुन्दरी ।। २२१
महा-काम-कला-रूपां काकिनी-मूर्ध्नि संस्थिताम् ।
सेत्यादिकं पूर्वमुक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। २२२

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि पूर्वोक्तं यद् रहस्यकम् ।

श्रीशिव उवाच—

किं तद् रहस्यं देवेशि ! प्रकाशय ममाधुना ।। २२३

श्रीदेव्युवाच—

महा-कालादि-नित्यानां निर्णय-द्वितयं वद ।

श्रीशिव उवाच—

महा-कालं समारभ्य नित्यानां निर्णयं शृणु ।। २२४

महा-कालो महा-भीमः प्रलयानल-सन्निभः ।
काली-माया-समुद्भूतः काली-मानसिकः शिवः ॥ २२५

महा-कालः पर-शम्भुः परातीत-गुणाकरः ।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन रक्ष्यं जगत्-त्रयम् ॥ २२६

कूर्च-युग्मं महा-काल प्रसीदेति पद-द्वयम् ।
लज्जा-युग्मं वह्नि-जाया-संयुक्तः षोडशार्णकः ॥ २२७

षोडशार्णा यथा मुख्या सर्व-श्रीचक्र-मण्डले ।
तथायं सर्व-कालीषु महा-कालः प्रकीर्तितः ॥ २२८

कालिकाऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्दः प्रकीर्तितं
देवता तु महा-कालः सर्व-रूपी निरञ्जनः ॥ २२९

कूर्चं बीजं तथा माया शक्तिरत्र प्रकीर्तिता ।
स्वाहा कीलकमुद्दिष्टं काल्यर्थे विनियोगिता ॥ २३०

मायया तु षडङ्गानि ध्यानं शृणु वरानने !
कोटि-कालानलाभासं चतुर्भुजं त्रिलोचनम् ॥ २३१

श्मशानाष्टक-मध्यस्थं मुण्डाष्टक-विभूषितम् ।
पञ्च-प्रेत-स्थितं देवं त्रिशूलं डमरुं तथा ॥ २३२

खड्गं च खर्परं चैव वाम-दक्षिण-योगतः ।
बिभ्रतं सुन्दरं देहं श्मशान-भस्म-भूषितम् ॥ २३३

नाना-शवैः क्रीड-मानं कालिका-हृदय-स्थितम् ।
लालयन्तं रतासक्तं घोर-चुम्बन-तत्परम् ॥ २३४

गृध्र-गोमायु-संयुक्तं फेरवी-गण-संयुतम् ।
जटा-पटल-शोभाढ्यं सर्व-शून्यालय-स्थितम् ॥ २३५

सर्व-शून्यं मुण्ड-भूषं प्रसन्न-वदनं शिवम् ।
भावयेत् परमेशानि ! रति-यन्त्रं तु पञ्च च ॥ २३६

त्रिकोण-संज्ञा योनिः स्यात् तच्चक्रं काल-चक्रकं ।
योनौ वा हृदये भाले कामिन्याः स्तन-मण्डले ॥ २३७

महा-कालं यजेद् देवं पञ्चावरण-संयुतम् ।
त्रिकोणे पूजयेद् देवि ! त्रिकोणं कालिकादिकं ॥ २३८
षड्-दले तु षडङ्गानि नाभौ दिक्-शक्तयो मताः ।
हृदये द्वादशादित्याः कण्ठे षोडश-नित्यकाः ॥ २३९
द्वि-पत्रे परमेशानि ! महा-कालीं प्रपूजयेत् ।
......देवि ! तां देवीं पूजयेद् विभूम् ॥ २४०
शक्तिं स्वाभिमुखीं कृत्वा पूजयेत् कालिकां पराम् ।
मूलाधाराद् द्वि-पत्रान्तं यथा चक्राणि कारयेत् ॥ २४१
पूजयेत् परमेशानि ! गुरु-पूजा-पुरःसरम् ।
पात्रासादनकं कृत्वा काली-वत् परिपूजयेत् ॥ २४२
एवं पूजां विधायाऽथ लक्ष-संख्यं जपेच्छिवे !
तद् दशांशेन हवनं करवीर-प्रसूनकैः ॥ २४३
स्वयम्भुवाक्तैर्वीजाक्तैः कारणाक्तैश्च वा हुनेत् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कालो-वत् सर्वमाचरेत् ॥ २४४
अन्तर्धान-करी काली विद्याया विधिरुच्यते ।
मूर्तिं ध्यानोदितां ध्यात्वा सर्वावयव-शोभिताम् ॥ २४५
मूलाधारे गणपतिं लिङ्गे गणप-वल्लभाम् ।
नाभौ वटुक-नाथं च हृदि बटुक-वल्लभाम् ॥ २४६
कण्ठे उड्यान-पीठं च भ्रुवि प्रदीप्त-मङ्गलाम् ।
ललाटे करवीरं च अलके क्षेत्र-पालकम् ॥ २४७
मूर्ध्नि वै कालिकां चैव चतुर्थ्यन्तां प्रपूजयेत् ।
मूर्ध्नि व्योमैश्वर्यम्बां च ललाटे खेचरीं तथा ॥ २४८
भ्रू-मध्ये दिक्-चरीं चैव हृदये गोचरीं तथा ।
नाभौ च भू-चरीं चैव लिङ्गे च खग-मूर्तिकाम् ॥ २४९
मूल-पत्रे विचित्रां च पूजयेत् साधकोत्तमः ।
तथा ललाटे सूर्यं च दक्ष-नेत्रे कलाधिपम् ॥ २५०

वैश्वानरं वाम-नेत्रे कण्ठे च कालिकां तथा ।
हृदये दास-योनिं च नाभौ च दास-सिद्धकम् ॥ २५१
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराह्यैन्द्री च चामुण्डा महालक्ष्मी परा मता ॥ २५२
मन्थान-भैरवश्चैव षट्-चक्र-भैरवस्तथा ।
फट्-कार-भैरवश्चैव विभक्ष-भैरवस्तथा ॥ २५३
वीरेश-भैरवश्चैव श्रीमत्-त्रिपुर-भैरवः ।
हंस-गर्भ-भैरवश्चैव चण्डिकेश्वर-भैरवः ॥ २५४
मूर्ध्नि ललाटे कण्ठे च हृदये नाभि-मण्डले ।
लिङ्गे च मूलाधारे च सर्वाङ्गे पूजयेत् सुधीः ॥ २५५
यथा-शक्ति जपेद् विद्यां बलिं दद्याद् यथा-विधि ।
ॐ ब्रह्मं (क्षें) च क्षेत्र-पाल इमं बलिं पदं वदेत् ॥ २५६
गृह्ण-युक् स्वाहया युक्तः क्षेत्र-पाल-बलिर्मता ।
इति पूजा-विधिर्देवि ! श्रीकाली-कालयोर्मता ॥ २५७
अन्तर्धान-विधौ देवि !......... मता ।
महा-काल-प्रसङ्गेन रहस्यमपि दर्शितम् ॥ २५८
गोपनीयं त्वया भद्रे ! रहस्याति-रहस्यकम् ।
गोपनीयं गोपनीयं स्व-योनिरपरा यथा ॥ २५९

द्वादशः पटलः

काली-नित्या

श्रीदेव्युवाच---

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।
अन्तर्धान-विधिः प्रोक्ता पर-काय-प्रवेशनम् ॥ १

श्रीशिव उवाच---

कथ्यते देव-देवेशि ! शृणु सावहिता भव ।
कुलाकुल-समुद्भूतममृतानन्दमर्चयेत् ॥ २
सूर्य-कोटि-समं मन्त्रं बादि-मध्ये व्यवस्थितम् ।
जपेत् कुलामृतं दत्वा.........समुद्भवम् ॥ ३
तथा कुले.........कुण्डली-दृढ़-बन्धनात् ।
आधारे पत्र-मध्ये च द्वि-पत्रे द्वि-पदालये ॥ ४
षोडशारे युते लिङ्गे द्वादशे मणिपूरके ।
हृदये दश-पत्रे च द्वादशार्धे चतुर्दले ॥ ५
कण्ठे भाले यजेद् देवि ! जिह्वा-ललन-संकुले ।
अबलागार-मध्ये तु ब्रह्मचर्य-व्रतो नरः ॥ ६
सङ्कल्पैर्धवलैर्वापि श्वेत-वस्त्रावगुण्ठितम् ।
गच्छति ब्रह्म-मार्गेण लिङ्ग-भेद-क्रमेण च ॥ ७
विसर्गस्थामृतं दिव्यं क्षीर-धारोपमं द्रवम् ।
पीत्वा कुलामृतं तत्र पुनरेव विशेत् कुलम् ॥ ८
पुनरेवाकुलं गच्छेद् द्वादशान्ते निवेदयेत् ।
सहस्रारे महा-चक्रे वाग्भवं पूर्ण-चन्द्रकम् ॥ ९
ब्रह्म-ग्रन्थिं ततो भित्वा पीत्वा सप्ताष्ट-धारया ।
लम्बिकाद् ब्रह्म-मार्गेण तालु-मूले प्रवेशयेत् ॥ १०

जिह्वामापूर्य तां विद्यां मातृका-वर्ण-रूपिणीम् ।
बहिर्गतां वर्ण-रूपां जिह्वाग्रे दीप-रूपिणीम् ।। ११
आमूलाद् ब्रह्म-रन्ध्रान्तं तथा जिह्वाग्र-देशगाम् ।
वाग्भवाद्यां महा-विद्यां दीपाकारां विचिन्तयेत् ।। १२
हस्तयोः पादयोर्विद्यां तथा नाडी-त्रयेषु च ।
आधारात्तु समुत्थाप्य वागीशीं द्वादशे नयेत् ।। १३
द्वादशाधारमादाय तद्-ग्रन्थिं परिभेदयेत् ।
तस्माज्जिह्वाग्रमादाय दीपाकारां विभावयेत् ।। १४
लक्षमेकं तत्र जप्त्वा सर्व-पापं विनिर्दहेत् ।
ततश्चराचरं सर्वं ज्ञात्वा सर्वज्ञतां नयेत् ।। १५
प्राणायाम-प्रभावेन जप-सिद्धिः प्रजायते ।
एक-विंशति-साहस्रं षट्-शताधिकमेव च ।। १६
प्रत्यहं जयते जीवो ब्रह्मानन्द-मयीं पराम् ।
उत्पत्तिर्जप आरम्भो भृतिरस्था निवेदनम् ।। १७
विना जपेन सततं जपो भवति सर्वदा ।
एवं जपं सुविज्ञाय गणेशादौ निवेदयेत् ।। १८
जीवात्मनः क्रमेणैव तथा च परमात्मनः ।
षट्-शतानि सहस्राणि षडेव च तथा पुनः ।। १९
षट्-सहस्राणि ततो सहस्रं चैतदेव हि ।
पुनः सहस्रं गुरवे क्रमेण विनिवेदयेत् ।। २०
आधारे स्वर्ण-वर्णेऽस्मिन् वादि-सान्तानि संस्मरेत् ।
विद्युत्-पुञ्ज-प्रभाभानि चिन्तयेत् मणिपूरके ।। २१
महा-नील-प्रभाभानि डादि-फान्तानि चिन्तयेत् ।
पिङ्ग-वर्णं-महा-वह्नि कर्णिकाभं विचिन्तयेत् ।। २२
कादि-ठान्तानि वर्णानि चतुर्थेनाहते स्मरेत् ।
विशुद्धे धूम्र-वर्णे तु रक्त-वर्णान् स्वरान् न्यसेत् ।। २३

आज्ञायां विद्युदाभायां शुभ्रौ ह-क्षौ विचिन्तयेत् ।
कर्पूर-द्युति-संराजत्-सहस्र-दल-पङ्कजे ॥ २४
नीलात्मकं ब्रह्म-रन्ध्रे चिन्तयेच्च ततः परम् ।
फलं चास्य प्रवक्ष्यामि षड्-चक्रेषु यथा-क्रमम् ॥ २५
आधारे भावनाभ्यासान्मन्त्र-सिद्धिः प्रजायते ।
""""च भावनाभ्यासाद् विद्या वीर्य-वती भवेत् ॥ २६
ततो ध्यायेन्नाभि-चक्रे विद्या-ज्ञानस्य हेतवे ।
देह-ज्ञानं लभेन्मन्त्री षण्मासाभ्यन्तरेण च ॥ २७
हृदब्जे भावनाभ्यासात् त्रिकालज्ञो नरो भवेत् ।
कण्ठे च भावनाभ्यासाद् देह-सिद्धिः प्रजायते ॥ २८
सूर्य-सत्वान्महा-योगी त्रैलोक्ये यद्-भवत्यपि ।
जानात्यहरहो मन्त्री त्रैलोक्ये च न संशयः ॥ २९
शिव-चन्द्र-समायोगाज्जाप्य शुक्रज्ञवान् भवेत् ।
उदानमभ्यसेन्नित्यं जल-स्तम्भन-हेतवे ॥ ३०
समानाभ्यासतो योगी वह्निनाऽपि न दह्यते ।
ततः सूक्ष्मो महा-भूतः सूक्ष्ममुत्तारयेदपि ॥ ३१
मनोजवो भवेन्मन्त्री कालिका-ध्यान-योगतः ।
देह-ज्ञान-प्रभावेन अन्तर्धानमवाप्नुयात् ॥ ३२
अन्तर्धान-प्रभावेन पर-देहं प्रवेशयेत् ।
अणिमाद्यष्ट-भावेशः कोटि-सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ३३
अलभ्यं लभते योगी महा-मन्त्रानुभावतः ।
इत्यादि सिद्धि-भावेषु वैराग्यं यदि जायते ॥ ३४
कैवल्यं लभते योगी काली-व्यापकतामियात् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३५

श्रीदेव्युवाच--

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि काली-नित्या-विनिर्णयम् ।

श्रीशिव उवाच---

कालो कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ॥ ३६
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ताऽथवा तथा ।
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रा मिता तथा ॥ ३७
नित्या-मण्डलमेतद्धि तत्-क्रमं शृणु शाम्भवि !
कालीनित्या च तन्मन्त्रः कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ३८
विष-वीजं तथा मायां कालीति युगलं वदेत् ।
महा-कालि पदं प्रोच्य कौमारीति पदं वदेत् ॥ ३९
मह्यं देहि पदं देवि ! ठठ-युक्ता मनुर्मता ।
ऊन-विंशाक्षरी विद्या काली-नित्या प्रकीर्तिता ॥ ४०
पर्शुरामो ऋषिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ।
देवता कालिका प्रोक्ता माया बीजं प्रकीर्तितम् ॥ ४१
कालिका च भवेच्छक्तिः ठ-युग्मं कीलकं भवेत् ।
कालिका-प्रीणनाद्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ४२
षडङ्गमाचरेद् देवि ! जाति-युक्तेन मायया ।
ततो ध्यायेन्महेशानि ! चिता-निर्वाण-मण्डले ॥ ४३
श्याम-वर्णा महा-भीमा घोर-रावा करालिनी ।
मुण्ड-माला-विभूषाढ्या दक्षे खड्गं प्रबिभ्रती ॥ ४४
तर्जनीं धारयन् वामे नृत्यन्ती प्रेत-भूमिषु ।
एवं ध्यात्वा महेशानि ! तद्-यन्त्रं शृणु पार्वति ॥ ४५
त्रिकोण-युग्मं देवेशि ! वृत्ताष्ट-दल-भूपुरम् ।
विन्दौ कालीं समाराध्य त्रिकोण-युग्मके पुनः ॥ ४६
गुण-त्रयं तत्पुरुषास्तच्छक्तयः क्रमात् मताः ।
ब्राह्मयादि-मातरश्चाष्टौ लोकपालाः सशस्त्रकाः ॥ ४७
भूपुरे पूजयेद् देवि ! धूम-दीपोपचारकैः ।
नैवेद्यं विविधं खाद्यं पञ्च-खाद्यं विशेषतः ॥ ४८

निवेदयेत् कालिकायै ततस्तुष्टा भविष्यति ।
नीराजनान्तं कृत्वाऽथ प्रजपेल्लक्ष-मात्रकम् ॥ ४९
दशांशं पायसेनैव होमं कुर्याद् विधानतः ।
अथवा करवीरेण होमयेत् सर्व-सिद्धये ॥ ५०
सर्व-सिद्धीश्वरो देवि ! भवत्येव न संशयः ।
मन्त्र-भेदान् प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ॥ ५१
नाम-त्रयं महेशानि ! प्रत्येकं प्रणव-क्रमात् ।
मन्त्र-त्रयं महेशानि ! वीज-त्रय-नियोजनात् ॥ ५२
विद्या-त्रयं पुनर्देवि ! ध्रुव-माया-नियोजनात् ।
विद्या-त्रयं महेशानि ! प्रत्येकं नवधा मनुः ॥ ५३
दुर्भगानां च दीनानां क्रूराणां पाप-कर्मिणाम् ।
मन्त्रमेनं न कथयेत् सर्वैश्वर्य-मयो भवेत् ॥ ५४
लक्ष्मीवान् कीर्तिमान् धन्यो भवेत् न संशयः ।
सुन्दरीं कामिनीं दृष्ट्वा तस्याश्चैव……वदेत् ॥ ५५
……शब्देन तद्-भङ्गं सा दासी मन्त्र-जापतः ।
व्याकुला सा भवत्येव स्वेच्छया भोगमेष्यति ॥ ५६
ललाटे हृदये विद्यां योनि-मध्ये यथा-क्रमम् ।
यस्याः सञ्चिन्तयेद् विद्यां तन्नाम-स्मृति-पूर्वकम् ॥ ५७
तामाकर्षयति क्षिप्रं किमन्यैर्बहु-जल्पितैः ।
साक्षात् स काली-पुत्रः स्यान्नात्रकार्या विचारणा ॥ ५८

श्री कुल्ला नित्या-यन्त्रम्

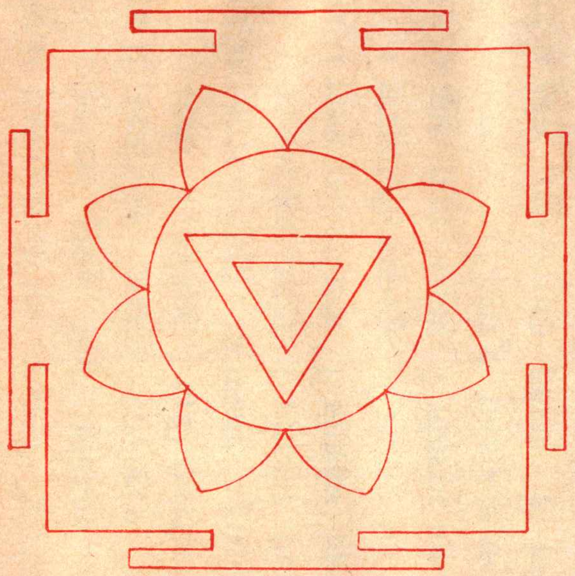

त्रिकोण-द्वयमुद्धृत्य वृत्ताष्ट-दल-भूषितम् ॥४२॥
चतुर्द्वार-समायुक्तं भूपुरैकेण संयुतम् ।

[पृष्ठ ११६]

श्री कुरुकुल्ला नित्या-यन्त्रम्

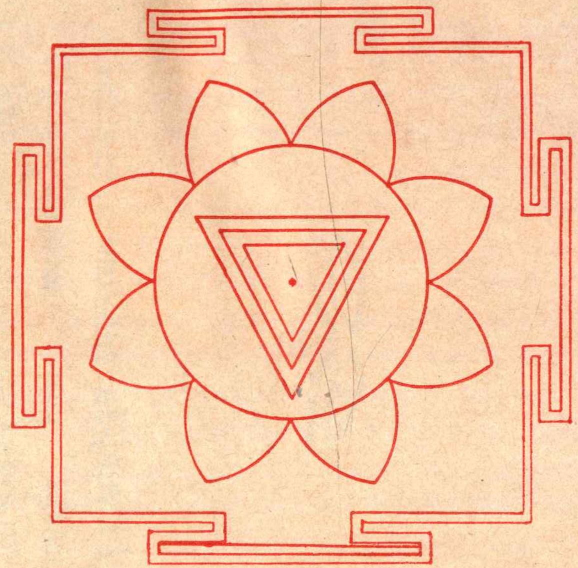

पूजयेत् कालिका-पीठे त्रिकोण-त्रय-सोज्ज्वले ।
वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुर-द्वय-शोभिते ॥२५॥

(पृष्ठ ११९)

श्री काली नित्या-यन्त्रम्

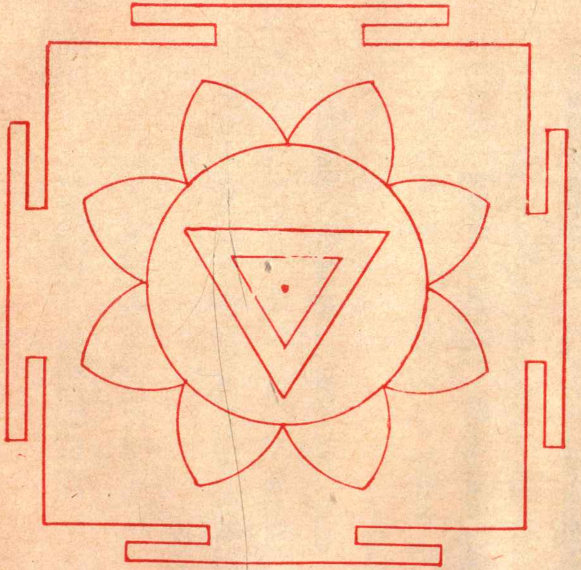

त्रिकोण-युग्मं देवेशि ! वृत्ताष्ट-दल-भूपुरम् ।
विन्दौ कालीं समाराध्य....................... ॥४६॥

[पृष्ठ १११]

श्री कपालिनी नित्या-यन्त्रम्

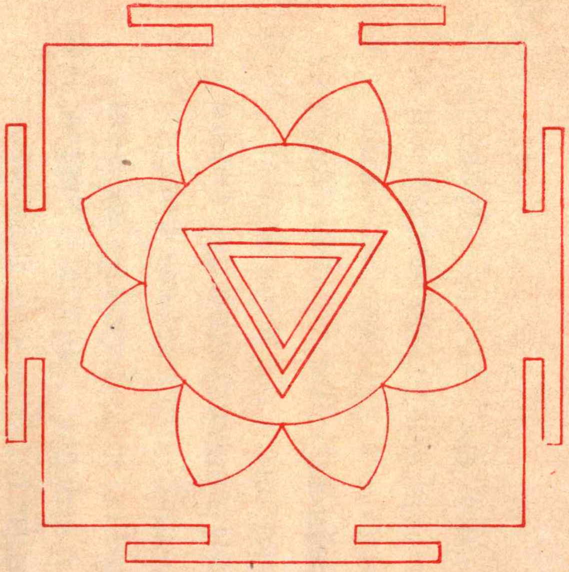

त्रिकोण-त्रितयं वृत्तं दलाष्टक-विभूषितम् ॥११॥
भूपुरेण समाकीर्णं चतुर्द्वारोप-शोभितम् ।

[पृष्ठ ११३-१४]

त्रयोदशः पटलः

कुल्ला-नित्या-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि कपालिन्या विधिं पराम् ।
नित्या द्वितीया देवेश ! प्रोक्ता कपालिनी परा ॥ १
तस्या मन्त्रं महेशान ! कथयस्व ममाधुना ।

श्रीशिव उवाच—

देवेशि ! कथ्यते गोप्यं यन्न कुत्रापि कीर्तितम् ॥ २
कपालिनी महा-विद्या द्वितीया तन्मनुं शृणु ।
आदौ सप्त-कुलं प्रोच्य कामं वह्नि-पदे स्थितम् ॥ ३
इन्दिरा-बिन्दु-भूषाढ्य-बीजं काली-स्वरूपकम् ।
कपालिनि महा-कपाल-प्रिय-मानसे वदेत् ॥ ४
कपाल-सिद्धि मे देहि हूं फट् स्वाहान्तको मनुः ।
त्रिंशद्-वर्णोऽर्ध-वर्णाढ्यो मन्त्र-राजो महोत्तमः ॥ ५
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् छन्द उदाहृतं ।
कपालिनी-देवताऽत्र कालिका-बीजमीरितम् ॥ ६
स्वाहा शक्तिः समाख्याता हूँ फट् कीलकमीरितम् ।
कपालिनी-सिद्धयेऽत्र विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७
षड्-दीर्घ-भाजा बीजेन कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ।
ध्यायेदञ्जन-पुञ्जाभामापीन-स्तन-युग्मकाम् ॥ ८
चन्द्र-वक्त्रां च बिम्बोष्ठीं मुक्त-केशीं दिगम्बराम् ।
चतुर्मुण्डोपरिगतां शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम् ॥ ९
खड्ग-त्रिशूल-वरदाभयान् हस्त-चतुष्टये ।
क्रमात् सम्बिभ्रतीं देवीं गीत-हास्य-परायणां ॥ १०
एवं सञ्चिन्तयेद् देवि ! नित्यां कपालिनीं परां ।
त्रिकोण-त्रितयं वृत्तं दलाष्टक-विभूषितम् ॥ ११

भूपुरेण समाकीर्णं चतुर्द्वारोप-शोभितम् ।
यन्त्रं कपालिनी-देव्याः सर्व-साम्राज्य-दायकम् ॥ १२
महा-कालीं महा-लक्ष्मीं महा-सरस्वतीं तथा ।
रतिं प्रीतिं तथा कान्तिं द्वितीये तु त्रिकोणके ॥ १३
इच्छां ज्ञानं क्रियां चैव त्रिकोणे तु तृतीयके ।
मध्ये कपालिनीं पूज्य दलेऽष्टौ मातृकार्चनम् ॥ १४
ततोऽष्टौ भैरवांश्चैव दिगीशान् शस्त्रकान् यजेत् ।
पञ्चोपचारैः सम्पूज्य कुलाचार-परायणः ॥ १५
साधकः प्रजपेल्लक्षं हयारि-कुसुमैर्हुनेत् ।
मांसेन मधुना चापि जुहुयादिष्ट-सिद्धये ॥ १६
तदा कपालिनी देवी सिद्धा भवति निश्चितम् ।
पुरश्चर्यां विना देवि ! कथं सिद्धा कपालिनी ॥ १७
मुण्डासने नरः स्थित्वा सदा तद्-गत-मानसः ।
महा-मालां महा-पात्रं महा-यन्त्रासनादिकम् ॥ १८
कृत्वा तु विधिवद् देवि ! तदा भवति साधकः ।
अथान्यदपि वक्ष्यामि कपालिन्याः पराक्रमम् ॥ १९
रण-वीर-कपालानि कुज-वारे निशा-मुखे ।
समाहृत्य महेशानि ! पञ्च पञ्च समन्वितः ॥ २०
दिग्बन्ध-भूत-शुद्धयादि-कपालाद्युपहारकैः ।
साधकः सहितो भूत्वा सिन्दूर-तिलकाङ्कितः ॥ २१
खड्ग-हस्तो दिशा-वासो मुक्त-केशो मुदान्वितः ।
ईदृशः साधकः सोऽहं-कृति-भाव-समन्वितः ॥ २२
सुदूरे साधकान् स्थाप्य पुष्प-वर्त्या घृताक्तया ।
दीपं संलापयेद् देवि ! जपेत् तत्र कपालिनीम् ॥ २३
भाग्यात् कपालिनी-सिद्धिः कदाचित् प्रभविष्यति ।
तथापि कालिका-भक्ते भविष्यति भविष्यति ॥ २४
कपालं भाग्य-योगेन कदाचिद् यदि लभ्यते ।
तदा कपालिनी-सिद्धिः कज्ज्वलं तद्धि संग्रहेत् ॥ २५

तत्-कज्ज्वलं कपाले तु कज्ज्वलं स्थाप्य वै जपेत् ।
सम्मोहनाञ्जनं नाम महदञ्जनमीरितम् ॥ २६
तत् कपाले महेशानि ! किं तद् यन्न करे स्थितं ।
एषा कपालिनी नित्या द्वितीया कालिका भवेत् ॥ २७
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कुल्लां शृणु तृतीयकाम् ।
कालिका कुल्लुका कुल्ला त्रिधा नाम्ना तु या मता ॥ २८
तस्मात् कुल्लेति नाम्ना च कुल-पूज्यत्वतां गता ।
विद्यानां कुल-पूज्यत्वात् कुल्लुका परिकीर्तिता ॥ २९
कुल्लुका कुल-पूज्यत्वात् कुल्ला-नाम्नी कुलेश्वरी ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ॥ ३०
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिका-बीजमुद्धरेत् ।
कुल्लायै हृन्मनुर्देवि ! प्रोक्तः सप्ताक्षरो मनुः ॥ ३१
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् ।
कुल्ला काली देवताऽत्र कालिका बीजमीरितम् ॥ ३२
कुल्ला-शक्तिरिति ख्याता नमः कीलकमीरितम् ।
सर्वार्थ-साधने चैव विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ३३
कालिकोक्ते यजेत् पीठे कुमारी-यन्त्रमेव हि ।
कुमार्याः पूजनाद् देवि कुला सिद्धा भवेद् ध्रुवं ॥ ३४
लक्ष-द्वयं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ श्रीकुल्ला-दर्शनोत्सुकः ॥ ३५
कदाचिदभ्र-सदृशां कदाचित् ज्योति-सन्निभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुकुटाटोप-मण्डिताम् ॥ ३६
शवासन-गतां कुल्लां दश-मुण्डोपरि-स्थिताम् ।
वराभयौ करे वामे पुस्त-स्रक् दक्षिणे करे ॥ ३७
नाना-विलास-कुशलां कुल्लाम्बां परिचिन्तयेत् ।
एवं चिन्तयतस्तस्य दश-विद्या-मयी कला ॥ ३८
भवत्येव महेशानि ! कुल्लाम्बायाः प्रभावतः ।
करवीरैर्जपा-पुष्पैर्हुनेज्जप-दशांशतः ॥ ३९

तद्-दशांशं गन्ध-तोयैस्तर्पयेन्मार्जयेदपि ।
ब्राह्मणान् भोजयेद् देवि ! तदन्ते तु कुमारिकां ॥ ४०
पूजयेत् परमेशानि ! कुल्ला-विद्या प्रसिद्धचति ।
कुल्ला-विद्या महेशानि ! सर्व-विद्या-प्रकाशिनी ॥ ४१
यन्त्रमस्यास्ति देवेशि ! नैमित्ते काम्य-कर्मणि ।
त्रिकोण-द्वयमुद्धृत्य वृत्ताष्ट-दल-भूषितम् ॥ ४२
चतुर्द्वार-समायुक्तं भूपुरैकेण संयुतम् ।
मध्ये बीजं न्यसेत् काली-बीज-युक्तं महोत्तमम् ॥ ४३
धृतिं पुष्टिं तथा मेधां तुष्टिं प्रज्ञां तथा जयां ।
त्रिकोण-द्वितये पूज्य दलेऽष्ट-मातृ-भैरवाः ॥ ४४
लोक-पालान् शस्त्र-युक्तान् कुल्लुकावरणे यजेत् ।
अथवा देव-देवेशि ! कालिका-वत् समस्तकम् ॥ ४५
नवरात्र-द्वये चन्द्र-सूर्य-ग्रह-द्वये तथा ।
तथा संक्रमणे चैव पूजयेद् यन्त्रमुत्तमम् ॥ ४६
यदैव कार्यमुत्पन्नं तदैव कुल्लुकार्चनम् ।
न विद्या सिद्धिमाप्नोति कुल्लुकार्चनमन्यतः ॥ ४७
आदिमान्त्य-समायुक्ता सा विद्या सिद्धिमाप्नुयात् ।
आदिमान्त्यमजानन् हि यो गुरुः स तु शिष्यहा ॥ ४८
आदिमान्त्यक्रियायुक्तो नित्यामन्त्रो हि सिद्धचति ।
आदिमान्त्य-विहीनस्य न स्याद् देवस्य दर्शनम् ॥ ४९
प्रीतिर्भयं द्वयमिति द्वाभ्यां सम्व्यापितं जगत् ।
अयं प्रयोगो गोप्तव्यो न कुत्रापि मयेरितः ॥ ५०
कुल्ला-देव्यादि-नित्यासु जपो हि द्वितयावधिः ।
द्वितयाभ्यां न सिद्धोऽसौ स मन्त्रो न जपे क्षमः ॥ ५१
कुल्ला नित्या तृतीयोक्ता यस्यामेतत् प्रतिष्ठितम् ।
समस्त-जगती-सारं कुल्ला-संक्षेप-पूजनम् ॥ ५२

चतुर्दशः पटलः

विरोधिनी-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्यमपरं महत् ।
कुरुकुल्ला-विधानं च कथयस्व ममाधुना ॥ १
कुरुकुल्ला च किं नाम किं विधा किं विधो मनुः ।
सर्वं कथय देवेश ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ २

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि रहस्याति-रहस्यकम् ।
विद्यानां कुल-पूज्यत्वात् कुरुकुल्ला कुलाधिका ॥ ३
कुल्लाया अपि पूज्यत्वात् कुरुकुल्ला महोदया ।
तस्या मन्त्रो महेशानि ! सर्व-मन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ ४
कालिकाद्यं समुद्धृत्य कुरुकुल्ले-पदं वदेत् ।
कालीं मायां मम-पदं सर्व-जन-पदं ततः ॥ ५
वशमानय चोच्चार्य कालीं च कुरुकुल्ले च वै ।
पदमुद्धृत्य देवेशि ! माया-स्वाहान्तगो मनुः ॥ ६
सप्त-विंशत्यर्ण-संख्यो मन्त्रोऽयं सुर-पादपः ।
एतस्या हृन्मनुर्देवि ! कुरुकुल्ला नवाक्षरी ॥ ७
श्रीविद्या-विषये भिन्ना कुरुकुल्ला महेश्वरि !
बालाङ्ग-विद्या देवेशि ! श्रीविद्या कुरुकुल्लिका ॥ ८
इयं भिन्ना महा-विद्या काली-नित्या चतुर्थिका ।
विना तु हृन्मनुर्देवि ! कुरुकुल्ला न सिद्ध्यति ॥ ९
हृन्मनुं कुरुकुल्लाया ज्ञात्वा यत्नेन पार्वति !
प्रणवं कूर्चमुद्धृत्य कुरुकुल्ले-पदं वदेत् ॥ १०

ह्रीं-स्वाहान्तो मनुर्देवि ! कुरुकुल्ला कुमारिका ।
हृन्मनुत्वेन कथितः सर्व-मन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ ११

काल-भैरवो ऋषिश्चास्य वृहती छन्द ईरितम् ।
देवता कुरुकुल्ला च सर्व-विद्या-मयी परा ॥ १२

क्रीँ बीजं ह्रीं तथा शक्तिः स्वाहा कीलकमीरितं ।
कुरुकुल्ला-कुमार्यास्तु भैरवो ऋषिरीरितः ॥ १३

विराट् छन्दो निगदितं कूर्चं वीजं प्रकीर्तितम् ।
स्वाहा शक्तिः समुद्दिष्टा विनियोगो यथेच्छया ॥ १४

कुल्ल-कुल्लां मित्र-कुल्लां कुरुकुल्लां हृदङ्गमां ।
काली-ध्रुवः कुरुकुल्ले क्रीँ ह्लीँ च मम सर्वतः ॥ १५

जन-वशं क्रोँ कुरु-युक् कुरुकुल्ले त्रिविष्टपे ।
स्वाहान्तोऽयं समुद्दिष्टो भैरवो हि विराट् ततः ॥ १६

ह्लीँ बीजं च तथा स्वाहा शक्तिः क्रीँ कीलकं मतं ।
सर्वार्थे विनियोगः स्यात् पूर्व-वत् क्वापि कीर्तितः ॥ १७

विनियोगः पूर्व-वत् स्यात् शृणुष्वाङ्गादि-कल्पनां ।
षड्-दीर्घ-काली-बीजेन षडङ्गानि क्रमाच्चरेत् ॥ १८

ततो ध्यायेन्महा-देवि ! कुरुकुल्लां कुलेश्वरीम् ।
शवोपरि समासीनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ॥ १९

कपाल-कर्तृका-हस्तां खड्ग-खेटक-धारिणीम् ।
अञ्जनाद्रि-निभां दिव्यां मुक्त-केशीं चतुर्भुजाम् ॥ २०

पीनोन्नत-कुच-द्वन्द्वां पीन-वक्षो नितम्बिनीम् ।
भक्तानन्द-करोद्युक्तां साधकाभीष्ट-दायिनीम् ॥ २१

आसवाघूर्ण-नयनां कामिनीं जन-मोहिनीम् ।
एवं सञ्चिन्तयेद् देवीं कुरुकुल्लां महोदयाम् ॥ २२

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्ष-सख्यं त्रि-मधुरान्वितैः ।
होमयेद् बिल्व-पत्रैश्च बिल्व-पुष्पैरपि प्रिये ॥ २३

दशांशं तर्पणं कुर्यात् तद्दशांशेन मार्जनम् ।
तद्-दशांशं विप्र-भोज्यं तेन सिद्धो मनुर्भवेत् ।। २४
पूजयेत् कालिका-पीठे त्रिकोण-त्रय-सोज्ज्वले ।
वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुर-द्वय-शोभिते ।। २५
विन्दौ बीजं लिखेत् काल्यास्त्रिशक्ति-त्रयमर्चयेत् ।
कालीं तारां छिन्नमस्तां बालाम्बां बगलां रमां ।। २६
उग्र-गर्भामुग्र-बीजामुग्र-वीर्यां तृतीयकाम् ।
त्रिकोण-त्रितये पूजा क्रमेण परिकीर्तिता ।। २७
ब्रह्माद्यष्टौ भैरवांश्च पूजयेत् द्वि-दलाष्टके ।
लोक-पालांस्तदस्त्रांश्च पूजयेत् परमेश्वरि ।। २८
शवे श्मशाने विपिनेऽरण्ये च भूत-संकुले ।
पूजयेत् कुरुकुल्लां च सर्व-सिद्धिं स विन्दति ।। २९
यद्यत् प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति साधकः ।
समस्तान् पूजयेद् देवि ! ब्राह्मणांश्च सुवासिनीम् ।। ३०
विप्राराधन-मात्रेण किं तद् यन्न करे स्थितम् ।
तण्डुलेन जयावाप्तिर्गोधूमेन धनागमः ।। ३१
माषैः शत्रुर्मृतिं याति मुद्गैर्मोक्ष-फलं लभेत् ।
तिल-तण्डुल-होमेन महा-प्रीतिं स विन्दति ।। ३२
राजी-लवण-होमेन कामिनीं वशयेद् ध्रुवम् ।
सर्षपैर्लवणैर्देवि ! कामिनी-मन-रञ्जनम् ।। ३३
सर्पिर्लवण-होमेन कामिनी-मनोरञ्जनम् ।
हरिद्रया दरिद्राणि नश्यन्त्येव न संशयः ।। ३४
इति संक्षेपतः प्रोक्तः कुरुकुल्ला-विनिर्णयः ।
रहस्याति-रहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।। ३५

श्रीदेव्युवाच—

विरोधिनी-विधिं ब्रूहि यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्यादति-गोप्यं हि नित्या प्रोक्ता विरोधिनी ।। ३६

पञ्चमी-संज्ञका नित्या यथावदवधारय ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य काली-प्रणवमुद्धरेत् ॥ ३७
मायां कामं ततः कूर्चं प्रोक्त्वा विरोधिनी-पदं ।
शत्रूनुच्चाटय-पदं विरोधय-द्वयं वदेत् ॥ ३८
शत्रु-क्षय-करी प्रोच्य हूं फट् स्वाहान्तको मनुः ।
द्वात्रिंशद्-वर्ण-संयुक्तो मन्त्र-राजो महोत्तमः ॥ ३९
महा-मन्त्रोऽयमाख्यातो ऋषिर्भैरव ईरितः ।
गायत्री छन्द आदिष्टो देवता तु विरोधिनी ॥ ४०
काली-बीजं बीजमस्याः माया शक्तिः प्रकीर्तिता ।
काम-बीजं कीलकं स्याद् विनियोगो यथेच्छया ॥ ४१
काली-षड्-दीर्घ-बीजेन षडङ्ग-युग्ममाचरेत् ।
ध्यायेदञ्जन-गिरि-निभां द्विरष्ट-वर्ष-देशिनीम् ॥ ४२
पीनोन्नत-कुच-द्वन्द्वां सर्पास्थि-मालिका-युताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि स्थिताम् ॥ ४३
त्रिशिखं नाग-पाशं च घण्टां च डमरुं तथा ।
सम्बिभ्रतीं महा-देवि ! क्रमाद् भुज-चतुष्टये ॥ ४४
धूम्राम्बरां पीत-गात्रामीषत्-प्रहसिताननाम् ।
मा भैर्वीर! वरं ब्रूहि सर्वं तत् ते ददाम्यहम् ॥ ४५
उपस्थितं तु यत्-कार्यं तत्तत् कार्यं करोम्यहम् ।
एवं सम्वदतीं देवीं चारु-हासां मनोहराम् ॥ ४६
विरोध-करणोद्युक्तां शत्रूणां नाश-कारिणीम् ।
कालिकोक्ते यजेत् पीठे त्रिकोण-त्रय-शोभिते ॥ ४७
वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुरैकेन शोभिते ।
चतुर्द्वार-विभूषाढ्ये श्रीबीजोज्ज्वल-कर्णिके ॥ ४८
विरोधिनीं कर्णिकायां त्रिकोण-त्रितये क्रमात् ।
धूम्रार्चिरूष्म-ज्वालिनीं विस्फुलिङ्गिनीम् ॥ ४९

सुश्रीं सुरूपां कपिलां ततो हव्यवहां यजेत् ।
विरोधिनी-मस्तके तु ततो हि दशमीं यजेत् ॥ ५०
दलाष्टके भैरव्यष्टौ भैरवेण समन्विताः ।
भूपुरे लोक-पालाश्च तदस्त्राणि च तद्-बहिः ॥ ५१
ततो नीराजनं कृत्वा लक्ष-संख्यं जपेन्मनुम् ।
दशांशं जुहुयाद् वह्नौ निम्ब-वह्नौ यथा-विधि ॥ ५२
अरिष्ट-मालां कृत्वा च महा-मुण्डासनो नर ।
जुहुयादरि-नाशाय अरिष्ट-फलमादरात् ॥ ५३
विभीतकेन जुहुयात् सर्व-शत्रु-निबर्हणम् ।
धुस्तूर-कुसुमैर्होमात् शत्रून् विद्वेषयेन्नरः ॥ ५४
काकोलूकस्य मांसेन शत्रुं मारयति क्षणात् ।
राज-वृक्ष-प्रसूनैश्च तत्-काष्ठाग्नौ हुनेत् सुधीः ॥ ५५
विरोधिनी भवेत् सिद्धा धूमावत्यादि-संयुता ।
अर्क-ज्योति-समायुक्ता शत्रु-विद्वेष-कारिणी ॥ ५६
वायव्याभिमुखो भूत्वा कटु-जीरकजं जलम् ।
कोष्णं पिबेन्महेशानि ! शत्रुर्ज्वर-युतो भवेत् ॥ ५७
पराभिचार-नाशार्थं स्व-रक्षार्थं यथा-विधि ।
एकान्ते मातृ-गेहे वा मृत-हट्टे शिवालये ॥ ५८
विरोधिनीं जपेद् विद्यां ह्ययुतं चोक्त-मार्गतः ।
विभीतकस्य समिधो हुनेच्छत्रु-निवारणम् ॥ ५९
नाभि-मात्रोदके गत्वा मरीच-जल-योगतः ।
तर्पयेद् देवतां नीरैस्त्रैलोक्य-द्वेषणं चरेत् । ६०
अथाकर्षणमन्विच्छन् वल्मीक-मृत् समानयेत् ।
श्मशान-मृत् समादाय गोधूम-हिंगु-जीरकः ॥ ६१
पुत्तलीं साध्य-रूपां च कारयेत् परमेश्वरि !
नासायां दोरकं दत्वा प्राण-स्थापन-पूर्वकम् ॥ ६२

विरोधिनीं जपेत् तत्र करवीरैः समर्चयेत् ।
दुग्धे पुत्तलीं कृत्वा तापयेत् खदिरानले ॥ ६३
अनेन क्रम-योगेन दिनानि तु चतुर्दश ।
यः करोति नरः श्रेष्ठः सर्वाकर्षण-कारकः ॥ ६४
वनितां मद-गर्वाढ्यां समाकर्षति योगतः ।
विचार्याकर्षणं कार्यं भवेद् वा न भविष्यति ॥ ६५
ध्यात्वा साध्य-गले पाशं मस्तके ज्वलितांकुशम् ।
एवं सञ्चिन्त्य देवेशि ! त्रैलोक्याकर्षको भवेत् ॥ ६६

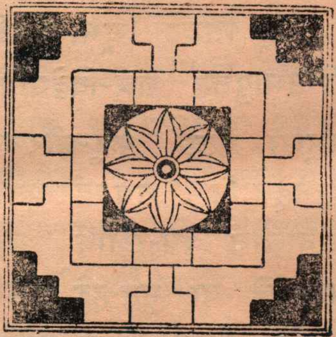

पञ्चदशः पटलः

उग्रप्रभा-नित्या-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि विप्रचित्ता-विधानकम् ।
समासेन वदेशान ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ १

श्रीशिव उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि ! विप्रचित्तां मनोहराम् ।
या जाता चैव शत्रूणां वधार्थं पूर्वमुद्धृता ॥ २
विप्रचित्तेति विख्याता वैप्रचित्त-विनाशिनी ।
षष्ठो नित्या महा-विद्या तन्मन्त्रं शृणु पार्वति ॥ ३
प्रणवं कमलां कामं चामुण्डे-पदमुच्चरेत् ।
विप्रचित्ते-पदं प्रोच्यं दुष्ट-घातिनि चोच्चरेत् ॥ ४
शत्रून्नाशय चोच्चार्य एतद् दिनावधि प्रिये !
सिद्धिं मे देहि चोच्चार्य हुँ स्वाहान्तगो मनुः ॥ ५
चतुस्त्रिंशद्-वर्ण-युतो विप्रचित्ता-मनुर्महान् ।
ईश्वरोऽस्य ऋषिर्देवि ! जगती छन्द ईरितम् ॥ ६
विप्रचित्ता देवता हि चामुण्डा बीजमीरितम् ।
कमला शक्तिराख्याता काम-बीजं तु कीलकम् ॥ ७
षड्-दीर्घाढ्येन कामेन षडङ्ग-न्यासमाचरेत् ।
सिंहोपरि समारूढां शव-पञ्जर-मध्यगाम् ॥ ८
चतुर्भुजां त्रिनयनां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
दिगम्बरां मुक्त-केशीं ललज्जिह्वां भयानकाम् ॥ ९
भीम-दंष्ट्रां करालास्यां सृक्किणी-रक्त-वाहिनीम् ।
खड्ग-मुण्ड-कपाल-त्रिशूल-हस्तां महोदरीम् ॥ १०

नोलोत्पल-निभां श्यामां भक्तानुग्रह-कारिणीम् ।
दैत्य-संहरणोद्युक्तां साधकानामभीतिदाम् ॥ ११
एवं सञ्चिन्त्य देवेशि ! विप्रचित्तां शिव-प्रियाम् ।
लक्ष-मात्रं जपेन्मन्त्रं दशांशं कुमुदैर्हुनेत् ॥ १२
अथाष्ट-गन्ध-नीरेण तद्-दशांशं प्रतर्पयेत् ।
मार्जनं तद्-दशांशेन दशांशेनाभिषेचनम् ॥ १३
तद्-दशांशं विप्र-भोज्यं विप्रचित्ता-सुसिद्धये ।
त्रिकोणं वृत्त-षट्-कोणं वृत्ताष्ट-दल-भूषितम् ॥ १४
वृत्त-भूपुर-संयुक्तं विन्दु-बीज-विभूषितम् ।
विन्दौ यजेत् विप्रचित्तां त्रिकोणे त्रिगुणां यजेत् ॥ १५
षट्-कोणे तु षडङ्गानि तद्-दले मातृ-भैरवौ ।
भूपुरे लोकपालाश्च तदस्त्राणि च तद्-बहिः ॥ १६
ततो नीराजनं कृत्वा जपं देव्यै समर्पयेत् ।
पुरश्चर्या-समायुक्तः प्रयोगार्हो न चान्यथा ॥ १७
साकल्यैर्जुहुयाद् देवि ! शान्ति-कर्मणि साधकः ।
मालत्या जुहुयाद् वश्ये केतक्या वाग्-विभूतये ॥ १८
करवोरैर्वशीकारः किंशुकैः स्तम्भनं भवेत् ।
मोहनं चोड्र-पुष्पेण धुस्तूरैर्मारणं दिशेत् ॥ १९
बृहत्या तु रिपूच्चाटो गिरिकर्ण्या धनागमः ।
काश-पुष्पै रिपूच्चाटो विद्वेषो कर्णिका-रजैः ॥ २०
नीवारैर्जुहुयात् देवि ! धान्य-सिद्ध्यर्थमेव हि ।
कलाय-पुष्पैर्जुहुयात् ततः स्युः सर्व-सम्पदः ॥ २१
कौसुम्भ-कुसुमैर्देवि ! कामिनीं वांछितां लभेत् ।
मधु-पुष्पैश्च जुहुयादभीष्ट-सिद्धये ध्रुवम् ॥ २२
धातक्या जुहुयाद् देवि ! धन-धान्य-पतिर्भवेत् ।
यद्-रोगे भेषजं यच्च तेन तद्-रोग-नाशनम् ॥ २३

इति संक्षेपतः प्रोक्तो विप्रचित्ता-विनिर्णयः ।

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि उग्रनित्या-विनिर्णयम् ॥ २४

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च तथापि कथ्यते शृणु ।
प्रणवं च वधू-बीजं हूँ-बीजं भुवनां ततः ॥ २५
पुनः पूर्वं ततो हूँ फट् उग्रा सप्ताक्षरो मनुः ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम् ॥ २६
उग्रा तु सप्तमो नित्या देवता परिकीर्तिता ।
कूर्चं बीजं च फट् शक्तिर्वधूः कीलकमीरितम् ॥ २७
सर्वाभीष्टादि-सिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
षड्-दीर्घाढ्येन बीजेन मायाख्येन षडङ्गकम् ॥ २८
ततो ध्यायेत् परामुग्रां प्रत्यालीढ-पद-स्थिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ॥ २९
दिगम्बरां करालास्यां घोर-दंष्ट्रां भयानकाम् ।
शवोत्सङ्गे क्रीडमानां श्मशानालय-वासिनीम् ॥ ३०
श्याम-वर्णां मुक्त-केशीं खड्गेन्दीवर-धारिणीम् ।
कपाल-कर्तृका-हस्तां वर-दान-परायणाम् ॥ ३१
उग्रां ध्यायेन्महा-विद्यां लक्ष-युग्मं जपं चरेत् ।
तद्-दशांशेन जुहुयात् कमलैर्घृत-संयुतैः ॥ ३२
तद्-दशांशं तर्पणं च तद्-दशांशं च मार्जनम् ।
विप्र-भोज्यं दशांशेन तेनोग्रा सिद्धिदा ध्रुवम् ॥ ३३
पर्वते प्रान्तरे घोरे विपिने तटिनी-तटे ।
एक-लिङ्गे श्मशाने वा पुरश्चरण-वान् भवेत् ॥ ३४
अथास्याः पूजा-यन्त्रं च यथा-वत् कथ्यते शृणु ।
त्रिकोणं वृत्ताष्ट-दलं वृत्त-भूपुर-भूषितम् ॥ ३५

शूलाष्टक-विभूषाढ्यं किम्वा वज्र-विभूषितम् ।
त्रिकोण-मध्ये विलिखेत् कूर्च-बीजं महोत्तमम् ॥ ३६
तारां नीलामेक-जटां तत् त्रिकोणे प्रपूजयेत् ।
ततो दलाष्टके देवि ! उग्रा-घोराष्टकं यजेत् ॥ ३७
वैरोचनाष्टकं पूज्य ततः पद्मान्तकान् यजेत् ।
लोक-पालान् तदस्त्राणि यथा-वद् विधिना यजेत् ॥ ३८
ततो नीराजनं कृत्वा जपं देव्यै समर्प्य च ।
शवासने वा······संस्थित्वा सर्वदा जपेत् ॥ ३९
सिन्दूर-तिलको नित्यं सम्विदासव-घूर्णितः ।
मुक्त-केशो दिशा-वासो भक्त-भक्तो जितेन्द्रियः ॥ ४०
महा-चीन-द्रुम-लतां सम्पूज्य परमेश्वरि !
तत्-त्रिकोणं च सम्वीक्ष्य सदा तद्-गत-मानसः ॥ ४१
लक्ष-मात्रं जपेन्मन्त्रं उग्रा सिद्धयति निश्चितम् ।
अन्यत् सर्वं तु तारा-वत् कीर्तितं जगदीश्वरि ॥ ४२
न्यास-पूजादिकं ध्यानं पुरश्चर्या-विधानकम् ।
महोग्रतारा-वज्ज्ञेयं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४३

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि नित्यामुग्रप्रभाभिधाम् ।
अष्टमीं शुभदां नित्यां नित्यानन्द-करां वराम् ॥ ४४

श्रीशिव उवाच—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य शिव-बीजं समुद्धरेत् ।
वह्न्यारूढं नाद-विन्दुं षष्ठ-स्वर-विभूषितं ॥ ४५
बीज-द्वयं समुच्चार्य उग्रप्रभे-स्वरूपकं ।
देवि कालि महा-देवि स्वरूपं दर्शयेति च ॥ ४६
हूँ फट् स्वाहा-समायुक्तः प्रोक्तस्तूग्रप्रभा-मनुः ।
पञ्च-विंशति-तत्त्वाढ्यः प्रोक्तश्चोग्र-प्रभा-मनुः ॥ ४७

महाकालो ऋषिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप् प्रकीर्तितम् ।
उग्रप्रभा महा-काली देवता परिकीर्तिता ॥ ४८

हूँ वीजं ॐ तथा शक्तिः फट् कीलकमुदाहृतम् ।
कालिका-दर्शनाद्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ४९

उग्रप्रभाख्य-बीजेन षड्-दीर्घेण षडङ्गकम् ।
ध्यायेदुग्रप्रभां दिव्यां दिव्य-नीलोत्पल-प्रभाम् ॥ ५०

चतुर्भुजां त्रिनयनां शव-पद्मोपरि-स्थिताम् ।
दिगम्बरां मुक्त-केशीं पीनोन्नत-पयोधराम् ॥ ५१

सुप्रसन्न-मुखाम्भोजां शव-मांस-प्रभोजनीम् ।
शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीम् ॥ ५२

खड्ग-मुण्ड-धरां वामे दक्षे खर्पर-कर्तृके ।
बिभ्रतीं परमाह्लाद-जननीं काल-वञ्चनीम् ॥ ५३

एवं ध्यात्वा महा-विद्यां लक्ष-युग्मं जपेच्छिवे !
कालिकोक्ते यजेत् पीठे त्रिकोण-द्वय-सोज्ज्वले ॥ ५४

वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुर-द्वय-भूषिते ।
उग्रप्रभा-बिन्दु-मध्ये कालीं तारां च रोचनीम् ॥ ५५

प्रथमे पूजयेद् देवीं द्वितीये तारिणी-गणाः ।
तारामेक-जटां नीलां द्वितीये तु त्रिकोणके ॥ ५६

दलाष्टके मातृकाष्टौ दलाग्रे भैरवाष्टकम् ।
भूपुरे लोक-पालांश्च तदस्त्राणि च तद्-बहिः ॥ ५७

त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वेषामपि देशिकैः ।
एवमुग्रप्रभामिष्टां लक्ष-युग्मं जपं चरेत् ॥ ५८

दशांशं वज्र-पुष्पाणि मैरेयाक्तानि होमयेत् ।
तर्पयेत् तद्-दशांशेन दुग्धेन मधुनाऽथ वा ॥ ५९

दध्ना चेक्षु-रसेनापि पीठ-तोयेन वा पुनः ।
तद्-दशांशं मार्जनं च दशांशं विप्र-भोजनम् ॥ ६०

कुमारीं पूजयेत् पश्चाच्छक्तिं चापि प्रपूजयेत् ।
उग्रप्रभा-पताकायां मूर्ति कृत्वा विधारयेत् ॥ ६१
रणे देवासुरान् जित्वा त्रैलोक्य-विजयी भवेत् ।
दुन्दुभौ फलके खड्गे जप्त्वा चोग्रप्रभां शिवाम् ॥ ६२
सर्व-सिद्धि समासाद्य काली-रूपो नरो भवेत् ।
मानिनी-मण्डलं दृष्ट्वा जपेदुग्रप्रभा-मनुः ॥ ६३
कालिका सिद्धिदा भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
..............लिख्य जपेदुग्रप्रभां पराम् ॥ ६४
तत्र सञ्चिन्त्य देवेशि ! साधकः किन्न साधयेत् ।
उग्रप्रभाख्यां कालीं तु कृत्वा मासं जपेच्छिवे ॥ ६५
मास-मात्र-प्रयोगेण कालिका वरदा भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६६

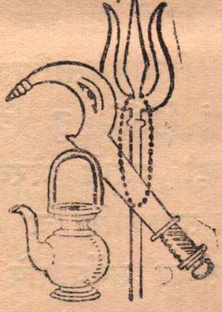

श्री विरोधिनी नित्या-यन्त्रम्

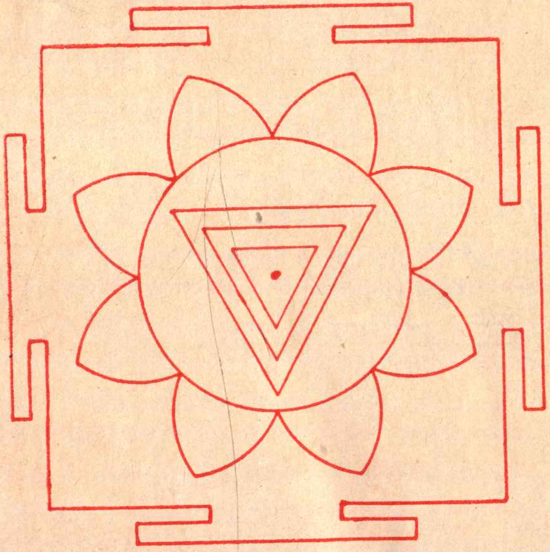

कालिकोक्ते यजेत् पीठे त्रिकोण-त्रय-शोभिते ।।४७।।
वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुरैकेन शोभिते ।
चतुर्द्वार-विभूषाढ्ये श्रीबीजोज्ज्वल-कर्णिके ।।४८।।

(पृष्ठ १२०)

श्री विप्रचित्ता नित्या-यन्त्रम्

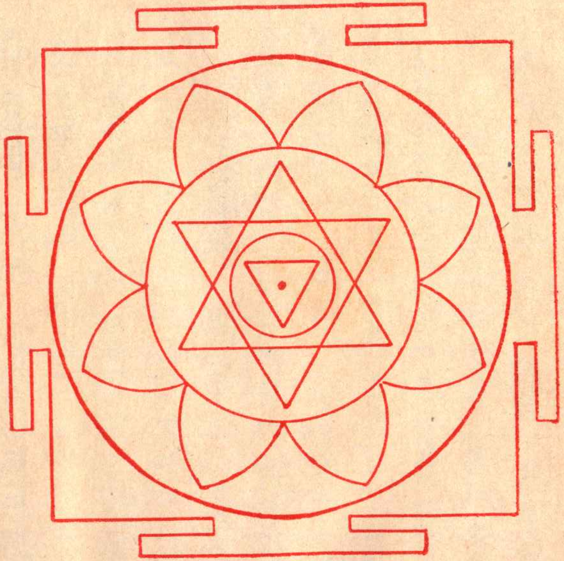

त्रिकोणं वृत्त-षट्-कोणं वृत्ताष्ट-दल-भूषितम् ।।१४
वृत्त-भूपुर-संयुक्तम् विन्दु-वोज-विभूषितम् ।

[पृष्ठ १२४]

श्री उग्रा नित्या-यन्त्रम्

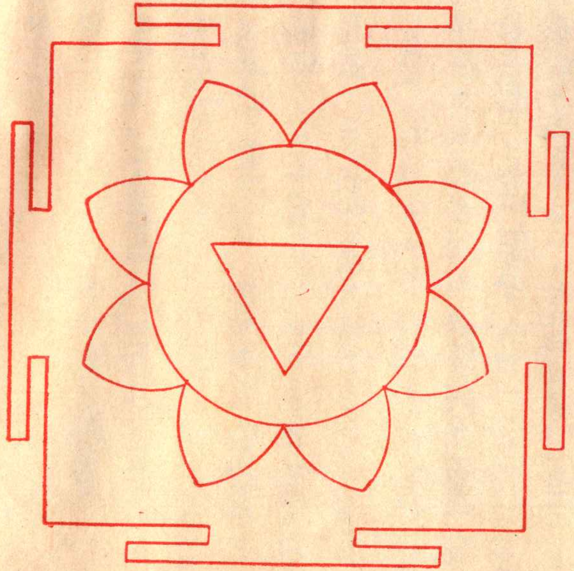

त्रिकोणं वृत्ताष्ट-दलं वृत्त-भूपुर-भूषितम् ॥३५॥

[पृष्ठ १२५]

श्री उग्रप्रभा नित्या-यन्त्रम्

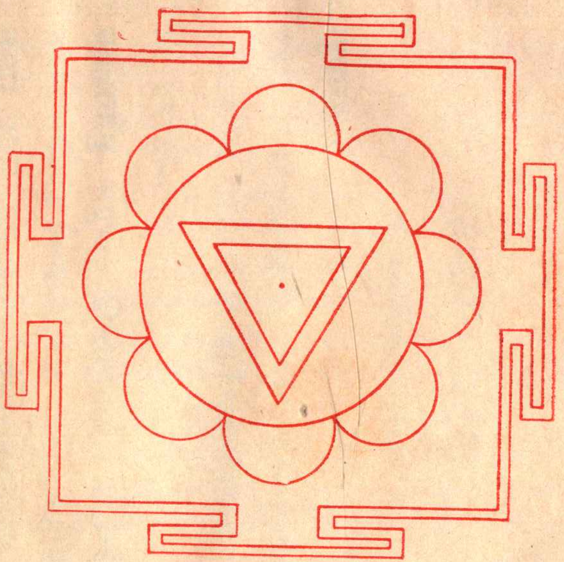

कालिकोक्ते यजेत् पीठे त्रिकोण-द्वय-सोज्ज्वले ॥५४॥

वृत्ताष्ट-दल-भूषाढ्ये भूपुर-द्वय-भूषिते ।

(पृष्ठ १२७)

षोडशः पटलः

दीप्ता-नित्या-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।
तन्मे कथय देवेश ! दीप्ता-नित्या-विधानकम् ॥ १

श्रीशिव उवाच—

सर्व-तन्त्रेषु संगुप्ता दीप्ता-नित्या महोदया ।
नवमी-संख्यका नित्या सारात् सारा महोदया ॥ २
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यथा-वदवधारय ।
प्रणवं कालिका-वीजं कौलिनी-बीजमेव च ॥ ३
कूर्च-बीजं समुद्धृत्य दीप्तायै तदनन्तरम् ।
सर्व-मन्त्र-फल प्रोच्य दायै-शब्दं समुच्चरेत् ॥ ४
हुं फट् स्वाहान्तको मन्त्रस्तून-विंशाक्षरः परः ।
अर्ध-संख्या-विहीनेन वीति-संख्यः प्रकीर्तितः ॥ ५
महादेव ऋषिश्चास्य उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
दीप्ताख्या नवमी नित्या देवता परिकीर्तिता ॥ ६
काली-बीजं बीजमस्याः कौलिनी शक्तिरेव हि ।
स्वाहा कीलकमित्युक्तं काल्यर्थे विनियोगता ॥ ७
काल्याः षड्-दीर्घ-युक्तेन षडङ्ग-न्यासमाचरेत् ।
ध्यायेद् दीप्तां महा-नील-मणि-प्रख्यां महोदरीम् ॥ ८
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
दिगम्बरां मुक्त-केशीं घोर-दंष्ट्रां करालिकाम् ॥ ९
शव-पद्मे समासीनां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
शवास्थि-कृत-केयूर-शङ्ख-कङ्कण-भूषिताम् ॥ १०

लेलिहानां शवं क्वापि प्रहसन्तीं मदातुराम् ।
भक्तानां वरदां नित्यां कालिकां घोर-राविणीम् ॥ ११
नरान्त्र-योग-पट्टेन भूषितां योग-मार्गगाम् ।
खड्ग-मुण्ड-धरां वामे सव्येऽभय-वर-प्रदाम् ॥ १२
सुदन्तुरां महा-रौद्रीं श्मशानालय-वासिनीम् ।
एवं सञ्चिन्त्य दीप्ताम्बां लक्षमेकं जपेच्छिवे ॥ १३
दशांशं करवीरेण हवनं समुपाचरेत् ।
कदल्या हवनं कार्यं सर्व-दीप्ति-प्रसिद्धये ॥ १४
दशांशं पीठ-तोयेन हवनं समुपाचरेत् ।
तद्-दशांशं मार्जनं च गन्धाष्टक-जलेन वै ॥ १५
तद्-दशांशं विप्र-भोज्यं भोजयेद्धि कुमारिकाम् ।
ततः सिद्ध-मनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ॥ १६
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय गुरु-स्मरण-पूर्वकम् ।
गुरुं ध्यात्वा सहस्रारे पूर्वोक्त-ध्यान-योगतः ॥ १७
मूलाधारात् स्व-जिह्वान्तं मूल-विद्यां परां स्मरेत् ।
सरस्वतीं दीप-रूपां मूल-बीज-स्वरूपिणीम् ॥ १८
सम्पूर्णां मातृकां प्रोच्य मूल-विद्यां समुच्चरेत् ।
पुनर्वै मातृकां प्रोच्य पुनर्विद्यां समुच्चरेत् ॥ १९
त्रिधाभिमन्त्र्य तोयं तु क्रमेणानेन सुन्दरि !
मूल-विद्यां ततो ध्यात्वा जिह्वायां दीप-रूपिणीं ॥ २०
तेजोरूपां सायुधां वै तज्जलं तु पिबेच्छिवे !
योगेनानेन देवेशि ! त्रिकालज्ञो नरो भवेत् ॥ २१
विना न्यासैर्विनाभ्यासैर्विना पाठादिना शिवे !
चतुर्विधं तु पाण्डित्यं तस्य हस्ते व्यवस्थितम् ॥ २२
जाती-पुष्पेण देवेशि ! कविता वश-वर्तिनी ।
कुन्द-पुष्पेण देवेशि ! सर्व-शास्त्र-वशीकृतिः ॥ २३

दूर्वया शान्तिको होमो गुडुच्या मृत्यु-वारणम् ।
सुरया मोहनं प्रोक्तं जम्बा स्तम्भनमोरितम् ॥ २४
आम्रेण वश्य-सिद्धिः स्यादम्बुजेन महोदयः ।
उच्चाटनं करीषेण विद्वेषः कर्कटी-फलैः ॥ २५
मारणं नील-पुष्पेण मरीचेन तु कर्षणम् ।
एवमादि-क्रियाः सर्वाः सिद्ध-मन्त्री समाचरेत् ॥ २६
अञ्जनं गुटिका खड्गो धातु-वादो रसायनम् ।
चरुकं तिलकं वासो दुन्दुभिश्च कपालकम् ॥ २७
एवमादि-क्रिया-सिद्धिर्दीप्ता मन्त्रेण वै भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २८

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि नीला-विद्या-विधानकम् ।
नीला नील-स्वरूपा हि महा-नील-सरस्वती ॥ २९
तस्या विधानं सम्ब्रूहि यद्यहं तव वल्लभा ।

श्रीशिव उवाच—

मन्त्रोद्धारं शृणु प्राज्ञे ! येन सिद्धि स विन्दति ॥ ३०
कूर्च-युग्मं महा-देवि ! काली-वीज-द्वयं तथा ।
माया-द्वयं समुद्धृत्य हसबलमरी-स्वरूपकम् ॥ ३१
अथ नील-पताके च हुं फडन्ता महेश्वरि !
नीला नील-पताकेयं सर्व-सिद्धि-करालिका ॥ ३२
उग्र-चण्डा ललज्जिह्वा या सा सिद्धि-करालिका ।
पञ्चधा कथिता नीला महा-नील-पताकिका ॥ ३३
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम् ।
देवता दशमी नित्या महा-नील-पताकिका ॥ ३४
कूर्च-बीज-स्वरूपं हि शक्तिरित्यभिधीयते ।
हूं फट् च कीलकं भद्रे ! काल्यर्थे विनियोगता ॥ ३५

कालो-षड्-दीर्घ-बीजेन षडङ्ग-न्यासमाचरेत् ।
अथ ध्यायेन्महा-नीलां नीलाञ्जन-गिरि-प्रभाम् ॥ ३६

चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
शवोपरि समासोनां मदिराघूर्ण-लोचनाम् ॥ ३७

मृग-शावक-नेत्रां च प्रसन्न-वदनाम्बुजाम् ।
कर-काञ्ची-शोभमानां शव-कर्णावतंसिनीम् ॥ ३८

ललज्जिह्वां करालास्यां घोर-दंष्ट्रां भयानकाम् ।
पापिनां सर्वदा नीलां क्रूरां पुण्यवतां वराम् ॥ ३९

दुष्ट-संहरणोद्युक्तां साधकस्य वर-प्रदाम् ।
फेरु-वर्गैर्गृध्र-गणैश्चतुर्दिक्षु निनादिनीम् ॥ ४०

ईदृशीमादि-रूपां तां नीलाम्भोज-वन-प्रभाम् ।
जपेल्लक्ष-त्रयं देवि ! हविष्याशी जितेन्द्रियः ॥ ४१

कुलाचार-क्रमेणैव यथोक्त-क्रम-योगतः ।
करवीरैर्जवा-बिल्वैर्मल्लिकाद्यैर्घृतान्वितैः ॥ ४२

त्रिकोण-कुण्डे जुहुयात् सुपरिष्कृत-भू-तले ।
दशांशं तर्पणं कार्यं दुग्धेन सुरयाऽपि च ॥ ४३

मार्जयेद् रक्त-नीरैश्च ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
सुवासिनीं कुमारीं च शक्तिं वा त्रितयां शुभाम् ॥ ४४

पुरश्चरण-सम्पन्नो मन्त्रः सर्वार्थ-साधकः ।
यथा-द्रव्यं नृपादीनां पुरश्चर्या तु मन्त्रिणां ॥ ४५

पुरश्चरण-सम्पन्नः प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि येन सिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४६

विन्दु-मध्ये लिखेत् कूर्चं त्रिकोणं च ततोपरि ।
वृत्त-षट्-कोण-वृत्ताष्ट-दलं वृत्तं च भूपुरम् ॥ ४७

चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं यन्त्रं नीला-मनोः शुभम् ।
बटुकाद्याश्चतुर्द्वारि परितो द्वार-देवताः ॥ ४८

तदस्त्राणि च तद्-बाह्ये दलेऽष्टौ भैरवाः प्रिये !
केसरे मातृकाष्टौ च वृत्तेऽष्ट-सिद्धयः क्रमात् ॥ ४९
षट्-कोणे तु षडङ्गानि त्रिकोणे दैवत-त्रयम् ।
कालरात्रि-महारात्रि-मोहरात्रि-क्रमात् त्रिके ॥ ५०
मध्ये नीलां समाराध्य ततो नैवेद्यमर्पयेत् ।
नीराजनं ततः कृत्वा स्तुत्वा नत्वा विसृज्य च ॥ ५१
नीलां संसाध्य यत्नेन षट्-त्रिंशद्-यक्षिणी-गणं ।
कालो-कूर्च-वधू-माया अमुकी यक्षिणीति च ॥ ५२
अन्तेऽपीमानि बीजानि हूं फट् स्वाहान्वितो मनुः ।
षट्-त्रिंशच्चैव यक्षिण्यः क्रमेण चोद्धृताः प्रिये ॥ ५३
तथैव बलिनो यक्षाः हूं क्रीं हूं प्रीं पुटेन च ।
सर्वे यक्षा हुं फडन्ता चतुरशीति कीर्तिताः ॥ ५४
यक्षिणी-सिद्धिमासाद्य साधकः सुखमाप्नुयात् ।
राजा भवति लोकेऽस्मिन् विना राज्येन पार्वति ॥ ५५
अल्पज्ञमपि विद्वांसं मूढं च पण्डितं तथा ।
यः करोत्येवमादीनि राज्य-रत्न-धनान्यपि ॥ ५६
यो वै ददाति साध्यायः स यक्षो नात्र संशयः ।
देव-योनिर्मानवी च द्विधा योनिः प्रकीर्तिता ॥ ५७
तत्तद्-रूपं समासाद्य तत्-सिद्धिमधि-गच्छति ।

श्रीदेव्युवाच—

फलं तु यक्षिणी-सिद्धेर्यक्ष-सिद्धेश्च किं फलम् ॥ ५८
तन्मे वद दयापार ! परात्पर ! नमोऽस्तु ते ।

श्रीशिव उवाच—

दीनारं गुटिका खड्गं वेताल-पादुकाञ्जनाः ॥ ५९
रसं रसायनं गुप्तिस्तिलकोऽदृश्यता तथा ।
कपालं च पटः शङ्खस्त्रिशूलं डमरुं तथा ॥ ६०

आकर्षणं वश्यता च मोहनोच्चाटनं तथा ।
महेन्द्र-जालमिन्द्रादि-जालानां रचना तथा ॥ ६१
ऊर्ध्वोत्क्रमण-कर्मादि खेचर्याद्या हि सिद्धयः ।
गोपनीयं गोपनीयं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६२
प्रोक्ता नीलाभिधा नित्या श्रीविद्यादौ पताकिका ।
यन्त्र-मन्त्रादि-प्रस्तार-सङ्केत-भ्रंशनं तथा ॥ ६३
लोपामुद्रा-विधौ कादौ यदुक्तं तद्-विधौ चरेत् ।
लोपामुद्रा कादि-हादि कामराजेऽपि तद् द्वयम् ॥ ६४
तत्-काल्यां कादि-काली च हादि-कल्पद्रुमो यथा ।
कादौ निगदितं देवि ! यक्षिणी-यक्ष-मण्डलम् ॥ ६५

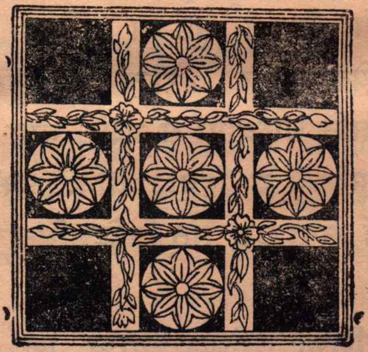

सप्तदशः पटलः

मुद्रा-नित्या-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि घना-नित्या-क्रमार्चनम् ।
उद्यद्-घना घनाकारा घना-नित्या घनोदया ॥ १
घनालया घोषवती घटिकोदय-रूपिणी ।
तस्या मन्त्रार्चनं नित्यं वद त्वं करुणा-निधे ॥ २

श्रीशिव उवाच—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिका-त्र्यक्षरं तथा ।
घनालये घनाघने ह्लीं हूं फट् च मनुर्मतः ॥ ३
भुवनाक्षरो घनायास्तु मन्त्रोऽयं सुर-पादपः ।
अघोर-भैरव-ऋर्षिर्विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ ४
काली बीजं तथा माया शक्तिः हुं फट् च कीलकं ।
कालिका-प्रीतये देवि ! विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ५
षड्-दीर्घ-भाजा बीजेन कर्पूरेण षडङ्गकम् ।
घना-नित्यां महा-विद्यां नील-जीमूत-सन्निभाम् ॥ ६
मत्ता-कोकिल-नेत्राभां पक्व-जम्बू-फल-प्रभाम् ।
सुदीर्घ-प्र पदालम्बि-मुक्तालम्बि-कचोच्चयाम् ॥ ७
चतुर्भुजां त्रिनयनां दिगम्बर-विनोदिनीम् ।
करालास्यां घोर-दंष्ट्रां पीनोन्नत-पयोधराम् ॥ ८
ओष्ठ-प्रान्त-गलद्-रक्त-धारा-विस्फुरिताननाम् ।
वीराणां कर-काञ्च्या तु भूषितां भीम-विग्रहाम् ॥ ९
खड्ग-खेटक-पट्टीश-मुद्गरान् बिभ्रतीं क्रमात् ।
ध्यातव्यां सततं वीरैर्महा-वीर-घनालया ॥ १०

लक्ष-मात्रं जपेन्मन्त्रं घृताक्तैः कमलैर्हुनेत् ।
तद्-दशांशं तर्पणं तु गन्ध-दुग्धादिभिः प्रिये ।। ११
तद्-दशांशं मार्जनं तु शीतलेन जलेन च ।
तद्-दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं समुपाचरेत् ।। १२
एवं क्रिया-समायुक्तो मन्त्र-सिद्धिं स विन्दति ।
घना-यन्त्रं प्रवक्ष्यामि पूजनं यादृशं भवेत् ।। १३
षट्-कोण-वृत्ताष्ट-दलं भूपुरेणोप-शोभितम् ।
षट्-कोणे तु षडङ्गानि षड्धा तु देवता अपि ।। १४
दलाष्टके मातृकाष्टौ ततो भैरव-पूजनम् ।
लोक-पालान् भूपुरेषु तदस्त्राणि च तद्-बहिः ।। १५
यथा-शक्ति जपित्वा तु ततो नीराजयेद् विभुम् ।
नीराजनान्ते देवेशि ! स्तुत्वा नत्वा विसृज्य च ।। १६
इति संक्षेपतः प्रोक्ता घना-नित्या घनालया ।
सिद्ध्यष्टक-समाक्रान्ता किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ।। १७
देवेशि ! शृणु वक्ष्यामि बलाका-पूजन-क्रमम् ।
बलाका द्वादशी नित्या सर्व-नित्या-वशङ्करी ।। १८
यज्ज्ञानात् सकला विद्याः स्वस्वस्थानपदं गताः ।
तस्या मन्त्रो महेशानि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।। १९
प्रणवं कालिका-बीजं कूर्च-माये समुद्धरेत् ।
बलाका कालि-शब्दान्ते अत्यद्भुत-पराक्रमे ।। २०
अभीष्ट-सिद्धिं मे देहि हुं फट् स्वाहा मनुर्मतः ।
कालिकास्या भवेद् बीजं कूर्चं शक्तिः परिकीर्तिता ।। २१
माया कीलकमुद्दिष्टं कीलकेन षडङ्गकम् ।
षडङ्ग-न्यासमासाद्य ध्यानं कुर्यान्महेश्वरि ।। २२
अञ्जनानन्त-सदृशीं कोटि-कालानल-प्रभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-दुर्ग-निवासिनीम् ।। २३

दिगम्बरां करालास्यां पीनोन्नत-पयोधराम् ।
शवानां कर-संहत्या कृत-काञ्चीं शवासनाम् ॥ २४
मुक्त-केशीं मदाघूर्णां प्रसन्न-मुख-पङ्कजाम् ।
सूर्य-कोटि-समाभासां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ॥ २५
खड्ग-मुण्ड-धरां वामे सव्ये खर्पर-तर्जनीम् ।
सम्बिभ्रतीं महा-कालीं बलाका-रूप-धारिणीम् ॥ २६
श्मशान-निलयां देवीं भूत-प्रेत-समन्विताम् ।
शिवाभिर्घोर-रूपाभिर्वेष्टितां घोर-नादिनीम् ॥ २७
मा भैर्वीर ! वरं ब्रूहि हृद्-गतं ते करोम्यहम् ।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं मन्त्रः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ २८
दशांशं बिल्व-पत्रैश्च घृताक्तैर्जुहुयात् सुधीः ।
तर्पणं तद्-दशांशेन तद्-दशांशेन मार्जयेत् ॥ २९
तद्-दशांशं ब्राह्मणानां भोजनं परिकीर्तितम् ।
विप्राराधन-मात्रेण सर्वाङ्ग-पूर्णतामियात् ॥ ३०
यद्यदङ्गं विहीनं च तत्-साङ्गं विप्र-भोजनम् ।
अन्यत् सर्वं महेशानि ! कालिका-वत् समाचरेत् ॥ ३१
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ३२
मात्रा-नित्या-विधानं तु कथयस्व ममाधुना ।

श्रीशिव उवाच—

मात्रा नित्या तुया प्रोक्ता सर्व-नित्योत्तमोत्तमा ॥ ३३
तस्या मन्त्रं महेशानि ! यथा-वदवधारय ।
प्रणवं कालिका-बीजं माया-कूर्चं च मातृकाम् ॥ ३४
सबिन्दु-मातृका-वर्णं चतुर्बीजानि वै पुनः ।
पुनश्च मातृका-वर्णं चतुर्बीजं पुनश्चरेत् ॥ ३५

एवं क्षान्ता महेशानि ! महा-मात्रा प्रकीर्तिता ।
चतुर्बीजं महा-मात्रे सिद्धि मे देहि सत्वरम् ॥ ३६
हूं फट् स्वाहेति देवेशि ! मात्रा-मन्त्रः परो मतः ।
प्रणवं कालिका-बीजं कूर्च-माये ततः शिवे ॥ ३७
मध्ये नित्या नाम दद्यात् सम्बुद्धचन्तं च केवलम् ।
नित्या-मन्त्राश्च जायन्ते भिन्न-रूपाश्च पार्वति ॥ ३८
पुनर्बीजानि हूं फट् स्वाहान्ताः परिकीर्तिताः ।
आद्य-योगात् सम्पुटाद् वा हुं फडन्त-प्रयोगतः ॥ ३९
एवं नवति नित्यानां मन्त्र-भेदा भवन्ति च ।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितं ॥ ४०
मात्रा-देवोति विख्याता देवता परिकीर्तिता ।
क्रीं बीजं हूं तथा शक्तिः ह्रीं कीलकमुदाहृतम् ॥ ४१
विनियोगो महेष्टार्थे कालिकार्थे प्रकीर्तितः ।
माया-षड्-दीर्घ-युक्तेन षडङ्ग-न्यासमाचरेत् ॥ ४२
तथा ध्यायेन्महा-विद्यां नीलाञ्जन-गिरि-प्रभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनयनां मुण्ड-पद्मोपरि-स्थिताम् ॥ ४३
कपाल-कर्तृका-हस्तां खड्ग-मुण्ड-धरां पराम् ।
सुदन्तुरां महा-रौद्रीं चण्ड-नादाति-भीषणाम् ॥ ४४
शव-वक्षः-समारूढां लेलिहानां शवं शिवाम् ।
एवं विधां तां श्रीमात्रां महा-घोर-निनादिनीम् ॥ ४५
इति सञ्चिन्त्य देवेशि ! लक्ष-मात्रं जपं चरेत् ।
दशांशं जुहुयाद् बिल्वैरथवा कदली-फलैः ॥ ४६
द्राक्षाभिः पायसैर्वापि दशांशं हवनं चरेत् ।
तर्पणं मार्जनं विप्र-भोज्यं यत्नेन कारयेत् ॥ ४७
यद्यदङ्गं विहीयेत तत्-संख्या-द्विगुणो जपः ।
जप-पूजा-प्रयोगादि काली-वल्लिपि-मातृ-वत् ॥ ४८

इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि रहस्याति-रहस्यकम् ।। ४९

श्रीशिव उवाच—

रहस्यमपि ते देवि ! कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
मुद्रा-नित्या-विधानं हि सर्व-सारोत्तमोत्तमम् ।। ५०
मुद्रिणी नामिका नित्या श्रीविद्यायां तु मुद्रिणी ।
मुद्रिणी दण्डिनी नाम्नी देवी सौन्दर्य-विग्रहा ।। ५१
महा-विद्यादिकादीनां मनो-मुद्रण-कारिणी ।
तेनेयं मुद्रा-नित्याख्या सर्व-सिद्धि-परांम्बिका ।। ५२
प्रणवं कालिका-बीजं माया कूर्चं क्रमेण च ।
प्रीँ फ्रेँ बीज-युगं प्रोच्य मुद्राम्बा-पदमुद्धरेत् ।। ५३
मुद्रा-सिद्धि मे देहि भो जगन्मुद्रा-स्वरूपिणी ।
हूं फट् स्वाहा-समायुक्ता वीति-वर्णो मनुः शुभः ।। ५४
महादेवो ऋषिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम् ।
मुद्रा-नित्या महादेवी देवता परिकीर्तिता ।। ५५
काली-बीजं बीजमस्या माया शक्तिः प्रकीर्तिता ।
कूर्चं कीलकमित्युक्तं काल्या षड्-दीर्घ-युक्तया ।। ५६
षडङ्ग-न्यासमाचर्य मुद्रां ध्यायेन्महेश्वरि !
अञ्जनाद्रि-निभां मुद्रां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।। ५७
दिगम्बरां घोर-दंष्ट्रां चण्ड-नादाति-भीषणाम् ।
दक्षिणां मुक्त-केशालीं दिगम्बर-विनोदिनीम् ।। ५८
पिङ्गाक्षीं प्रज्वलज्जिह्वां घोर-चेष्टा-भयानकाम् ।
शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीम् ।। ५९
सृक्क-द्वय-गलद्-रक्त-धारा-विस्फुरिताननाम् ।
कपालं कर्तृकां हस्ते खड्ग-खेटक-धारिणीम् ।। ६०

महा-कालेन च समं रतासक्तां क्षुधातुराम् ।
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति वादिनीम् ॥ ६१
एवं सञ्चिन्त्य देवेशि ! पूजयेद् यन्त्रमादरात् ।
त्रिकोणं वृत्त-षट्-कोणं वृत्ताष्ट-दल-भूपुरम् ॥ ६२
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं तद्-द्वारि गणपस्तथा ।
योगिनी-क्षेत्रपालाश्च बटुको हि चतुर्थकः ॥ ६३
लोक-पालास्त्र-लोकेशा भूपुरे क्रमशो यजेत् ।
दलेऽष्ट-मातृकां पूज्य केसरे भैरवाष्टकम् ॥ ६४
दलाष्टाग्रे त्वष्ट-सिद्धिः षट्-कोणेषु षडङ्गकम् ।
राज्यदा भोगदा मोक्ष-जयदाऽभयदा तथा ॥ ६५
षष्ठी तु सिद्धिदा प्रोक्ता षट्-कोणेषु क्रमाद् यजेत् ।
इच्छां ज्ञानं क्रियां चैव त्रिकोणे परिपूजयेत् ॥ ६६
मध्ये मुद्रां च सम्पूज्य सर्व-पञ्चोपचारकैः ।
इति पूजां समासाद्य ततो नीराजनं चरेत् ॥ ६७
नीराजनान्ते देवेशि ! प्राणायाम-पुरःसरम् ।
लक्ष-द्वयं जपेन्मन्त्रं सुश्वेतैः करवीरजैः ॥ ६८
दशांशं हवनं कृत्वा तद्-दशांशेन तर्पणम् ।
मार्जनं ब्राह्मणानां च भोजनं समुपाचरेत् ॥ ६९
एवं सिद्ध-मनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
यद्यद्धृदि समाधत्ते तत्तत्-कृत्यं करोति हि ॥ ७०
सर्वं तु कालि-वत् प्रोक्तं विशेषः कथितो मया ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७१

अष्टादशः पटलः

मिता-नित्या-विधिः

श्रीदेव्युवाच--

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि मिता-नित्या-विधि-क्रमं ।
सर्व-विद्या-वरारोहां मितां मे ब्रूहि सादरम् ॥ १

श्रीशिव उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि ! रहस्याति-रहस्यकम् ।
सर्व-विद्या-महाराज्ञी मिता-नाम्नी महोदया ॥ २
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि काली-सर्वाङ्गमद्भुतम् ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य कालिका-बीजमुद्धरेत् ॥ ३
कूर्च-बीजं तथा मायां वाग्भवं बीजमुद्धरेत् ।
मिते-पदं समुच्चार्य तथा परिमिते-पदम् ॥ ४
पराक्रमाय च पदं पुनर्बीजानि चोद्धरेत् ।
सोहं हूं फट् ततः स्वाहा सप्त-विंशति-वर्णवान् ॥ ५
मन्त्रोऽयं कथितो देवि ! ऋषि-छन्दादिकं शृणु ।
महाकालो ऋषिश्चास्य त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ ६
मिता-नित्या देवता च कालिका बीजमीरितम् ।
कूर्चं शक्तिर्महेशानि-माया कीलकमीरितम् ॥ ७
कीलकेन षडङ्गानि षड्-दीर्घाढ्येन कारयेत् ।
ध्यायेन्नीलाद्रि-सङ्काशां नील-जीमूत-सन्निभाम् ॥ ८
रक्त-वस्त्रां शवासीनां मुण्ड-माला-विभूषिताम् ।
पीनोन्नत-कुच-द्वन्द्वां पीन-वक्षो नितम्बिनीं ॥ ९
दक्षिणां मुक्त-केशालीं दिगम्बर-विनोदिनीं ।
महादेव-हृदम्भोज-मध्यस्थां शङ्ख-कङ्कणां ॥ १०

कोटि-कालानल-प्रख्यां श्मशानालय-वासिनीम् ।
खड्ग-मुण्ड-धरां वामे सव्येऽभय-वर-प्रदाम् ॥ ११
साधकाकांक्ष-हृदयां साधकस्य वर-प्रदाम् ।
मुख-सान्द्र-स्थितामोद-मोदिनीं मद-विह्वलाम् ॥ १२
आरक्त-मुख-सान्द्राभिर्नेत्रादिभिर्विराजिताम् ।
दक्षिणां सस्मितां दिव्यां दीन-नाथां विभावयेत् ॥ १३
एवं ध्यात्वा मितां देवीं लक्ष-त्रयं जपं चरेत् ।
किंशुकैर्हवनं कार्यं ज्योतिष्मत्याथवा प्रिये ॥ १४
ज्योतिष्मती-प्रसूनेन फलं किंशुक-वन्मतम् ।
आरक्त-करवीरेण जुहुयान्मन्त्र-सिद्धये ॥ १५
त्रिकोण-कुण्डे जुहुयात् संस्कृते खादिरानले ।
ताम्बूल-पत्र-होमेन कालिकां वशमानयेत् ॥ १६
पुष्पाक्त-नागवल्या च नागिनी-सिद्धिमाप्नुयात् ।
वज्र-पुष्पेण जुहुयात् डाकिन्या वा महेश्वरि ॥ १७
धुस्तूरेणारि-निधनं कुन्दैश्च कवितां लभेत् ।
जाती-पुष्पैर्जयावाप्तिस्तिल-पुष्पैर्बलोन्नतिः ॥ १८
पुन्नागैः पुरुषार्थाय केतक्या कामिनीं लभेत् ।
आसुर्या रिपु-नाशश्च चन्दनेन जयी सदा ॥ १९
तथैवागुरुणा देवि ! राज-राज-पदं लभेत् ।
रक्त-चन्दन-होमेन सर्व-मोहनमाचरेत् ॥ २०
गिरि-कर्ण्या कन्यकाप्तिः सेवन्त्या शिव-रूपता ।
गुडूच्या रिपु-नाशश्च मरीचेनाकृष्टिरुत्तमा ॥ २१
पूगी-फलैर्महा-भाग्यं तथा जाति-फलैर्धनम् ।
स्तम्भनं चम्पकेनैव जम्ब्वा जन्मार्ति-नाशनम् ॥ २२
एवं नाना-विधानेन काममुद्दिश्य साधयेत् ।
ततो होम-दशांशेन तर्पणं पीठ-नीरतः ॥ २३

अष्ट-गन्धोदकेनापि तथा केसर-नीरतः ।
तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं समुपाचरेत् ॥ २४
तद्-दशांशं विप्र-भोज्यं शक्तयश्च कुमारिकाः ।
पूजयेद् भोजयेद् देवि ! सर्व्व-सिद्धि स विन्दति ॥ २५
अथ पूजा-विधानस्य यन्त्रं सङ्कथ्यते शृणु ।
त्रिकोण-त्रितयं लिख्य वृत्तं षट्-कोण-संयुतम् ॥ २६
वृत्ताष्ट-दल-शोभाढ्यं भूपुरेण समन्वितम् ।
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं मध्ये विन्दु-विभूषितम् ॥ २७
कालीं करालिनीं घोरां प्रथमे तु त्रिकोणके ।
द्वितीये तु त्रिकोणे च वामां ज्येष्ठां च रौद्रिकां ॥ २८
तृतीये तु त्रिकोणे च इच्छां ज्ञानं क्रियां तथा ।
अथ वृत्ते यजेद् देवि ! वार्तालीं प्रथमं यजेद् ॥ २९
द्वितीय-भागे देवेशि ! लघु-वाराहिकां यजेत् ।
तृतीय-भागे देवेशि ! स्वप्न-वाराहिकां यजेत् ॥ ३०
तिरस्करिणिकां पूज्य चतुर्थ-भागके शिवे !
षट्-कोण-वामे देवेशि ! चतुर्द्वारं प्रपूजयेत् ॥ ३१
षट्-कोणे तु षडङ्गानि वृत्ते सिद्धचष्टकं तथा ।
दलेऽष्टौ मातृकाः पूज्यास्तदन्तेऽष्टौ च भैरवाः ॥ ३२
भूपुरे लोक-पालाश्च तदस्त्राणि च तद्-बहिः ।
एवमिष्ट्वा मितां नित्यां विद्या-मित्रां निरञ्जनीं ॥ ३३
एवमाराधना-युक्तो मन्त्र-सिद्धिं लभेन्नरः ।
अथवान्य-प्रकारेण ध्यानं नित्या-क्रमे शृणु ॥ ३४
अञ्जनाद्रि-निभाः सर्वा मुण्ड-माला-विभूषणाः ।
दक्ष-हस्ते देवी-खड्गं वाम-हस्ते च तर्जनीम् ॥ ३५
धारयन्त्यः शुभाः काल्या वरदाभय-तत्-कराः ।
एतत् सामान्यतो ध्यानं नाम-मन्त्र-विधौ स्मृतम् ॥ ३६

रहस्यमत्र कथितं सिद्धयोऽष्ट-विधाः करे ।
अञ्जनं गुटिका खड्गं वेतालं यक्षिणी-गणम् ॥ ३७
चरुकं तिलकं वासः कपालं पादुकां तथा ।
लगुडः किन्नरी-सिद्धिर्डामर्यादि महा-कला ॥ ३८
चराचर-गतिश्चैव त्वणिमा-लघिमादिकम् ।
पर-काय-प्रवेशश्च ततश्चैव रसायनकम् ॥ ३९
स्पर्शश्चिन्तापहारश्च भूत-सञ्चरणं तथा ।
मृतकोत्थापनं दिव्याः सिद्धयस्तत्-करे स्थिताः ॥ ४०
महा-पीठं समुद्धृत्य नित्या स्थाप्या यथा-क्रमम् ।
अथवा मूल-मन्त्रेण यजेन्मध्ये स्व-देवताम् ॥ ४१
यथोक्त-मन्त्र-सिद्धयर्थं ध्यायेच्च कुल-वस्तुभिः ।
यजेत् सन्तर्पयेच्छक्तिं भोजनाच्छादनादिभिः ॥ ४२
धूपयेद् दक्ष-गन्धेन देवताऽवतरेत् तदा ।
रक्ताक्षी स्तब्ध-नेत्राङ्गी प्रसन्न-मुख-पङ्कजा ॥ ४३
काचिदेका भवेच्छक्तिरितरास्तन्मुख-स्थिताः ।
तस्मिन् क्षणे तु प्रकृतिं कृत्वा माष-मयीं शुभाम् ॥ ४४
घृत-पक्वा मांस-मया उपभोगाः प्रकल्पयेत् ।
ग्रासे ग्रासे सुरां दद्यान्मत्स्य-शाकलकानि च ॥ ४५
आद्यं बीजं समुच्चार्य नित्ये क्रूर-मुखे तथा ।
क्रूर-दंष्ट्रे ललज्जिह्वेऽमुकस्तेऽयं प्रकल्पितः ॥ ४६
आहारो भक्षय-युगं स्वाहान्तं ठ-द्वयं पुनः ।
आद्य-वीजं समुच्चार्य मृतं ध्यायेद् रिपुं तदा ॥ ४७
तत्कालमेव हरते मिता प्राणान् सुरेश्वरि !
श्रूयतेऽसौ मृत इति तावत् सम्भोजयेन्मिताम् ॥ ४८
पश्चात् पञ्चाङ्ग-धूपेन धूपयेत् तां वर-प्रदाम् ।
हासं कृत्वा वरं दत्वा व्रजेत् सा शक्ति-देहतः ॥ ४९

श्री नीला नित्या-यन्त्रम्

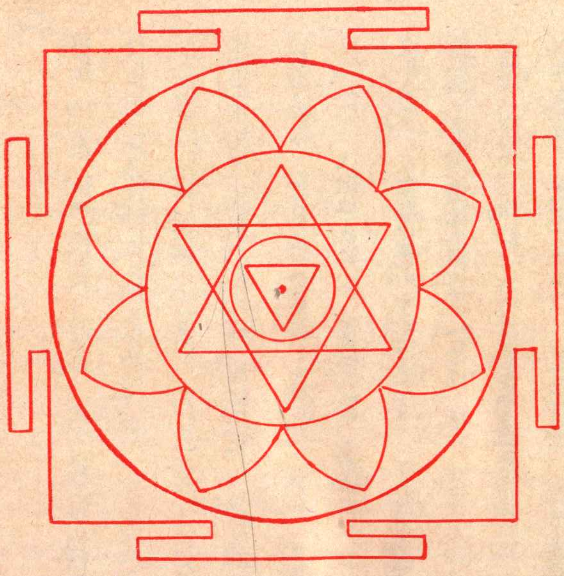

विन्दु-मध्ये लिखेत् कूर्चं त्रिकोणं च ततोपरि ।
वृत्त-षट्-कोण-वृत्ताष्ट-दलं वृत्तं च भूपुरम् ॥४७
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं यन्त्रं नीला-मनोः शुभम् ।

[पृष्ठ १३२]

श्री घना नित्या-यन्त्रम्

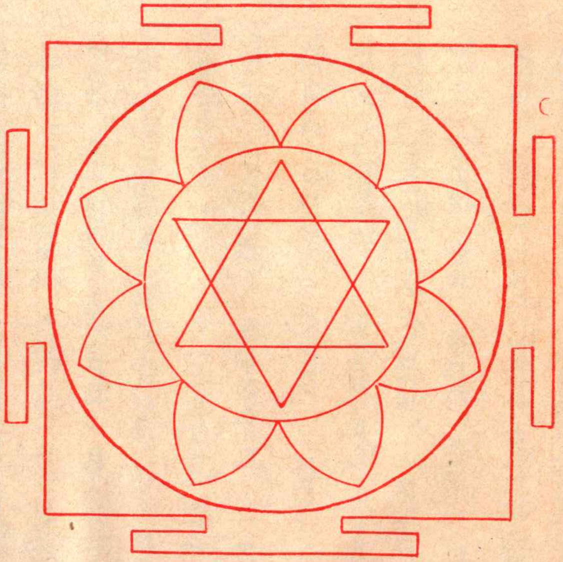

षट्-कोण-वृत्ताष्ट-दलं भूपुरेणोप-शोभितम् ।

[पृष्ठ १३६]

श्री मुद्रा नित्या-यन्त्रम्

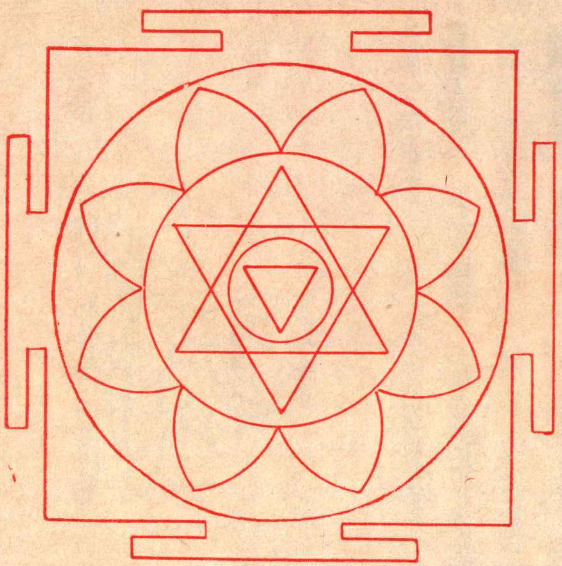

त्रिकोणं वृत्त-षट्-कोणं वृत्ताष्ट-दल-भूपुरम् ॥६२॥
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्य........................... ।

[पृष्ठ १४०]

श्री मिता नित्या-यन्त्रम्

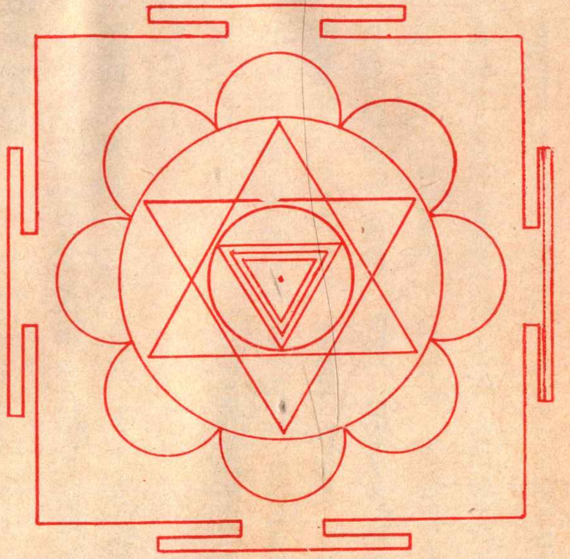

त्रिकोण-त्रितयं लिख्य वृत्तं षट्-कोण-संयुतम् ॥२६॥
वृत्ताष्ट-दल-शोभाढ्यं भूपुरेण समन्वितम् ।
चतुर्द्वारोप-शोभाढ्यं मध्ये विन्दु-विभूषितम् ॥२७॥

(पृष्ठ १४३)

श्मशाने वाऽथ सम्पूज्या वडवाग्नि-सम-प्रभा ।
स-सैन्य-राज्ञो नाशाय त्रि-मासैः कुल-वस्तुभिः ।। ५०
उद्यानेषु वशीकर्तुं उच्चाटे तु नदी-तटे ।
नातः पर-तरा विद्या सद्यः प्रत्यय-कारिणी ।। ५१
विख्याता उत्तराम्नाये शतधा पूजिता मया ।
गोप्याद् गोप्यतराप्येषा मया तुभ्यं प्रकाशिता ।। ५२
अतः परं महा-देवि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ?

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि यश्च धूपस्त्वयोदितः ।। ५३
दश-गन्ध-प्रियस्तस्य कानि द्रव्याणि तत्र तु ?

श्रीशिव उवाच—

काश्मीरस्य त्रयो भागास्त्रयो दद्यात् तथाऽगुरोः ।। ५४
भागाः पञ्चैव चन्द्रस्य मृग-नाभेर्द्वयं तथा ।
कृष्ण-चन्दनकाद्यष्टौ श्वेत-चन्दनकाश्च षट् ।। ५५
महिषाक्षस्य सप्तैव सर्जका द्वादशैव हि ।
मांस्या भागाष्टकं कृत्वाऽज्याद् भागैकं समाहरेत् ।। ५६
दश-गन्धस्तु धूपोऽयं पञ्चाङ्गं शृणु तत् प्रिये !
मूलं कृष्णागुरोर्भागं पत्रकं त्वचस्तथा ।। ५७
स्वर्ण-पुष्पं जाति-पत्री सम-भागेन धूपयेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। ५८

एकोन-विंशति-तमः पटलः

तिरस्करणिका-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! त्वत्-प्रसादेन मितायाः संश्रुतो विधिः ।
तिरस्करणिकां ब्रूहि महा-मोहन-कारिणीम् ॥ १

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि महा-मोहन-कारिणीम् ।
श्रीविद्यायाश्च बालाया अङ्ग-भूतां सुगोपिताम् ॥ २

वाग्भवं कालिका-बीजं भुवनेशीं हरि-प्रियाम् ।
तिरस्करणि-शब्दान्ते ततः सकल-जनं वदेत् ॥ ३

वाग्वादिनि सकल-पदं पशु-जन-मनो वदेत् ।
चक्षुः श्रोत्रं तथा जिह्वां घ्राणं तिरस्करणं वदेत् ॥ ४
कुरु-द्वयं ठ-द्वयं च स्वाहान्तोऽयं मनुः स्मृतः ।
वाग्भवं भुवनां लक्ष्मीं क्लीं भगवति वदेत् ॥ ५

स्वाहया तु संयुक्तो द्वितीयोऽयं परो मनुः ।
माहेश्वरी सर्व-पशु-जन-चक्षुस्तिरस्कर ॥ ६
णं कुरु-युक् स्वाहया तु संयुक्तोऽयं परो मनुः ।
त्रैलोक्य-मोहिनि-पदं महा-माये-पदं ततः ॥ ७

सर्व-जन-मनश्चक्षुस्ततस्तिरस्कृतिं वदेत् ।
कुरु-युक् स्वाहया युक्तश्चतुर्थोऽयं क्रमान्मनु ॥ ८
वाङ्-माया कमला-बीजं हसौ युगक्षरमुद्धरेत् ।
ॐ नमो भगवति-पदं श्रीमहेश्वरि चोद्धरेत् ॥ ९

ततः सर्व-जन-मनश्चक्षुः-पदमुदीरयेत् ।
तिरस्करण-शब्दान्ते कुरु-युक् स्वाहयान्वितः ॥ १०

पञ्च-मन्त्राः क्रमेणोक्ताः मकार-पञ्च-रक्षकाः ।
मकार-पञ्च-रक्षार्थं मन्त्र-पञ्चकमुच्चरेत् ॥ ११
ह्रीँ क्लीँ नमो भगवति माहेश्वरि-पदं वदेत् ।
ततः सर्व-जन-पदं मनश्चक्षुः-पदं वदेत् ॥ १२
तिरस्करणमुच्चार्य कुरु-युक् स्वाहयान्वितः ।
समस्त-रक्षणाद्यर्थे षष्ठो योगः प्रकीर्तितः ॥ १३
मन्त्रस्यास्य ऋषिः शक्तिर्गायत्री छन्द ईरितम् ।
सर्व-पशु-जन-मनश्चक्षुरादि तिरस्कृतः ॥ १४
देवता गदिता देवि ! क्लीँ बीजं परिकीर्तितम् ।
ह्रीँ शक्तिः क्रीँ कीलकं स्याद् विनियोगस्तिरस्कृतौ ।१५
वाङ्-माया-कमला-कामैरंगुष्ठाभ्यां नमो वदेत् ।
बीजं भगवति तत्र तर्जन्यां विन्यसेत् सुधीः ॥ १६
माहेश्वरि मध्यमाभ्यां सर्वा तिरस्करणी ततः ।
अनामिकां गदिताभ्यां कनिष्ठाभ्यां कुरु-द्वयम् ॥ १७
बीजानि तु पुनः स्वाहा कर-पृष्ठ-युगे न्यसेत् ।
एवं हि हृदये न्यस्य वर्ण-न्यासं समाचरेत् ॥ १८
दक्ष-बाहौ दक्ष-पृष्ठे दक्षोरौ दक्ष-जानुनि ।
दक्ष-पादे दक्ष-मस्तेऽप्येवं वामेऽपि विन्यसेत् ॥ १९
बाहु-मूलं पृष्ठ-जानु-मस्तके न्यस्य वै मनुम् ।
सम्पूर्ण-विद्यया देवि ! व्यापक-न्यासमाचरेत् ॥ २०
ततो ध्यायेन्महा-विद्यां तिरस्करण-रूपिणीम् ।
मुक्त-केशीं विवसनां सर्वालङ्कार-लंकृतां ॥ २१
स्व'''दर्शनान्मुग्ध-पशु-वर्गां नमामि ताम् ।
निग्रहार्थं महा-ध्यानं यथा-वदवधारय ॥ २२
श्याम-वर्णां मदाघूर्णारक्त-नेत्र-त्रयां शिवाम् ।
कृष्णाम्बरां तथा खड्गं दधतीं च भुज-द्वये ॥ २३

दोर्भ्यां मनोहराभ्यां तु खर्जूरी-कुम्भ-धारिणीं ।
नीलाश्वस्थां पुरो यान्तीं नीलाभरण-भूषितां ॥ २४
नील-माल्यादि-वसनां नील-गन्धां मनोहरां ।
निद्रा-मिषेण भुवनं तिरोभावं प्रकुर्वतीम् ॥ २५
खड्गायुधां भगवतीं भक्त-पालन-तत्परां ।
पशु-निर्मूलनोद्युक्तां पशु-तर्जन-मुद्रिकाम् ॥ २६
तिरस्करणिकां प्रोक्तां भूर्ज-पत्रे लिखेन्मनुम् ।
कुम्भाग्रे स्थापयेद् देवि ! लिखितं कुंकुमादिना ॥ २७
जपेल्लक्षं महा-मन्त्रं संस्थानैकतमे शिवे !
दशांशं हवनं कार्यं बिल्वैर्मधु-घृत-प्लुतैः ॥ २८
तद्-दशांशं तर्पणं च तद्-दशांशं च मार्जनम् ।
ब्राह्मणानां भोजनं च तद्-दशांशं समाचरेत् ॥ २९
एवं सिद्ध-मनुर्मन्त्री तिरस्करणमाचरेत् ।
सर्व-साध्य-करी विद्या पशूनां मान्द्य-कारिणी ॥ ३०
स्वप्न-वाराहि-वद् देवि ! पुरश्चर्या-विशेषकौ ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३१

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि कौतुकानि महान्त्यपि ।
तन्मे वद दयापार ! यद्यहं तव वल्लभा ॥ ३२

श्रीशिव उवाच—

रहस्यादति-गोप्यं च कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ।
स्वप्न-वाराहिका विद्या त्रिधाऽत्र परिकीर्तिता ॥ ३३
आदौ पञ्च-दशी विद्या ततोऽष्टादश-वर्णगा ।
चतुर्विंशति-तत्त्वाढ्या महती परिकीर्तिता ॥ ३४
सर्वश्रेष्ठा कौतुकाढ्या तन्मध्येऽष्टादशाक्षरी ।
तस्या मन्त्र-विधानं च कथ्यते शृणु साम्प्रतम् ॥ ३५

वाग्भवं भुवना हृद्वै वाराही तु ततो वदेत् ।
अघोरेति समुद्धृत्य स्वप्ने च ठ-चतुष्टयम् ॥ ३६
वह्नि-जायान्तिको मन्त्रो भविष्यादि-प्रदर्शकः ।
अष्टादशाक्षरः प्रोक्तो ऋषिरीश्वर ईरितः ॥ ३७
अनुष्टुप् छन्द इत्युक्तं स्वप्नेशी देवता मता ।
ऐं बीजं ह्लीं तथा शक्तिः ठठ-स्वाहान्त-षट्कम् ॥ ३८
हृदये ऐं तथा माया नमो वाराहि वै शिरः ।
अघोरे चेति च शिखां स्वप्ने वै कवचं भवेत् ॥ ३९
ठ-चतुष्कं भवेन्नेत्रे स्वाहेत्यस्त्रं भवेत् प्रिये !
कटि-कण्ठ-गण्ड-कर्ण-नेत्र-मूर्धसु विन्यसेत् ॥ ४०
नीलाञ्जन-गिरि-श्यामां मणि-रत्न-विभूषितां ।
अश्वारूढां चक्र-हस्तामपरे च हलायुधाम् ॥ ४१
अधस्थयोः कर्तरीं च कपालं रक्त-पूरितम् ।
पादाधःस्थ-हिरण्याक्षं रतमाणां मदोद्धताम् ॥ ४२
नाना-शक्ति-समाकीर्णां नाना-गण-विराजिताम् ।
एवं ध्यात्वा विष्णु-शक्तिं ततः पूजनमारभेत् ॥ ४३
आराधयेद् विन्दु-मध्ये देवीं त्र्यस्त्रं ततो लिखेत् ।
तत्र निद्रां सुप्रसन्नां डिम्भाङ्गीं च प्रपूजयेत् ॥ ४४
ततः षट्-कोण-मध्ये तु महोग्रां प्रेत-यक्षिकाम् ।
श्वास-कालां भीम-वतीं नख-ज्वालां महोदरीम् ॥ ४५
ततोऽष्ट-दल-मध्ये तु गिरीशं चतुराननम् ।
फट्-कारं बद्ध-मातङ्गं कुलीरं वायसं बलिम् ॥ ४६
चण्डीश्वरं च सम्पूज्य ततो द्वादश-वर्णके ।
मातङ्गीं वृद्ध-मातङ्गीमसिताङ्गीं कफोत्कटाम् ॥ ४७
महोद्धतां प्रेत-वाहां ज्ञान-शक्तिं क्रियावतीम् ।
वगलिकां भानुमतीं सोम-देवीं चिरन्तनीम् ॥ ४८

ततः पूज्य षोडशारे संहारेणैव पूर्वतः ।
ऐन्द्रीं सौरीं महेशानीं तारां यक्ष-प्रसूं धराम् ।। ४९
वामां विरोधिनीं श्यामां मातङ्गीं सुर-राक्षसीम् ।
पद्मावतीं काल-रात्रिं तामसीं मदनां मदाम् ।। ५०
पीत-गन्धाक्षतैः पूज्या तथैव कुल-वस्तुभिः ।
संयुक्तः शक्तिभिः सार्ध-लक्षमेकं जपेन्मनुम् ।। ५१
हयमारस्य कुसुमैर्हयारि-पललैस्तथा ।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री त्र्यस्रे वा योनि-कुण्डके ।। ५२
तर्पणं मार्जनं कुर्याद् योगिनीनां समर्चनम् ।
एवं सिद्ध-मनुर्मन्त्री प्रयोगान् साधयेच्छुभान् ।। ५३
मध्वाज्य-सुरसाभिश्च होमो दर्शयते हरिम् ।
अष्टोत्तर-सहस्रेण साधकस्येप्सितं वदेत् ।। ५४
कदम्ब-पुष्पैर्होमस्तु निधानं निशि दर्शयेत् ।
नीलोत्पल-कृतो होमः स्त्रियमाकर्षयेद्धठात् ।। ५५
जवा-पुष्पैः काल-खण्डैर्होमो भूपं वशं नयेत् ।
मार्जारान्त्रैः कृतो होमस्त्रासयेत् साधकार्थिनम् ।। ५६
पुत्राजीवक-बीजैश्च होमः पुत्र-करो भवेत् ।
यस्य प्रतिकृतिं कृत्वा मांस-पिण्ड-मयीं शुभां ।। ५७
जुहुयात् तस्य भवति सद्यो मृत्युर्न संशयः ।
सहस्र-त्रितयं जप्त्वा स्वप्ने वक्ति शुभाशुभम् ।। ५८
जाङ्गलैः पललैर्होमः किं किं कार्यं न साधयेत् ।
तारे नमो भगवति वाराहि द्वितयं द्विठः ।। ५९
पञ्च-दशाक्षरो मन्त्रः सद्यः प्रत्यय-कारकः ।
अक्षोभ्यो भैरवः ऋषिच्छन्दस्तु शक्वरि मतम् ।। ६०
देवता स्वप्न-वाराही षडङ्गानि पदैः क्रमात् ।
प्राग्-वत् पूजादिकं देवि ! प्रयोगश्चापि पूर्व-वत् ।। ६१

बीजान्ते भुवनेश्वर्या अंकुशं बीजमुच्चरेत् ।
वार्तालीति पद-द्वन्द्वं वाराही-द्वितयं तथा ॥ ६२
स्वप्नेश्वरि-युगं तस्मादैन्दवी विन्दु-भूषिताम् ।
वायुं विन्दु-युतं पश्चाच्चतुर्विंशाक्षरो मनुः ॥ ६३
जनार्दनो ऋषिश्चास्य छन्दः संस्कृतिरीरितम् ।
देवतां स्वप्न-वाराहीं रक्तपां घूर्ण-लोचनाम् ॥ ६४
स्मरोद्भिन्नां त्रि-नयनां खण्डेन्दु-कृत-शेखराम् ।
दंष्ट्रा-कराल-वदनां शिरो-माला-विभूषिताम् ॥ ६५
यजेत् पूर्वोदिते पीठे सर्व-काल-फल-प्रदाम् ।
अत्रैव कृष्ण-मातङ्गि-कौतुकं शृणु पार्वति ॥ ६६
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य नमो भगवतीति वै ।
कृष्ण-मातङ्गिनि शिरो-वल्कल-धारिणि चोद्धरेत् ॥ ६७
सर्व-जनमहङ्करि माया षट्-दीर्घ-युक् ततः ।
अमुकं पदमुद्धृत्य मे वश्याकृष्टिमुच्चरेत् ॥ ६८
कुरु स्वाहान्वितो मन्त्रः सर्वेषां सुर-पादपः ।
ऋषिः कृष्ण इति ख्यातः सर्व-देवोत्तमोत्तमः ॥ ६९
विराट् च्छन्द इति ख्यातं मायया तु षडङ्गकं ।
ॐ बीजं भुवना शक्तिः स्वाहा कीलकमीरितं ।
त्रैलोक्य-वश्यार्थमथ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ७०

वीणा-वादन-कोविदाम्बुद-घटा लावण्य-लीला वरा,
बिम्बोष्ठी वनजाक्षिमञ्चित-तनू व्याकीर्ण-केश-स्रजा ।
लीला-लोल-सुवर्ण-कुण्डल-धरा धर्मार्थ-कामोदया,
चण्डी चण्ड-पराक्रमा भवतु नः सर्वार्थ-संसाधिका ॥ ७१

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।
उच्छिष्ट-हस्तः प्रजपेत् उच्छिष्टेन बलिं चरेत् ॥ ७२
एवं प्रजपतस्तस्य सिद्धयो जन-वश्यता ।
जायते देव-देवेशि ! किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७३

विंशति-तमः पटलः

पथिषद्-रुद्र-विधिः

श्रीशिव उवाच—

कामं शक्र-पदारूढं रति-विन्दु-समन्वितम् ।
वाग्भवं बीजमुद्धृत्य परा-प्रासादमुद्धरेत् ॥ १
अनुलोम-विलोमेन प्रोक्ता सम्पत्-सरस्वती ।
षडक्षरी महा-विद्या सर्व-विद्योत्तमोत्तमा ॥ २
दीनानां तु दरिद्राणां गताधिकारिणां तथा ।
सम्पत्-सरस्वती विद्या महा-सम्पत्ति-दायिनी ॥ ३
कृष्णो ऋषिर्महेशानि ! गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
सम्पत्-सरस्वती देवी देवता परिकीर्तिता ॥ ४
ऐं बीजं क्लीं तथा शक्तिः ह्सौः कीलकमीरितम् ।
सम्पत्त्यर्थे महेशानि ! विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ५
षडक्षरेण देवेशि ! षडङ्ग-न्यासमाचरेत् ।
व्यापकं नवधा कृत्वा ध्यायेद् देवीं मनोहराम् ॥ ६
अनेक-कोटि-मातङ्ग-तुरङ्ग-रथ-पंक्तिभिः ।
सेवितामरुणाकारां वन्दे सम्पत्-सरस्वतीम् ॥ ७
इति ध्यात्वा महेशानि ! त्रिकोणं चक्रमालिखेत् ।
षट्-कोणं च ततो लेख्यं वृत्ताष्ट-दल-भूषितम् ॥ ८
भूपुरेण समायुक्तं यन्त्रं सम्पन्मनोर्मतम् ।
सम्पत्-सरस्वतीं देवीं त्रिकोणे परिपूजयेत् ॥ ९
दलेषु मातृकाः पूज्या भैरवेण समन्विताः ।
चतुरस्रे लोक-पालाः तदस्त्राणि च तद्-बहिः ॥ १०
एवमावरणान् पूज्य जपेल्लक्ष-त्रयं शिवे !
दशांशेन महेशानि ! पलाश-कुसुमैर्हुनेत् ॥ ११
पुरश्चरण-सम्पन्नो प्रयोगार्हो न चान्यथा ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं पायसैर्हुनेत् ॥ १२

अश्व-साहस्त्रं सम्पन्नो राजा भवति भू-तले ।
षट्-सहस्त्रं जपेन्नित्यं दशांशं कमलैर्हुनेत् ॥ १३
मातङ्ग-रथ-वृन्दाश्व-धन-धान्य-समन्वितः ।
तस्य सम्वत्सराल्लक्ष्मीरचला जायते ध्रुवम् ॥ १४
सहस्त्रं जुहुयान्नित्यं अनले शालि-तण्डुलैः ।
मण्डलान्नात्र सन्देहो भू-पतित्वमाप्नुयात् ॥ १५
बिल्व-मूले जपेन्मन्त्री नित्यं दश-सहस्त्रकम् ।
मासार्द्धात् सकलां लक्ष्मीं प्राप्नोति साधकः परां ॥ १६
हुनेद् बिल्व-समिद्भिर्यो तन्मूलेऽष्टोत्तरं शतम् ।
तद्-गृहे महदैश्वर्यं त्रिभिर्मासैर्भवेदपि ॥ १७
दश-वारं स्पृशेदन्नं जप्त्वा भुंक्ते नरो यदि ।
तद्-गृहे अन्न-समृद्धिः स्यादक्षयं नात्र संशयः ॥ १८
नदी-तीरे जपेन्मन्त्रमेकाग्र-मनसा शुचिः ।
दशांशं गो-घृतं हुत्वा वशीकुर्याज्जगत्-त्रयम् ॥ १९
घृतेन जुहुयान्नित्यं चतुः-सहस्त्रमादरात् ।
अणिमादि-गुणैश्वर्यं मासादाप्नोति साधकः ॥ २०
इति संक्षेपतः प्रोक्तं शृणु मृत्युञ्जयं शिवे !
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य काष्ठं षष्ठ-स्वरान्वितम् ॥ २१
विन्दु-युक्तं महेशानि ! चन्द्र-विन्दु-समन्वितम् ।
क-पञ्च-विंशतिं पश्चाद् विन्दु-युक्तं महेश्वरि ॥ २२
नाद्यं दीर्घ-समायुक्तं शक्र-बीजं च मारुतं ।
मारुतं दीर्घ-संयुक्तं महीं वायुमथोच्चरेत् ॥ २३
दशार्णोऽयं महा-विद्या काल-मृत्यु-विनाशिनी ।
वाम-देवो ऋषिश्चास्य पंक्तिश्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥ २४
मृत्युञ्जयो महा-रुद्रो देवता परिकीर्तिता ।
प्रणवं बीजमित्युक्तं जूं शक्तिः परिकीर्तिता ॥ २५
चन्द्र-चन्द्रं चन्द्र-वह्निः पुनर्वह्नि क्रमेण च ।
इति मन्त्राक्षरैर्न्यासं कृत्वा ध्यायेत् परं शिवम् ॥ २६

अच्छ-स्वच्छारविन्द-स्थितिमुभय-कराङ्क-स्थितं पूर्ण-कुम्भं,
द्वाभ्यां वेदाक्ष-माले निज-कर-कमलाभ्यां घटौ नित्य-पूर्णौ ।
द्वाभ्यां तावत्स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां बन्धुरां प्लावयन्तौ,
एवं देवं दधानः प्रविशति विशदां कल्प-जालश्रिरं नः ।। २७

एवं ध्यात्वा बाह्य-पीठे षट्-कोणं विलिखेच्छिवे !
दलाष्टकं लिखेत् तत्र वृत्तं तत्र लिखेत् ततः ।। २८
षट्-कोण-मध्ये देवेशि ! यजेन्मृत्युञ्जयं शिवम् ।
कोण-षट्के च सत्यादि मन्त्रान् पञ्च सदाशिवम् ।। २९
ततो यजेल्लोक-पालान् सायुधान् परमेश्वरि !
लक्षं जपेत् पुरश्चर्या तिलैर्होमो दशांशतः ।। ३०
अनन्तरं जपेल्लक्ष-त्रितयं परमेश्वरि !
काल-मृत्यु-विनाशश्च भवत्येव न चान्यथा ।। ३१
पर्वताग्रे जपेद् देवि ! लक्ष-द्वादशकं शिवे !
कल्पायुः शत-जीवी च भवत्येव न चान्यथा ।। ३२
अयुतं होमयेद् देवि ! दूर्वया मृत्यु-नाशने ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं पथिषद्-रुद्रकं शृणु ।। ३३
प्रणवं नतिमुच्चार्य रुद्राय-पदमुच्चरेत् ।
पथिषद्-पदमुच्चार्य चतुर्थ्यन्त-समन्वितम् ।। ३४
स्वस्तीत्युक्त्वा मां रक्ष च सम्पालय-पदं ततः ।
पथिषद्-रुद्र-विद्येयं श्रुता पथि भयापहा ।। ३५
वाम-देवोऽस्य मन्त्रस्य ऋषिरित्युच्यते बुधैः ।
पंक्तिश्छन्द इति प्राहुर्गायत्रमथवा शिवे ।। ३६
देवता पथिषद्-रुद्रो मार्गे सकल-भीतिहा ।
प्रणवं बीजमित्युक्तं नमः शक्तिरितीरिता ।। ३७
एकाक्षरेण द्वाभ्यां च त्रिभिश्च चतुरक्षरैः ।
त्रिभिश्चतुर्भिरित्युक्तो षडङ्गोऽयं मया शिवे ।। ३८
शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं चतुर्बाहु-समन्वितम् ।
पिनाक-कार्मुकोपेतं बाण-टङ्क-समन्वितम् ।। ३९

त्रिभिर्मन्त्रैः समोपेतं एणाङ्क-चन्द्र-शेखरम् ।
कैलास-गिरि-सङ्काशं वृषभारूढमीश्वरम् ॥ ४०
अन्न-पूर्णेश्वरी-युक्तं पथिषद्-रुद्र-नामकम् ।
पथि चोरादि-भीतिघ्नं ध्यायेद् देवं सदाशिवम् ॥ ४१
ध्यानमेतन्मया प्रोक्तं यन्त्रं वच्मि ततः परम् ।
षट्-कोणं विलिखेदादौ दलान्यष्टा ततो लिखेत् ॥ ४२
भू-गृहं विलिखेत् पश्चाद् द्वारोपेतं सुलक्षणम् ।
षडस्र-मध्यमे देवं पथिषद्-रुद्रमर्चयेत् ॥ ४३
षट्-कोणेषु षडङ्गानि तत्र मन्त्रैः समर्चयेत् ।
नन्दीकेशश्च नन्दी च भृङ्गी च भृङ्गिरीटि वै ॥ ४४
मृडश्च वीरभद्रश्च कुमारो गणपस्तथा ।
अष्ट-पत्रे यजेद् देवि ! प्रार्थयेन्मम वल्लभे ॥ ४५
दिक्ष्वष्टसु मही-गेहे दिक्-पालानष्ट पूजयेत् ।
एवमावरणैर्युक्तं पथिषद्-रुद्रमीश्वरम् ॥ ४६
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं चतुर्लक्षमतन्द्रितः ।
दशांशं तु तिलैर्हुत्वा मन्त्रः सिद्धो भविष्यति ॥ ४७
सिद्धेनानेन मन्त्रेण प्रयोगं कारयेद् बुधः ।
पथि-चोर-भये प्राप्ते जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ४८
ततश्चौरैरदृश्यः स्यात् पुमानयमसंशयः ।
पिपासा-संयुते मार्गे विजने साधकोत्तमः ॥ ४९
जपेदमुं महा-मन्त्रं वसु-पूर्व-शत-त्रयम् ।
तत्रैव लभते सद्यो जलं पीयूष-सन्निभम् ॥ ५०
अन्नेन रहितो मार्गे क्षुधा-सम्पीडितो नरः ।
जपेदमुं महा-मन्त्रमष्टोत्तर-सहस्रकम् ॥ ५१
मिष्ठान्नं लभते सद्यो ब्राह्मणानां शतस्य च ।
रहस्याति-रहस्यं च रहस्याति-रहस्यकम् ॥ ५२
गोपनीयं कौतुकं हि स्व-योनिरिब पार्वति !
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५३

एकविंशति-तमः पटलः

धूमावती-कौतुक-संक्षेप-विधिः

श्रीदेव्युवाच—

देवेश ! श्रोतुमिच्छामि कौतुकं शत्रु-निग्रहम् ।

श्रीशिव उवाच—

रहस्याति-रहस्यं च कौतुकं कथ्यते शृणु ।। १
आर्द्र-पटेश्वरी विद्या कथ्यते शत्रु-निग्रहे ।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य नमो भगवतीति च ।। २
आर्द्र-पटेश्वरि प्रोच्य हरि-नील-पदं वदेत् ।
कालि-पदं ततोच्चार्य आर्द्र-जिह्वे पदं चरेत् ।। ३
चण्ड-लोहिनि चोद्धृत्य रुद्राण्यथ कपालिनि ।
ज्वाला-मुखि सप्त-जिह्वे सहस्र-नयने वदेत् ।। ४
एहि-युक् चामुकं ते च पशुं ददामि वै वदेत् ।
अमुष्य जीवमुद्धृत्य निकृन्त-पदमुद्धरेत् ।। ५
अथाहित-जीव-पदमपहारिणि हूं वदेत् ।
फट्-भूर्भुवः स्वः पदं च फट् स्वाहा रुधिरं पिब ।। ६
मार-वादिनि चोद्धृत्य मम शत्रुं पदं वदेत् ।
छेदय-द्वितयं प्रोच्य पिब-द्वन्द्वं समुद्धरेत् ।। ७
शोणितं च पदं हूं फट् स्वाहान्तो मनुराडयम् ।
व्यञ्जन-त्रितयाक्रान्तं शतं विंशत्-त्रयाधिकम् ।। ८
दुर्वासा ऋषिराख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ।
निकृन्त इति बीजं स्यात् स्वाहा शक्तिः समीरिता ।। ९
शत्रु-निग्रह-कार्यार्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
ह्रीं षट्कैस्तु षडङ्गानि ततो ध्यायेत् पराम्बिकां ।। १०

शितोग्र-तर-दंष्ट्रिका त्रि-नयनोर्ध्व-केशोल्बणा,
कपाल-फलसोत्थ-सड्डमरुकर्त्रिशूलाङ्किता ।
घनाघन-निभारुणारुणित-किङ्किणी-मालिका ,
भवेद् भव-सुसिद्धये मम तु भद्र-काली चिरम् ।। ११

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं मरु-भूमौ श्मशानके ।
स्नानं कृत्वा चार्द्र-वासः शत्रुमुद्दिश्य योजयेत् ।। १२
क्षणार्द्धाच्छत्रु-मरणं भवत्येव जपे कृते ।
केवलं जप-मात्रेण मासान्ते शत्रु-मारणम् ।। १३
कृष्णाष्टमी समारभ्य यावत् कृष्ण-चतुर्दशी ।
शत्रु-नाम-समायुक्तस्तावत् कालं जपेन्मनुम् ।। १४
यमालये व्रजेच्छत्रुर्मुकुन्द-सदृशोऽपि चेत् ।
आरम्भ-दिवसाद् देवि ! ब्रह्म-रुद्रादयः सुराः ।। १५
न रक्षितुं प्रशक्तास्ते मृत्युस्तस्य भविष्यति ।
कृष्ण-प्रतिपदारभ्य यावत् स्याद्दशमी तिथिः ।। १६
मन्त्रमुच्चार्य देवेशि ! शत्रु-देशे जलं क्षिपेत् ।
गृहीत्वाञ्जलिना नीरं शत्रु-देशे क्षिपेज्जलम् ।। १७
मारयेच्छत्रु-सङ्घातं नात्र कार्या विचारणा ।
शत्रु-नाम समुच्चार्यं मनुना पर-देवते ।। १८
अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा शत्रु-नाशो भवेद् ध्रुवम् ।
देवानां बृहती-पुष्पैर्मूलेन नियत-व्रतः ।। १९
उपचारैः षोडशभिर्मांस-नैवेद्यमर्पयेत् ।
कार्यं विज्ञाप्य प्रजपेच्छत्रु-नाशो भवेच्छिवे ।। २०
इति संक्षेपतः प्रोक्तं वार्ता-यक्षीं शृणु प्रिये !
प्रणवं वाग्भवं मायां श्री-बीजं ज्योतिर्बीजकम् ।। २१
अंकुशं भृगु-बीजं च मुख-वृत्तं स-बिन्दुकम् ।
च-तृतीयं विन्दु-युक्तं वीर-मोदनमुद्धरेत् ।। २२

आग्नेयी-पदमुद्धृत्य महा-वीरे पदं वदेत् ।
सर्व-भाव-पदं प्रोच्य दर्शिनीति पदं वदेत् ।। २३

उक्त्वा नन्दन-वन-पदं वासिनीति पदं वदेत् ।
महा-सुप्त-पदं प्रोच्य जागरिणी-पदं वदेत् ।। २४

मम कर्णे दर्शयेति स्वाहान्तो मनुराडयम् ।
रविवारे पर्वणि वा तैलाभ्यङ्गं समाचरेत् ।। २५

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं तिल-पुष्पेण होमयेत् ।
अपराह्ने सहस्रं च त्वष्टोत्तर-शतं च वा ।। २६

जप्त्वा सुप्ते नरे रात्रौ सर्वं कथयति प्रिये !
त्रै-काल्य-ज्ञान-सिद्ध्यर्थं करिष्येऽहं जपं तव ।। २७

इति सङ्कल्पमासाद्य जपात् त्रैकाल्यमाप्नुयात् ।
इहाफलं फलं चैव परा-फलं च आफलम् ।। २८

जानामि इति सम्प्रोच्य सिद्ध-मन्त्रो नरो भवेत् ।
ऋषिच्छन्दादिकं ध्यानं नास्ति चास्याः प्रियम्वदे ।। २९

इति संक्षेपतः प्रोक्तं पिशुनस्य मनुं शृणु ।
श्रीं-बीजं पुरतः प्रोच्य शत-रुद्र-पदं वदेत् ।। ३०

सौ प्रस्ताङ्गी-पदं प्रोच्य ततः सकल-शब्दतः ।
वार्तां कह-पदं प्रोच्य ततः कर्ण-पदं वदेत् ।। ३१

पिशुनाख्य-पदं प्रोच्य माया-स्वाहान्वितो मनुः ।
मन्त्र-राजः समाख्यातः सहस्रेण पुरस्क्रिया ।। ३२

महा-देव ऋषिश्चास्य अनुष्टुप् छन्द ईरितम् ।
श्रीमत्-कर्णाख्य-पिशुनो महा-लक्ष्मी च देवता ।। ३३

वाग्भवं वीजमाख्यातं शक्तिः स्यात् काम-बीजकं ।
परा-बीजं कीलकं स्यान्मम शब्दं समुच्चरेत् ।। ३४

सकलेति पदं प्रोच्य रहस्य-पदमुद्धरेत् ।
वाग्-विज्ञानार्थेति पदं विनियोगः प्रकीर्तितः ।। ३५

ह्लीं-षट्कैश्च षडङ्गानि व्याहृत्या दिग्-निबन्धनम् ।
अनेन क्रम-योगेन पिशुनः सर्व-सिद्धिदः ॥ ३६
इति संक्षेपतः प्रोक्तं किरात-पद-पूर्विकां ।
वाराहीं शृणु देवेशि ! सावधान-मना भव ॥ ३७
वाग्भवं बीजमुद्धृत्य वाराहो-बीजमुद्धरेत् ।
श्री-बीजं च ततस्तारं नमो भगवतीति वै ॥ ३८
वाराही-पदमुद्धृत्य वराह-मुखि चोद्धरेत् ।
किरात-रूपिणि प्रोच्य एक-रात्रि-पदं वदेत् ॥ ३६
प्रसन्ने-पदमुद्धृत्य वरदे-पदमुद्धरेत् ।
मम कार्य-पदं प्रोच्य सिद्धिं कुरु-युगं वदेत् ॥ ४०
श्री-बीजं स्तम्भ-बीजं च वाग्-वीजं स्वाहयान्वितं
बिभीतकं समानोय तस्य मज्जां समाहरेत् ॥ ४१
तद्-भस्माञ्जनमासाद्य कज्जलं नेत्रयोर्ददेत् ।
रात्रौ धूपं ततो दत्वा प्रजपेत् परमेश्वरि ॥ ४२
प्रसन्ना भवति क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ।
स्वप्न-वाराहि-वत् सर्वं शृणुष्व काल-वादिनीम् ॥ ४३
प्रणवं भुवनां लक्ष्मीं वाग्-वीजं काम-वीजकम् ।
सम्वर्त-रति-संयुक्तं विन्दु-युक्तं समुद्धरेत् ॥ ४४
प्रणवं हृदयं प्रोच्य ततो भगवति-पदम् ।
भूतमुद्धृत्य देवेशि ! भविष्यमुद्धरेत् ततः ॥ ४५
वर्तमान-पदं प्रोच्य तदन्ते काल-वादिनि ।
प्रपञ्च-पदमुद्धृत्य शरीरिणि-पदं वदेत् ॥ ४६
सह-शब्दं समुद्धृत्य अमुकं मे वदेत् ततः ।
कार्यं कथयेति प्रोच्य पुनर्बीजानि चोद्धरेत् ॥ ४७
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं हवनं चरेत् ।
आकर्षणार्थं देवेशि ! भानुवारे यथा-विधि ॥ ४८

रात्रौ तु शयनात् पूर्वं सहस्रं प्रजपेच्छिवे !
अष्टोत्तर-शतं वापि शयीत तदनन्तरम् ।। ४९
तत् स्वप्ने चिन्तितं कार्यं देवता कथयेद् ध्रुवम् ।
नामादि-दर्शनं तत्र द्रष्टव्यं विधि-पूर्वकं ।। ५०
यस्य या चिन्तिता शक्तिः स्वप्न-द्वारा भविष्यति ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं शृणु धूमावती-विधिं ।। ५१
धूँ-बीजं त्रितयं प्रोच्य धुरु-युग्मं समुच्चरेत् ।
धूमावति-पदं प्रोच्य क्रों स्वाहा फट्-समन्वितः ।। ५२
मन्त्रः प्राथमिकः प्रोक्तो द्वितीयं शृणु सादरं ।
प्रणवं धूम्र-बीजं च धूमावति-पदं वदेत् ।। ५३
देवदत्तो धावतीति स्वाहान्तो मनुराडयम् ।
ऋषिः क्षपणकः ख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ।। ५४
धूमावती देवता च धूं-बीजं बीजमीरितम् ।
स्वाहा शक्तिः समुच्चाटे विनियोगः प्रकीर्तितः ।। ५५
धूँ-षट्कैस्तु षडङ्गानि ध्यानं शृणु वरानने !
काकारूढाति-कृष्णाभा भिन्न-दन्ता विरागिणी ।। ५६
मुक्त-केशी सु-धूम्राक्षी क्षुत्-तृषार्ता भयातुरा ।
चञ्चला चाति-कामार्ता क्लिष्टा पुष्टालसाङ्गिका ।। ५७
मलिना श्रम-नीरक्ता व्यक्त-गर्भा विरोधिनी ।
धृत-सर्पाग्र-हस्ता च ध्येया धूमावती परा ।। ५८
लक्षं जपेन्महेशानि ! जगदुच्चाटनं चरेत् ।
सर्व-तन्त्रे प्रयुक्तत्वादत्र संक्षेपतो मता ।। ५९

।।इति श्रीशक्ति-सङ्गम-महा-तन्त्रराजे सुन्दरीखण्डः समाप्तः।।